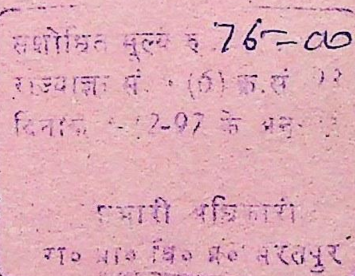
राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक
डॉ० पद्मधर पाठक
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १७३

अचलदास खीची री वचनिका

गाडण सिवदास री कही



सम्पादक
डॉ० शम्भुसिंह मनोहर

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR
१९९१ ई०

प्रथमावृत्ति ५०० मूल्य ७६.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान-सम्पादक
डॉ० पद्मधर पाठक
[निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क १७३

अचलदास खीची री वचनिका

गाडण सिवदास री कही

सम्पादक
डॉ० शम्भुसिंह मनोहर

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR
१९९१ ई०

प्रथमावृत्ति ५००

मूल्य ७६.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—डॉ० पद्मधर पाठक

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क १७३

गाडण सिवदास-रचित

अचलदास खीची री वचनिका

(शोधपूर्ण भूमिका सहित)

सम्पादक

डॉ० शम्भुसिंह मनोहर

पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रकाशक

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

१९९१ ई०

प्रथमावृत्ति ५०० मूल्य ७६.००

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थानराज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिलभारतीय तथा विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषानिबद्ध
विविधवाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट-ग्रन्थावली

प्रधान-सम्पादक

डॉ० पद्मधर पाठक

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

ग्रन्थाङ्क १७३

गाडण सिवदास-रचित

अचलदास खीची री वचनिका

(शोधपूर्ण भूमिका सहित)

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

१९९१ ई०

प्रधान-सम्पादकीय

यद्यपि 'अचलदास खीची री वचनिका' के दो-एक संस्करण पहले भी निकल चुके हैं, किन्तु डॉ० शम्भुसिंह मनोहर ने जिस गहराई से वचनिका के विभिन्न पहलुओं को आँका है, उसने प्रस्तुत संस्करण की उपादेयता को बहुत बढ़ा दिया है। आगे कोई ऐसी हस्तप्रति मिल जाय, जो पाठभेद की दृष्टि से उपलब्ध प्रतियों का काया पलट कर दे तब तो बात दूसरी है अन्यथा डॉक्टर साहब का यह श्रम इतना सफल है कि यही संस्करण सर्वश्रेष्ठ माना जायेगा।

डॉ० शम्भुसिंह मनोहर की गणना राजस्थानी के पारखियों में की जाती है। उनका यही अनुभव एवं विशिष्ट प्रवेश उनकी अन्य कृतियों में भी इसी अनुपात में पाया जाता है।

प्रतिष्ठान के लिए उन्होंने अपना समय देकर हमारी प्रकाशनमाला का गौरव बढ़ाया है। औपचारिकता के दायरे से निकलकर, मैं व्यक्तिगत रूप से एवं प्रतिष्ठान की ओर से उन्हें धन्यवाद देते हुए उनसे यह विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे अपना पुराना स्नेह सदा निभाते रहें।

पद्मधर पाठक
निदेशक
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

दिनांक २०-४-९१

समर्पण—

मेरे लाड़ले पोतों—

चि० बबलू, बंटी, सोनू व मोनू

तथा

मेरे दौहिते—

चि० ननकू को,

जिनसे,

जीवन की इस सान्ध्य-वेला में भी,

मेरे आँगन की पुष्करिणी में

सौ-सौ कमल खिले रहते हैं !

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

गाडण शिवदास-रचित 'अचलदास खीची री वचनिका' डिंगल की प्रथम एवं सर्वाधिक प्राचीन वचनिका है, लगभग 550 वर्ष पुरानी। यह साहित्यिक, ऐतिहासिक एवं भाषाशास्त्रीय—तीनों दृष्टियों से एक अतीव महत्वपूर्ण रचना है। इसका प्रथम संस्करण श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित किया जाकर सादूल रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। परन्तु, टीका के अभाव में सामान्य पाठक के लिए यह कृति दुर्बोध ही रही। तत्पश्चात् 'वचनिका' के दो छात्रोपयोगी संस्करण भी देखने में आए, परन्तु वे बाजारू नोट्स से अधिक महत्व नहीं रखते, जिनमें 'वचनिका' की किसी नई हस्तप्रति का उपयोग न किया जाकर पूर्वपाठ को ही ज्यों का त्यों रख दिया गया है। ऐसी स्थिति में, 'वचनिका' के एक ऐसे सटीक एवं सुसंपादित संस्करण की आवश्यकता अनुभव की गई, जिसमें इसके प्रामाणिक पाठ और टीका के साथ-साथ इसके साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व का भी सम्यक् प्रतिपादन हो। यों तो अपने शोध-प्रबन्ध—'राठौड़ रतनसिंघ जी महेसदासोत री वचनिका' के कार्य से निवृत्त होने के तत्काल पश्चात् ही मैं इस पर कार्यारंभ करना चाहता था, किन्तु कई अपरिहार्य कारणों से वह स्थगित ही रहा।

निदान 7-8 वर्ष पूर्व मैंने इस कार्य को अपने हाथ में लिया और उक्त वचनिका की प्राचीन हस्तप्रतियां खोजने, उन्हें प्राप्त करने, उनकी नकलें उतारने तथा तद्विषयक आवश्यक सामग्री बटोरने आदि की प्रारम्भिक तैयारी पूरी कर कार्य शुरू किया ही था कि एक दुर्घटना घट गई। अप्रेल, 1980 में एक भीषण स्कूटर दुर्घटना में मेरी दाहिनी जांघ की हड्डी टूट गई और मुझे करीब साल भर तक बिस्तर पर लेटे रहना पड़ा। यह तो यहाँ के प्रख्यात और यशस्वी सर्जन डॉ० पी० के० सेठी महोदय की कृपा का फल है, जिन्होंने तत्काल मेरा ऑपरेशन कर तथा कृत्रिम उपकरण जोड़कर मुझे चलने-फिरने

योग्य बना दिया अन्यथा शायद जीवन भर ही अपंगता की दुसह्य यंत्रणा झेलनी पड़ती। उनके इस उपकार के लिए उनका आजीवन ऋणी रहूँगा।

इस अप्रत्याशित बाधा के फलस्वरूप 'वचनिका' का संपादन-कार्य भी सहसा ठप्प हो गया क्योंकि इस अवस्था में शारीरिक कष्ट के साथ-साथ जो परवशताजन्य मानसिक पीड़ा होती है, वह भुक्तभोगी ही जानता है। परन्तु, तभी शुभ-संयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा मेरा दो वर्ष का अध्ययन-अवकाश (Study Leave) स्वीकृत हो गया, जिसका लाभ उठाकर मैंने 'वचनिका' का यह सम्पादन-कार्य जैसे तैसे पूरा कर डाला। इसके लिए मैं अपने विश्वविद्यालय का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

परन्तु, अपनी आंशिक शारीरिक अक्षमता तथा पैर के कष्ट के कारण मैं 'वचनिका' के इस संस्करण को उस रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाया, जिस रूप में मैं चाहता था। कारण, पुस्तक का अधिकांश लेखन मुझे विस्तर पर बैठे-बैठे ही करना पड़ा, जिससे मुझे जयपुर के बाहर के संग्रहालयों के उपयोग तथा उन ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा से वंचित होना पड़ा, जहां जाना शोधानुसंधान की दृष्टि से बहुत उपयोगी होता।

ऐसी स्थिति में, घर की चारदीवारी में ही कैद रह, मात्र उपलब्ध ग्रंथों के सहारे ही मैंने 'वचनिका' का यह संस्करण तैयार किया है। अतः इसे प्रकाशित करते हुए मैं प्रसन्नता कम, संकोच अधिक अनुभव कर रहा हूँ। क्योंकि मेरी उपर्युक्त सीमाओं के कारण इसमें अनेक त्रुटियां, स्खलन तथा अभावों का रह जाना निरा स्वाभाविक है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि मैं अपने दोषों को अपनी शारीरिक अक्षमता का कवच पहनाना चाहता हूँ। प्रत्युत यह कि जिन परिस्थितियों में यह संस्करण तैयार किया गया है, उनमें इससे अधिक कुछ कर सकना मेरे लिए सम्भव नहीं था। अतः इसमें रहे दोषों के लिए मुख्यतः तो मेरा अल्पज्ञान ही उत्तरदायी है, परन्तु साथ ही मेरी विवशता भी इसमें एक कारण रही है।

वस्तुतः मेरे सामने दो ही विकल्प थे—एक तो यह कि पुस्तक जैसी लिखी जा सकी है, वैसी ही प्रकाशित कर दी जाए तथा दूसरा यह कि इसमें कुछ और अधिक परिष्कार एवं परिशोधन करने तक इसके प्रकाशन को स्थगित रखा जाए। मैंने इनमें पहले विकल्प को ही चुना, जिसके पीछे मेरे अपने वैयक्तिक कारण थे—अपनी उत्तरोत्तर कष्ट देती पद-व्याधि, गिरता स्वास्थ्य

तथा कुछ अधूरे-अवशिष्ट पारिवारिक दायित्वों की पूर्त्ति की सम्भावित व्यस्तताएँ। इन सबने मेरे मन को अनागत के प्रति कुछ आशंकित कर दिया और फिर मेरी अंतश्चेतना में मरहूम शायर हज़रत जोश मलीहाबादी की आत्मकथा का यह मिसरा भी जब तब उभरकर जैसे कानों में दस्तक देता-सा, सचेत करने लगा—

"नसीम जागो, कमर को बांधो, उठाओ बिस्तर कि रात कम है।"[1]

फलतः इस संस्करण को, अपने सारे दोषों एवं त्रुटियों के उपरान्त भी निकालना मेरी बाध्यता बन गई। पाठक चाहे इसे मेरे मन की कमजोरी समझें, मुझे आपत्ति नहीं। अस्तु, इस आत्म-कथन के लिए क्षमा माँगता हुआ अब तनिक मूल विषय पर।

प्रस्तुत सम्पादन में मैंने जिन हस्तप्रतियों को आधार बनाया है, उनका विवरण निम्नांकित है—

1. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर की संवत् 1631 की प्रति, जो 'वचनिका' की उपलब्ध प्रतियों में प्राचीनतम होने से सर्वाधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय है। प्रस्तुत संस्करण में, पाठ-निर्णय में, हमारी आधारभूत मुख्य प्रति यही रही है।

2. सवाई मानसिंह संग्रहालय, सिटी पैलेस, जयपुर की संवत् 1748 की प्रति, जो 'खास मोहर संग्रह' की प्रति होने से अब तक अज्ञात और अप्राप्य थी। प्रस्तुत संस्करण में इस महत्वपूर्ण प्रति का संपादन में पहली बार उपयोग किया गया है। इसे हमने प्रति 'क' की संज्ञा दीं है।

3. सवाई मानसिंह संग्रहालय, सिटी पैलेस, जयपुर की ही एक अन्य प्रति, जिसका लिपिकाल अनुमानतः संवत् 1700 से 1740 के बीच है। यह प्रति भी 'खास मोहर संग्रह' की प्रति है, जिसका भी सम्पादन में अद्यावधि उपयोग नहीं किया गया है। इसे हमने प्रति 'ख' से चिह्नांकित किया है।

4. राजस्थानी-शोध-संस्थान, चौपासनी, जोधपुर की प्रति, जिसमें लिपिकार ने यद्यपि संवत् नहीं दिया है तथापि जो 17वीं 18वीं शताब्दी में ही कभी लिपिकृत हुई प्रतीत होती है।

---

1. यादों की बारात; पृ० 7; जोश मलीहाबादी; अनु० हंसराज रहबर।

5. श्री रघुनाथसिंह जी खीची, इन्द्रोका से प्राप्त कृपारामजी द्वारा लिखित श्री विजयदानजी के संग्रह की प्रति। यद्यपि अपेक्षाकृत अर्वाचीन होने से यह प्रति विशेष महत्व की नहीं है तथापि संपादन में हमने इसे भी ध्यान में रखा है क्योंकि यह चारण-परम्परा से प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त हमने श्री दीनानाथ खत्री द्वारा सम्पादित संस्करण में स्वीकृत पाठ तथा उसके नीचे फुटनोट में दिए गए पाठान्तरों को भी दृष्टिगत रखा है। यों, प्रस्तुत संस्करण की आधारभूत ये ही प्रतियां रही हैं।

हमने अपने द्वारा पूर्व सम्पादित 'राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका' में जो सम्पादन-पद्धति अपनाई थी, वही इसमें भी अपनाई है। अर्थात् पहले विशद समीक्षात्मक भूमिका, तदनन्तर मूल पाठ, महत्वपूर्ण पाठान्तर, टीका व शब्दार्थ-विवेचन तथा अन्त में ऐतिहासिक टिप्पणियाँ।

विवेच्य 'वचनिका' एक ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है, जिसमें प्रभूत ऐतिहासिक तत्त्व गर्भित हैं। अतः भूमिका में हमने इसके साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी सविस्तार प्रकाश डाला है। परन्तु, यहाँ यह निवेदन कर देना आवश्क है की प्रस्तुत लेखक मूलतः साहित्य का विद्यार्थी है, जिसका इतिहास-ज्ञान सीमित एवं सामान्य कोटि का है। फलतः इतिहास के कुछ जटिल प्रश्नों एवं समस्याओं का समाधान खोजने का भरसक प्रयत्न करने पर भी इसमें अनेक गुत्थियाँ ऐसी हैं, जो अनसुलझी रह गई हैं। उदाहरणतः अचलदास को जाँगलू के राणा खींवसी साँखला की पुत्री उमा के ब्याहे जाने की बात, इतिहास की एक ऐसी ही उलझन है, जिसकी शिलालेखों से प्राप्त संवतों से संगति नहीं बैठती। इसी भाँति, 'वचनिका' में उल्लिखित अनेक व्यक्तियों तथा स्थानों के नामों की पहचान भी हम नहीं कर पाए हैं। इन सब ग्रंथियों को सुलझाने का भार हम इतिहास के अधिकारी विद्वानों पर छोड़ते हैं।

मूल पाठ व टीका के साथ 'शब्दार्थ-विवेचन' इस संस्करण का एक प्रमुख एवं महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि जैसे वचनिका की विवेचना का मूल आधार इसकी व्याख्या है, वैसे ही इसकी व्याख्या का मूल आधार शब्दार्थ-विवेचन है। अतः आनुषंगिक दृष्टि से यह कृति के मूल्यांकन का एक प्रमुख तत्त्व है, जिस पर हमने विशेष ध्यान दिया है। शब्दार्थ-विवेचन में जहाँ तक हो सका, प्रत्येक कठिन एवं विशिष्ट भावगर्भित शब्द के प्रस्तावित अर्थ को हमने अन्य प्राचीन काव्यों

में प्रयुक्त उसकी प्रयोग-परम्परा से पुष्ट करने का प्रयास किया है ताकि उसकी अर्थगत प्रामाणिकता निर्दिष्ट हो सके। फिर भी ऐसे अनेक शब्द रह गये हैं, जिनके अर्थ दुरूह, अस्पष्ट एवं संदिग्ध हैं। साथ ही, ऐसे भी अनेक शब्द या स्थल हो सकते हैं, जहाँ पाठक सम्पादकीय अर्थ से असहमत हों। ऐसे सभी शब्दार्थों या विवादास्पद स्थलों के विषय में सम्पादक, विद्वान् पाठकों द्वारा किए गए विचार-विमर्श तथा उनके द्वारा दिए गए सुझावों का साभार स्वागत करेगा बशर्ते कि वे रचनात्मक, साधार एवं सप्रमाण हों। परन्तु, सारस्वत-भावना के विपरीत, मात्र छिद्रान्वेषण से प्रेरित आलोचकों के लिए, जो परोपजीवी के समान सदा दूसरों के कृतित्व से ही अपना पोषण करते आए हैं, हमारे पास उपेक्षापूर्ण मौन ही गरिमामय उत्तर है ! कहा है—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

अन्त में, मैं उन सभी संस्थाओं तथा शुभैषी मित्रों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता, ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग दिया है। इनमें सर्वप्रथम मैं सवाई मानसिंह संग्रहालय, सिटी पैलेस जयपुर के अधिकारियों—श्री अशोककुमार दास (निदेशक) एवं पं० गोपालनारायणजी बहुरा का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे उक्त संग्रहालय में संगृहीत वचनिका की दो हस्तप्रतियों की नकल उतारने की अनुमति व सुविधा प्रदान की।

मैं अपने मान्य मित्र डॉ० नारायणसिंहजी भाटी, निदेशक, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर का भी बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने शोध-संस्थान में संगृहीत 'वचनिका' तथा 'अचलदास खीची री वात' की हस्तप्रतियों की नकलें भिजवाईं। साथ ही अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर के अधिकारियों का भी, जिन्होंने 'वचनिका' की संवत् 1631 की प्राचीनतम प्रति की नकल सुलभ की।

मैं खीची इतिहास के अनन्य ज्ञाता और अध्येता श्री रघुनाथसिंहजी खीची, इन्द्रोका के प्रति भी, खीची-इतिहास विषयक जानकारी देने तथा 'वचनिका' की पारलाऊ वाली प्रति की नकल भिजवाने हेतु अपना आभार प्रकट करता हूँ। श्री रघुनाथसिंह जी ऊदावत, रास ने मुझे चौहान-कुल-कल्पद्रुम की पुस्तक लाकर दी तथा श्री रणवीरसिंह जी डूंडलोद ने गागरोण दुर्ग के अपने द्वारा उतारे गए अनेक सुन्दर चित्र पुस्तक में प्रकाशनार्थ सुलभ

किए-एतदर्थ इन दोनों ही महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। श्री जसवन्तसिंह जी राठौड़, 'सुखधाम' कोटा ने मुझे कोटा आने का निमन्त्रण देते हुए मेरे लिए दो बार जीप व फोटोग्राफर सहित गागरोण दुर्ग जाने की सारी आवश्यक व्यवस्था कर दी थी, परन्तु कुछ अपरिहार्य कारणों से मैं उनके स्नेह-पूर्ण आमन्त्रण का लाभ न उठा सका। तथापि उनके इस सहज सौजन्य के लिए उनके प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

मेरे ज्येष्ठ पुत्र आयुष्मान राघवेन्द्र सिंह मनोहर, व्याख्याता इतिहास ने मेरी आवश्यकतानुसार अनेक दुर्लभ एवं अप्राप्य ग्रंथ सुलभ कर पुस्तक-लेखन में मुझे महती सहायता दी है। तदर्थ उन्हें अनन्त स्नेहमयी शुभाशीष !

मैं यहाँ तीन दिवंगत साहित्यिक विभूतियों—रावल नरेन्द्रसिंहजी जोबनेर, डॉ० सत्येन्द्र जी एवं डॉ० कन्हैयालाल जी सहल के प्रति अपनी अश्रुपूरित श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ, जिन्होंने मेरे लेखन को सदा ही प्रोत्साहन दिया। साथ ही, मैं अपने आदरणीय गुरुद्वय—श्री लक्ष्मणप्रसाद जी वैश्य, भूतपूर्व रजिस्ट्रार, राजस्थान विश्वविद्यालय तथा पं० कृपाशंकर जी तिवारी, भूतपूर्व एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी, राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रति भी अपनी विनम्र प्रणति निवेदित करता हूँ, जिनका आशीर्वाद मेरे जीवन का मधुर सम्बल रहा है।

पुस्तक की पाण्डुलिपि को अत्यन्त तत्परता एवं मनोयोग के साथ शुद्ध रूप में टंकित करने हेतु मैं अपने हिन्दी विभाग के कार्यालय-प्रभारी श्री दामोदरजी पारीक के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट किए बिना नहीं रह सकता।

अन्त में, मैं राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के सम्मान्य निदेशक डॉ० पद्मधरजी पाठक का अतिशय कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस अतीव महत्वपूर्ण प्राचीन काव्य को अपने यशस्वी प्रतिष्ठान से प्रकाशित करने का अनुग्रह किया।

रामनवमी; 7 अप्रेल, 1987
34, श्री सवाई सदन,
जोबनेर बाग,
जयपुर।

विनीत
शम्भुसिंह मनोहर

भूमिका

1. ग्रन्थ-परिचय—

अचलदास खीची री वचनिका डिंगल-वाङ्मय की एक प्राचीन और महत्वपूर्ण कृति है। इसमें गागरोण (झालरापाटन से कोई ढाई मील उत्तर-पूर्व में तथा कोटा शहर से पैंतालीस मील दक्षिण-पूर्व में स्थित खीची चौहानों का प्रमुख प्राचीन संस्थान)[1] के शासक अचलदास खीची और माँडू (मालवा) के सुल्तान अलपखां गोरी (उर्फ होशंगशाह) के बीच हुए उस दुर्घर्ष संग्राम का वर्णन है, जिसमें गागरोण की रक्षार्थ अप्रतिम वीरता से लड़ते हुए अचलदास ने वीरगति प्राप्त की तथा उसकी रानियों ने दुर्ग की सहस्रों ललनाओं सहित जौहर का अनुष्ठान किया। गाडण शिवदास ने प्रस्तुत वचनिका में अचलदास के उसी लोकविश्रुत साके का ओजस्वी वर्णन किया है, जो काव्य की दृष्टि से तो उत्कृष्ट है ही, ऐतिहासिक दृष्टि से भी अन्यतम महत्व की रचना है। कारण, काव्योचित अतिरंजना के उपरांत भी शिवदास ने पात्रों के नामोल्लेख एवं घटनाओं के वर्णन में यथासम्भव ऐतिहासिक सत्य की रक्षा की है। फलतः वर्णन की इस तथ्याश्रितता एवं सत्यनिष्ठता के कारण प्रस्तुत वचनिका डिंगल-काव्य-प्रेमियों के साथ-साथ इतिहास के विद्वानों के लिए भी एक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण साक्ष्य-ग्रन्थ के रूप में उपादेय हो गई है, जिसमें तत्कालीन घटना-प्रसंगों पर प्रकाश डालने वाली अलभ्य सामग्री गर्भित है, जिसका शोधानुसन्धान हेतु अद्यावधि पूरी तरह उपयोग नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण ग्रन्थ की भाषागत दुरूहता है, जिसके फलस्वरूप डिंगल से अपरिचित विद्वानों के लिए प्रस्तुत वचनिका में निहित ऐतिहासिक सामग्री का सम्यक् उपयोग कर सकना सम्भव नहीं हो सका।

---

1. Imperial Gazetteers : Rajasthan, 1906, Pages 19-20

इस सम्बन्ध में, स्मरणीय है कि मालवा सल्तनत से सम्बद्ध फारसी तवारीखों-तवकाते-अकबरी, गुलशने-इबराहीमी अथवा तारीखे फिरिश्ता, वाकेआते-मुश्ताकी, जफरूल-वालेह आदि से गागरोण के उस इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध का, जो अपने समय में एक 'लीजेन्ड' बनकर लोक में विख्यात हो गया था, केवल चलते ढंग से उल्लेख किया गया है। ख्वाजा निजामुद्दीन और फिरिश्ता ने तो गागरोण के शासक अचलदास का नामोल्लेख तक नहीं किया है। ऐसी स्थिति में, उक्त युद्ध विषयक जानकारी का एकमात्र मुख्य स्रोत हमारी वचनिका ही रह जाती है, जिसमें प्राथमिक महत्व की पुष्कल ऐतिहासिक सामग्री गर्भित है, जिसका सम्यक् परीक्षण एवं परिशीलन होना अभी शेष है।

वचनिका में वर्णित यह युद्ध अपनी असाधारणता के कारण लोक में कितना विख्यात हो गया था, इसका अनुमान परवर्ती काव्यों में हुए तद्विषयक उल्लेख से ही किया जा सकता है, जिनमें इसकी तुलना रणथम्भोर, जालोर और चित्तौड़ के इतिहास प्रसिद्ध साकों से की गई है। गजगुणरूपकबंध का रचयिता गाडण केसोदास लिखता है—

जिम राजा 'हमीर' कियो साको रिणथंभर।[1]
राइसेण गढ जेम, कियो 'पूरणमल' तूँअर॥

अचलदास गागुरण, रैण 'मूल' जैसाणै।
'सोम' मंडोवर कियो, कियो 'सातल' सिवियाणै॥

चींतौड़ कियो 'जैमल' चडे, 'पातल' पावे द्रुग सिरि।
पट्टांण कते, 'कान्हड' पछै, साको जिम गढ सोनगिरि॥

कविराजा बाँकीदास ने साका कर कुल को उज्ज्वल करने वाले जिन इतिहास-प्रसिद्ध उद्भट शूरवीर नरेशों का नामोल्लेख किया है, उनमें वीरवर अचलदास भी एक हैं—

पीथल कान्हडदे पतौ, गोग हमीर हठाल।[2]
साकौ कर पहुँतौ सरग, **अचळौ ए उजवाळ**॥

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 47, सं० सीताराम लाळस।
2. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 1, (33). पृ० 82; सं० पं० रामकर्ण।

इसी भाँति वंशभास्कर के रचयिता महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने गागरोण के साके में अचलदास की वीरता पर मुग्ध हो, कहा है—

गागरोणि अचलेस सजे गढ ।[1]
रण बहु बरस किये रावण रढ ।।

कविराजा बाँकीदास ने पुनः अपनी ख्यात में 'प्रसिद्ध गढों' में गागरोण की गणना करते हुए लिखा है—

'गागुरण खीची अचलदास रै घर जनम हुवो' ।[2]

जैसलमेर-री-ख्यात में भी गागरोण के साके का उल्लेख हुआ है—

'गढ गागरूण राव अचळै खीची साकौ कियो ।'[3]

इसी भाँति, 'गुण-जवानरासो' के रचयिता ने भी **अपने चरित्र-नायक** द्वारा किए गए युद्ध को गागरोण के शासक अचलदास द्वारा किए गए साके से उपमित करने में अपना गौरव समझा है—

जेम कीध चीतोड़, पतै-जैजल छत्रीपण ।[4]
जेम कीध गागरोणि, राव अचलेस अचल रिण ।
थटे जेम रिणथंभ, प्रसिध हमीर प्रवाण ।
विढै खगां बोराजि, तेम जुध कियो जवाण ।
जुग च्यारि यळा अंबरजतै, गिणाँ सूर-चंद मेर गिर ।
जाय नह क्रीति जातां जुगां, अखियातां-बाताँ अमर ।।

राजविलास का रचयिता मान कवि लिखता है—

'मंडोवर मैदानयं, **गढ गागरौनि गुमानयं** ।'[5]

अपने उद्भट शौर्य एवं अनुपम त्याग से अक्षय कीर्ति अर्जित करने वाले विभिन्न चौहान-राजवंशों का प्रशंसापूर्ण उल्लेख करते हुए कर्नल जेम्स टॉड ने गागरोण के खीचियों के विषय में लिखा है—

---

1. वंशभास्कर, पृ० 1191
2. बाँकीदास री ख्यात, पृ० 211, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी ।
3. जैसलमेर री ख्यात, पृ० 56, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
4. गुण-जवानरासो–सं० राघवेन्द्रसिंह मनोहर (प्रकाश्य); (हस्तप्रति) श्री कुँवर दुर्गादासजी बोराज के सौजन्य से ।
5. राजविलास; मान-कृत : पृ० 11; सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया ।

"The Kheechees of Gagrown and Ragoogurh, the Deoras of Sirohi, the Sonagurras of Jhalore, the Chohans of Sooe Bah and Sanchore, and the Pawaitchas of Pawagurh, have all immortalised themselves by the most heroic and devoted deeds. Most of these families yet exist, brave as in the days of Prithviraj."[1]

यहाँ तक कि विष्णोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक महान् सन्त जांभोजी ने भी, जो अचलदास के समकालीन थे, अपने एक 'सबद' में अनेक प्रसिद्ध गढों में गागरोण का भी उल्लेख किया है, जिससे इसकी ख्याति एवं महत्ता का ज्ञापन होता है—

> अजमे हूंता नागोवाड़ै, रणथंभोर गढ़ं गागरणों।
> कुंकुम, कांछणि, सोरठि, मरहट, तिलंग दीप, गढ़ गागरणों ।।[2]

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से विदित होगा कि गागरोण का साका कोई मामूली साका नहीं था। भले ही अचलदास को उस युद्ध में विजय-श्री न मिली हो, परन्तु अपनी स्वतंत्रता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए उस वीर ने अप्रतिम शौर्य से लड़ते हुए अपनी तथा अपने समस्त परिवार की आहुति दे जो अक्षय कीर्ति अर्जित की, वह अपने आप में ही वीरत्व का एक उज्ज्वल कीर्तिमान है। वचनिकाकार लिखता है कि उस साके में दुर्ग की कोई चालीस सहस्र ललनाओं ने अपने को जौहर की ज्वाला में होम दिया था।

गागरोण का यह इतिहास-प्रसिद्ध साका लोक-विश्रुत भी होगया था इसमें तो सन्देह नहीं, परन्तु इस सम्बन्ध में डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने जिस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है, वह निरा भ्रामक है। प्रस्तुत वचनिका का परिचय देते हुए डॉ० माहेश्वरी लिखते हैं—'इसमें नौ वार 'अथ वात' 'वळै वात' इत्यादि शब्दों और 'दो बार' 'तितरै वात कहतां वार लागै' आदि वाक्यांश प्रयुक्त हुए हैं। इससे पता चलता है कि अन्य राजस्थानी बातों की तरह

---

1. Annals And Antiquities Of Rajasthan, Vol. I, Page 81; M. N. Publishers, Delhi.
2. जम्भवाणी (63), जाम्भोजी : विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, भाग 1, पृ० 371, सं० डॉ० हीरालाल माहेश्वरी।

अचलदास की कीर्तिगाथा भी, उनकी मृत्यु के पश्चात् जनसाधारण में कही और सुनी जाने लगी थी।'[1]

स्पष्ट ही, यहाँ 'तितरै वात कहतां वार लागै' के प्रयोग से डॉ० माहेश्वरी को गहरी अर्थ-भ्रांति हुई है। इसीलिए वे ग्रंथ में 'वात' शब्द के हुए प्रयोगों की गणना करने के चक्कर में पड़ गए हैं। वस्तुतः 'तितरै.......' 'वार लागै' तो कथन की एक रूढ़ शैली मात्र है, जो हिन्दी के 'बात कहने भर की देर थी' (अर्थात् तत्क्षण, तत्काल) का ही राजस्थानी पर्याय या रूपांतर है। इसका 'वात' संज्ञक विधा से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि डॉ० माहेश्वरी ने भ्रांतिवश समझ लिया है। कथन-शैली के रूप में इसका प्रयोग राजस्थानी ग्रंथों में प्रचुरता से हुआ है। यहाँ एक-दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(1) 'इतरै मांहै **वात कहताँ वार लागै**, इण तुरक इके-वहादर दीठो, माथा वाढीयौ........।[2]

(2) **'बात कहतां वार लागै।** नरवद उठै ऊभौ थौ। सुपियारी उठै गई।'[3]

अतः विवेच्य 'वात' की लोकप्रियता का इस वाक्यांश से कोई सम्बन्ध नहीं है।

ऐसे उस महाभीषण संग्राम का काव्यमय वर्णन कर उसके माध्यम से अपने वीर चरित्रनायक अचलदास का गौरवगान करना ही प्रस्तुत वचनिका का प्रतिपाद्य है।

2. **रचयिता—**

प्रस्तुत कृति का रचयिता गाडण शिवदास है। गाडण चारणों की एक प्रमुख शाखा है, जिसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में वंशभास्कर के टीकाकार बारहठ कृष्णसिंहजी शोदा ने निम्नोक्त टिप्पणी दी है—

"गडा हुआ बच्चा शक्ति के वरदान से जीवित होने के कारण 'गाडण' नाम प्रसिद्ध हुआ कहते हैं। परन्तु कई लोगों के मत से 'गाडणां' नामक ग्राम 'गाडण' कहलाना पाया जाता है।'[4]

---

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 84, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी।
2. वात अरजन भीमोत हमीर री (वरदा, अप्रेल, 1965, पृ० 24), डॉ० मनोहर शर्मा।
3. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 1, पृ० 494, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
4. वंशभास्कर, भूमिका, पृ० 87।

इस सम्बन्ध में, हमें हरमाड़ा (जयपुर) के श्री बदरीदानजी गाडण ने बताया कि वह गाड़ा गया बालक चौहान राजकुमार था, जो मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने से उसका नाम 'मूळाजी' रख दिया गया था। देवी की कृपा से वह पुनर्जीवित होगया, जिससे गाडण शाखा का प्रवर्तन हुआ मानते हैं। इस आशय का एक दोहा रामासणी के राव की पोथी में उल्लिखित मिलता है—

गाडण मूळै गाडियो, आई जिवायो आय।
हस्तान्तर लीलौ हुवौ, मीच अमी सुरराय।।

द्वितीय मत की पुष्टि में यह कहा जा सकता है कि स्थान विशेष के आधार पर किसी शाखा के नामकरण की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। चारणों में ही 'दधवाड़िया' शाखा के नामकरण का आधार 'दधिवाड़ा' नामक ग्राम विशेष है।[1] 'उज्ज्वल' शाखा के नामकरण का आधार भी 'ऊजळां' नामक ग्राम है। यह प्रवृत्ति अन्य वर्गों के नामकरण के विषय में भी देखी जाती है, जैसे खंडेलवाल (खंडेला), पालीवाल (पाली), श्रीमाली (श्रीमाल या भीनमाल), अजमेरा (अजमेर) आदि। तथापि, जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह मत भी हमें संदिग्ध प्रतीत होता है।

कारण, इस 'गाडणां' गांव के विषय में बाँकीदास री ख्यात में एक उल्लेख मिलता है—

"**पसायत गाडण री बेटी** नाम मेली, आढा नूं परणायी। मेली रो सावकुत बेटो हो, जिणनूं मार पसायत रा बेटां आढां री जमी अपणाय 'गाडणां' बसायी, वाय कनै।'[2]

उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर श्री सीताराम लाळस ने यह अभिमत व्यक्त किया है—

'गाडण शाखा के सभी चारण इसी गाडणां गांव से निकले माने जाते हैं। यह भी सत्य है कि इस गांव पर अद्यावधि गाडण शाखा के चारणों का ही अधिकार रहा है।"[3]

---

1. वीर-विनोद, भाग 1, पृ० 180, कविराजा श्यामलदास।
2. बाँकीदास री ख्यात, पृ० 180, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
3. गजगुणरूपकबंध, भूमिका, पृ० 18, सं० सीताराम लाळस।

परन्तु लाळसजी के उक्त मत को मानने में एक आपत्ति है। बाँकीदास री ख्यात के उक्त उद्धरण को, जिसके आधार पर लाळसजी ने अपनी स्थापना की है, तनिक ध्यान से पढ़ने पर यह ज्ञात होगा कि **इसमें 'पसाइत गाडण री बेटी' उल्लेख हुआ है, जिससे स्पष्ट है कि पसायत के बेटों द्वारा 'गाडणां' गाँव बसाए जाने से पहले भी पसायत के लिए 'गाडण' उपटंक का प्रयोग हुआ है।** अतः यदि 'गाडणां' गाँव से सम्बद्ध होने के कारण ही गाडण शाखा का प्रवर्तन हुआ होता तो उक्त गाँव बसाए जाने से पहले स्वयं पसायत के लिए 'गाडण' शब्द के प्रयोग का क्या आधार है ? इससे स्पष्ट है कि 'गाडण' शब्द 'गाडणां' गाँव बसाए जाने से पहले भी प्रयुक्त होता रहा है।

इस सम्बन्ध में, श्री सीताराम लाळस ने गजगुणरूपकबंध की भूमिका में यह सूचित किया है कि पुष्कर में करणी माता के मन्दिर के पुजारी और चारणों के गुरु महाराज श्री रामदासजी पाराशर ब्राह्मण की वही के पृ॰ 245 पर गाडणों की वंशावली दी है, जो निम्नोक्त है[1]—

1. गाडण
2. गंगव
3. गडसी (घडसी)
4. अभेड़
5. सावंतसिंह
6. देवराजसिंघ
7. मेघराज
8. दूदो
9. सदमल
10. केशवदास, लिखमीदास, किसनदास, माधोदास

उपर्युक्त वंशावली में क्रम संख्या 10 पर उल्लिखित केशवदास (केसोदास) गाडण, गजगुणरूपकबंध, विवेकवार आदि ग्रंथों का प्रणेता डिंगल का

1. गजगुणरूपकबंध, भूमिका, पृ॰ 18, सं॰ सीताराम लाळस।

प्रसिद्ध कवि हुआ है, जो जोधपुर नरेश गजसिंह का समकालीन था। केसोदास का समय ईसा की 16वीं से 17वीं शताब्दी के बीच का है (सन् 1558 से 1644 के लगभग)।[1] इस वंशावली से विदित होगा कि कविवर केसोदास से आठ पीढी पहले 'गाडण' नामधारी उसका एक पूर्वज हुआ था। अतः यदि यह वंशावली प्रामाणिक हो तो क्या यह संभव नहीं कि 'गाडण' नामधारी इसी पूर्वज के नाम पर 'गाडण' शाखा चल पड़ी हो? वंश के प्रमुख मूल पुरुष के नाम पर शाखा-प्रवर्तन के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध हैं। जो हो, हमारी विवेच्य वचनिका का रचयिता शिवदास गाडण भी इसी गाडण शाखा का था, जिसमें अनेक यशस्वी एवं ख्यातनाम कवि हुए हैं, जिनमें कुछ का डॉ० टैसीटरी ने अपने द्वारा सम्पादित हस्तलिखित ग्रंथों की सूची में उल्लेख किया है।[2]

जहाँ तक शिवदास के जीवन-वृत्त एवं वंश-वृक्षादि का प्रश्न है, हमें उसके विषय में कोई जानकारी नहीं मिल सकी। पूछताछ करने पर खीची-इतिहास के मर्मज्ञ श्री रघुनाथसिंहजी खीची, इन्द्रोका ने हमें बताया कि मारवाड़ में पारलाउ ग्राम के चारण अपने को शिवदास का वंशज मानते हैं तथा संप्रति वे 'वणसूर' नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका मानना है कि गढरोध के समय शिवदास अचलदास के साथ था तथा गागरोण छूट जाने पर वह जोधपुर चला आया, जहाँ तत्कालीन जोधपुर-नरेश (राव रिड़मल ?) ने उसे मोतीसरी ग्राम जागीर में दिया।'[3]

पारलाउ के वणसूर चारण शिवदास के वंशज हैं या नहीं, इस सम्बन्ध में कवि की प्रामाणिक वंशावली के अभाव में हम कुछ नहीं कह सकते। परन्तु, उनकी यह धारणा कि वचनिकाकार शिवदास को तत्कालीन जोधपुर नरेश ने मोतीसरी गाँव जागीर में दिया, हमें निर्मूल प्रतीत होती है। कारण, 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' में यह स्पष्ट उल्लेख है कि **मोतीसरी ग्राम मोटा राजा उदयसिंह ने वणसूर शिवदास सोभावत को दान में दिया था, न कि गाडण शिवदास को।** सम्बद्ध उल्लेख है—

'1. मोतीसरी—राजा श्री उदैसिंघजी रौ दत्त, वणसूर सिवदास सोभावत नूं।'[4]

---

1. गजगुणरूपकबंध, भूमिका, पृ० 22-23।
2. A Descriptive Catalogue Of Bardic And Historical MSS, Section II Part I; Dr. L. P. Tessitori.
3. श्री रघुनाथसिंहजी खीची, इन्द्रोका का लेखक के नाम दिनांक 19-5-76 का पत्र।
4. मारवाड़ रा परगना री विगत, भाग 1, पृ० 287, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

इससे स्पष्ट है कि वरणसूर शिवदास, गाडरण शिवदास से भिन्न था। दूसरे, गाडरण शिवदास के समय जोधपुर का राजा रिड़मल (रणमल्ल) था, मोटा राजा उदैसिंघ नहीं, जो रिड़मल की कई पीढ़ी बाद हुआ। अतः उदैसिंघ द्वारा मोतीसरी ग्राम गाडरण शिवदास को दिए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। सम्भव है, नाम-साम्य के कारण वरणसूर शिवदास को गाडरण शिवदास मान लेने की भ्रांति होगई हो।

शिवदास के सम्बन्ध में श्री बदरीदान जी गाडरण (हरमाड़ा) के अनुसार एक मान्यता यह भी है कि वह चूरू जिले के दसूसर ग्राम का निवासी था। यह चारणों का ही गाँव है, जहाँ अब भी गाडरण शाखा के चारण रहते हैं। परन्तु, प्रामाणिक जानकारी के अभाव में हम इस बारे में कुछ नहीं कह सकते।

अब हम शिवदास के जीवन से जुड़े एक और प्रश्न की चर्चा करेंगे और वह यह कि क्या शिवदास अचलदास का समकालीन था ? इस विषय में विद्वानों में तीव्र मतभेद हैं। डॉ॰ टैसीटरी ने वचनिका को एक समकालीन रचना मानते हुए लिखा है कि शिवदास ने अपने को ग्रंथ में वर्णित युद्ध-व्यापार के साक्षी-रूप में प्रस्तुत किया है—

"The Vacanica is apparently contemporary with the events mentioned above, and its author, Shivadas, represents himself as a witness, who sustained the long siege of Gagurana till the very last moment, when he put himself in safety to survive and be able to immortalize the heroic death of the Khichi, his master........"[1]

वस्तुतः डॉ॰ टैसीटरी ने ही सर्वप्रथम शिवदास का अचलदास के समकालीन होना प्रतिपादित किया था, जिसका अधिकांश परवर्ती विद्वानों ने अनुसरण एवं अनुमोदन किया है।

डॉ॰ दशरथ शर्मा का मत है—"शिवदास अचलदास के अन्त तक गढ में रहा हो या न रहा हो, यह अवश्य निश्चित है कि उसके और अचलदास के समय में विशेष अन्तर नहीं है और उसे तत्कालीन राजनीतिक स्थिति की पूरी जानकारी थी।"[2]

---

1. A Descriptive Catalogue Of Bardic And Historical MSS, Section II, Part I, Page 41; Dr. L. P. Tessitori.
2. वचनिका : ऐतिहासिक परीक्षण, पृ॰ 3, सं॰ दीनानाथ खत्री।

डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार वचनिका की एक अन्य हस्तप्रति में उपलब्ध जिस दोहे के आधार पर शिवदास के, दुर्ग के घेरे में अन्त तक रहने की स्थापना की जाती है, वह संशयास्पद है एवं इसके संबंध में जो एक विचित्र शैथिल्य है, वह इसके प्रक्षिप्त होने का सूचक है।[1] वह दोहा निम्नांकित है—

पाल्हणसी पाधारीयो अचल अनमी पास।[2]
रावजी वंश रहेसी, मोरहा नाम रहा सिवदास।।

विदित हो कि ग्राम पारलाउ के चारणों की पुरानी बही से प्रस्तुत वचनिका की एक नकल हमें श्री रघुनाथसिंहजी खीची इन्द्रोका से प्राप्त हुई है, जिसे वि० संवत् 1918 (ई० सन् 1861) में कृपाराम नामक किसी व्यक्ति ने उक्त बही में उतारा था। इसमें गढ़रोध के समय अचलदास द्वारा शिवदास को गढ छोड़कर चले जाने हेतु प्रेरित किए जाने के उल्लेख के साथ उक्त दूहा भी किंचित् रूपान्तर के साथ मिलता है—

पाल्हणसी पाधारियौ, अचल अनमी पास।
वंस रहेसी मूझसूं, पण नाम रहे सिवदास।।

इसके नीचे 'वचनका' शीर्षक से निम्नांकित अंश और है—

"रावजी ज्यांकौ एक चारण ही नीकळै नहीं—ग्रैसो। जिकूं रिण क वार नीकलियां दीसै—कैसो ? रावजी माधा, नापा, साधा (सादां ?) सो तो मरवा ही का ठांम **पिण सिवदास राखियां आवसी घणं काम।** अे पर वचनां पिरचाए—तो क्यूं रे सिवदास। आ कवर लाही। राजपूत को मरण अैसे चारण नीकल्यां बिनां जांणै लूण पखै रसोई। सिवदास अडंगा (अढंगा ? = वीरोत्तेजक) भेद भाखै। रायंहर रूपक अमर राखै। तब राजा हालै। अचलेसुर आये, विचार किया। सकल भर भार दिया।'[3]

विवेच्य प्रति में इसके आगे पुनः यह उल्लेख है—

'पालणदे गजभार आवड्यौ, अेक सिवदास वणसूर। सत सहस जोधा सूरा। नख-चख विचै पहरिया पूरा।'[4]

---

1. वचनिका : ऐतिहासिक परीक्षण, पृ० 3, सं० दीनानाथ खत्री।
2. वही।
3. पारलाउ की हस्तप्रति; श्री रघुनाथसिंहजी खीची, इन्द्रोका के सौजन्य से।
4. वही।

तदनन्तर प्रति में सिवदास का पाल्हणसी के साथ ही गढ़ के घेरे से निकल जाने विषयक पुनः यह उल्लेख मिलता है—

वचनका

"पाल्हणदे नीकल्या। नरवरां नीसाण घाव बल्या।
पाछली च्यंता आय लागी। मन री दुवधा भागी।

दूहो

तीन सहस भंड़ त्रजड़ हथ, इक चारण सिवदास।[1]
पाछा पालण नीसर्‌यो, रहै अवर रिणवास।।"

पारलाऊ की उपर्युक्त प्रति के अतिरिक्त सवाई मानसिंह संग्रहालय जयपुर की संवत 1748 (ई० सन 1691) की प्रति (चिह्नांक 'क') में भी पाल्हणसी के दुर्ग से निष्क्रमण के प्रसंग में एक स्थान पर शिवदास का उल्लेख मिलता है—

'**हरिणवा सउदास पाए लागै।** सव ही परवार। पिण पाल्हणसी परीछायउ परीछइ नहि।'[2]

यों हम देखते हैं कि वचनिका की तीन हस्तप्रतियों में गढ़रोध के समय शिवदास के विद्यमान होने तथा दो में पाल्हणसी के साथ अचलदास की शौर्य-गाथा को अमर करने के उद्देश्य से दुर्ग से निष्क्रमण करने (या तदर्थ प्रेरित किए जाने) का उल्लेख मिलता है। परवर्ती होने से इन प्रतियों की प्रामाणिकता यद्यपि संदिग्ध है, तथापि यह तो मानना ही पड़ेगा कि एतद्विषयक मान्यता मात्र अनुश्रुति पर आधारित नहीं है वरन् उसका कुछ लिखित आधार भी है, एवं जैसाकि कहा गया है—'नह्यमूला अनुश्रुतिः'—उसमें कुछ न कुछ सत्यांश रहता ही है।

अतः इन सब बातों को दृष्टिगत रखते हुए हमें शिवदास और अचलदास का समकालीन होना असम्भव नहीं लगता। दूसरे, दोनों की समकालीनता के पक्ष में जहाँ लिखित और मौखिक—दोनों ही परम्पराओं के साक्ष्य मिलते हैं, वहाँ उसे खंडित या असिद्ध करने वाला एक भी अकाट्य तर्क अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

---

1. पारलाऊ की हस्तप्रति; श्री रघुनाथ खीची, इन्द्रोका के सौजन्य से।
2. सवाई मानसिंह संग्रहालय जयपुर की प्रति।

जहाँ तक अनुश्रुति का सम्बन्ध है, हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारे यहाँ क्रमबद्ध इतिहास-लेखन की परम्परा प्रायः नहीं रही। अतः मध्ययुग में, इतिहास-लेखन के अभाव में, अनुश्रुतियों तथा स्फुट गीत-छंदों ने ही लोक में घटित अनेकानेक छोटी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाओं को अपनी मौखिक परम्परा द्वारा जीवित रख उन्हें विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बचा लिया है। इस दृष्टि से, ऐतिहासिक घटनाओं के संरक्षण में इन अनुश्रुतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जिन्हें उपेक्षित कर हम हमारे अगणित लोकाख्यानों में बिखरी अनमोल ऐतिहासिक संपदा से हाथ धो बैठेंगे। क्या हम यह नहीं जानते कि हमारे अनेक ऐतिहासिक लोकदेवताओं, जैसे गोगा, पाबू, बाबा रामदेव आदि का जीवन-वृत्त बहुत कुछ इन्हीं अनुश्रुतियों की बदौलत सुरक्षित रह सका है? इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम अनुश्रुतियों को बिना जाँच परख किए उन्हें आँख मूँद कर स्वीकार कर लें, किन्तु यदि किसी ऐतिहासिक घटना से कोई अनुश्रुति जुड़ी हुई हो तथा उसे खंडित करने वाला कोई अकाट्य साक्ष्य न हो तो हमें तथ्यातथ्य का निर्णय किए बिना उसे त्याज्य नहीं समझ लेना चाहिए।

हमारे राजस्थानी ख्यात-लेखक (इतिहासकार) अनुश्रुतियों के महत्व को समझते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी ख्यातों में इनका समुचित उपयोग किया है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं अन्वेषी कर्नल जेम्स टॉड ने भी अपने इतिहास में अनुश्रुतियों का ऐतिहासिक घटनावली के संदर्भ में यथास्थान उल्लेख करते हुए इनके महत्व को स्वीकारा है।

ऐसी स्थिति में, हम शिवदास और अचलदास की समकालीनता विषयक अनुश्रुति को, किसी विरुद्ध प्रमाण के अभाव में, अमान्य नहीं कह सकते।

इसके अतिरिक्त एक और तथ्य भी विचारणीय है। वचनिका की वर्णन-शैली भी कहीं-कहीं ऐसा आभास देती है, जैसे उसका रचयिता ग्रन्थ में वर्णित पात्र व घटनावली का प्रत्यक्षद्रष्टा रहा हो। कवि के इन वर्णनों में प्रत्यक्षद्रष्टता का कुछ ऐसा ही स्वर निहित है। परन्तु हम इसे प्रमाण-रूप में पेश नहीं कर रहे हैं। इसे कवि की विशिष्ट वर्णन-शैली भी कहा जा सकता है। अतः पाठक इसे साक्ष्य के रूप में न ले, मात्र संकेत ही समझें।

3. रचनाकाल—

वचनिका की रचना कब हुई—यह प्रश्न बहुत कुछ अचलदास और शिवदास की समकालीनता से जुड़ा है। डॉ० टैसीटरी, जैसा कि कह आए हैं, इसे गागरोण-युद्ध के समय की ही रचना मानते हैं।[1] डॉ० दशरथ शर्मा ने इस सम्बन्ध में पहले अपना स्पष्ट अभिमत न देते हुए भी परोक्षतः इसी मत का समर्थन किया है। उनके अनुसार शिवदास और अचलदास के समय में विशेष अन्तर नहीं था तथा शिवदास को तद्युगीन परिस्थिति की पूरी-पूरी जानकारी थी—

"शिवदास अचलदास के अन्त तक गढ़ में रहा हो या न रहा हो, यह अवश्य निश्चित है कि उसके और अचलदास के समय में विशेष अन्तर नहीं है और उसे तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की पूर्ण जानकारी थी। उसने कहीं कल्पित नामों की भर्ती नहीं की है।"[2]

परन्तु बाद में डॉ० दशरश शर्मा ने शिवदास और अचलदास की समकालीनता को स्पष्टतः स्वीकार करते हुए लिखा है—

"अंततः संभवतः यह कहना असंगत न होगा कि 'अचलदास खीची री वचनिका' में ऐतिहासिक तथ्यों का इतना वाहुल्य है कि यह मानना ही पड़ता है कि शिवदास का समय वही रहा होगा, जो अचलदास का है।"[3]

डॉ० मोतीलाल मेनारिया का मत अंतर्विरोधपूर्ण है क्योंकि एक ओर वे गागरोण-युद्ध को संवत् 1485 के लगभग हुआ मानते हैं[4] तो दूसरी ओर वचनिका का रचनाकाल संवत् 1470 में,[5] जो स्पष्ट ही अनर्गल और भ्रान्त है। कारण, जब युद्ध ही 1485 (?) में हुआ (उनके अनुसार) तो उस युद्ध को लेकर लिखी गई वचनिका की रचना उसके पन्द्रह साल पहले संवत् 1470 में कैसे होगई ? यही नहीं, डॉ० मेनारिया ने वचनिका पर अपने परवर्ती लेख में इसमें वर्णित तथ्यों की ऐतिहासिकता की जाँच किए बिना ही इस पर अनैतिहासिकता का

---

1. A Descriptive Catalogue Of Bardic & Historical MSS, Section II part I, Page 41, Dr. L.P. Tessitori.
2. वचनिका : भूमिका, पृ० 3 सं० दीनानाथ खत्री।
3. अचलदास खीची री वचनिका का रचनाकाल : विश्वंभरा : वर्ष 9, अंक 3-4।
4. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 133, डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
5. डिंगल में वीर रस, भूमिका, पृ० 37, वही।

आरोप लगाते हुए इसका रचनाकाल सं० 1612 से 1632 के बीच माना है, जो भ्रान्त है ।[1]

इसी भाँति, श्री अगरचन्द नाहटा का यह मत कि "चारण कवि शिवदास ने संवत् 1472 के आसपास इसे बनाया",[2] निर्मूल है, क्योंकि वचनिका में वर्णित युद्ध नाहटाजी द्वारा दिए गए रचना-संवत् के आठ साल बाद हुआ था ।

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी गागरोण-युद्ध को राणा मोकल के मृत्यु-संवत् से जोड़ते हुए वचनिका का रचनाकाल संवत् 1500 के आसपास मानते हैं ।[3] उनका तर्क है—"मोकल संवत् 1490 में मारे गए थे और इसीलिए यही समय युद्ध का भी होना चाहिए ।"[4]

जहाँ तक गागरोण-युद्ध की तिथि का प्रश्न है, डॉ० माहेश्वरी की यह धारणा निर्मूल है । कारण, गागरोण का युद्ध संवत् 1480 में हुआ था, जबकि राणा मोकल की मृत्यु चाचा-मेरा के हाथों संवत् 1490 में हुई ।[5] अतः गागरोण के युद्ध और राणा मोकल की मृत्यु में पूरे दस वर्ष का अन्तर है । इसकी चर्चा हम यथाप्रसंग आगे करेंगे ।

वस्तुतः गागरोण के युद्ध को राणा मोकल की मृत्यु-तिथि से जोड़ने का कारण अनेक इतिहासकारों[6] की यह धारणा है कि राणा मोकल, जोधपुर के राव रिड़मल सहित, अपने जामाता अचलदास की मदद पर जाने वाले थे परन्तु इसी बीच चाचा-मेरा द्वारा वध कर दिए जाने के कारण वे न जा सके । इसीसे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि गागरोण युद्ध का समय और राणा मोकल की मृत्यु का समय एक ही होना चाहिए । परन्तु इन दोनों तिथियों को जोड़ना भ्रामक है । कारण, फारसी तवारीखों से अब यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गया है कि होशंगशाह ने गागरोण पर हि० सन् 626 (वि० सं० 1480, ई० सन्

---

1. शोधपत्रिका-विशेषांक : वर्ष 17, अंक 1-2 ।
2. राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा, पृ० 63, ले० अगरचंद नाहटा ।
3. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 83, ले० डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ।
4. वही, पृ० 84 ।
5. वीरविनोद, भाग 1, पृ० 270, कविराजा श्यामलदास ।
6. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 1, पृ० 28-29, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी; मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० 100, पादटिप्पणी, ले० पं० रामकर्ण आसोपा; मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ० 115, गहलोत ।

1423) में आक्रमण किया था।[1] इसी भाँति, राणा मोकल का मृत्यु-संवत् 1490 भी सुनिश्चित है। रही बात यह कि राणा मोकल किन कारणों से अचलदास की सहायतार्थ नहीं जा सके—इसकी चर्चा हम यथाप्रसंग आगे करेंगे क्योंकि यहाँ केवल ग्रन्थ-रचनाकाल पर विचार करना ही हमारा उद्दिष्ट है।

श्री सीताराम लाळस ने वचनिका का रचनाकाल संवत् 1485 माना है,[2] परन्तु किस आधार पर, यह उन्होंने नहीं बताया। खिल्चीपुर रियासत की ख्यात के अनुसार भी गागरोण के युद्ध का समय संवत् 1485 है,[3] जो स्पष्ट ही गलत है।

यों हम देखते हैं कि राजस्थान के अधिकांश विद्वानों ने वचनिका को एक समसामयिक रचना मानते हुए बहुत कुछ डॉ० टैसीटरी के मत का ही अनुसरण किया है।

परन्तु इधर विद्वानों का एक वर्ग है, जो शिवदास और अचलदास की समकालीनता को अस्वीकार कर वचनिका को एक बहुत परवर्ती रचना मानता है। इसमें डॉ० हरीश, श्री वेदप्रकाश गर्ग प्रभृति उल्लेखनीय है। डॉ० हरीश द्वारा इस सम्बन्ध में की गई स्थापना तो सर्वथा असंगत और विचित्र है। उन्होंने पहले तो अपने एक लेख में इसे पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना मानी थी[4] परन्तु बाद में अपनी धारणा बदलकर इसका रचनाकाल 150-200 वर्ष आगे खिसकाते हुए इसे संवत् 1650 से 1700 के बीच किसी समय रचित होना बताया[5], जो निरा भ्रान्त और निर्मूल है। कारण, वचनिका की संवत् 1631 की हस्तप्रति जब मौजूद है (जिसकी डॉ० हरीश को भी जानकारी है) तो इसकी रचना संवत् 1631 के बाद (यानी संवत् 1650 से 1700 के बीच) कैसे मानी जा सकती है? क्या मूल ग्रंथ की रचना होने से पहले ही उसकी हस्तप्रति मिल गई? एक शोधकर्ता विद्वान् द्वारा प्रतिपादित इस मान्यता पर हमें आश्चर्य है!

---

1. तबकाते-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) ब्रिग्स, 3, पृ० 207-08, तारीखे-फिरिश्ता, अंग्रेजी अनु० 4, पृ० 23-25, 282-83.
2. राजस्थानी सबद कोस, प्र० खं० पृ० 119, सं० सीताराम लाळस।
3. राजस्थान-भारती, भाग 5, अंक 1, जनवरी, 1956, पृ० 84.
4. राजस्थानी साहित्य का आदिकाल : परम्परा, पृ० 33, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
5. आदिकालीन हिन्दी साहित्य-शोध : पृ० 446-449, डॉ० हरीश।

डॉ० हरीश की इस 'नवीन दृष्टि' (!) का समर्थन करते हुए श्री वेद प्रकाश गर्ग ने भी इसकी पुष्टि में एक नया शिगूफा छोड़ा है। उन्होंने यद्यपि डॉ० हरीश की स्थापना में निहित विसंगति को लक्ष्य किया है, तथापि वचनिका में हुए एक उल्लेख "दूसरा मालदे, समरसीह सारिखा"[1] के आधार पर यह स्थापना की है कि यहाँ 'दूसरा मालदे' से अभिप्राय जोधपुर के राव मालदेव से ही हो सकता है, जो प्रतापी और पराक्रमी था तथा जिसका समय संवत् 1588 से 1619 है। अतः उनके शब्दों में "इस वचनिका का निर्माण सं० 1619 और सं० 1631 के मध्य किसी समय हुआ।"[2]

वचनिका में हुए उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर श्री वेदप्रकाश गर्ग की यह धारणा सर्वथा निराधार है। विद्वान लेखक को कदाचित यह ज्ञात नहीं है कि डिंगल-काव्यों में अपने चरित्र नायक को प्रायः उसके अपने ही वंश के किसी प्रतापी एवं यशस्वी पूर्वज से उपमित एवं प्रशंसित किए जाने की परम्परा रही है, किसी दूसरे वंश के व्यक्ति से नहीं।

उदाहरणतः राणा सांगा को एक डिंगल-कवि ने उनके पूर्वज राणा हमीर से उपमित करते हुए उन्हें 'बिया हमीर' (दूसरा हम्मीर) कह कर प्रशंसित किया है—

किवराणां कीधा कैलपुरा,[3]
हिंदवाणा रिव **बिया हमीर**।

इस आशय के कुछ अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जिनमें गीतनायकों की उपमा उनके पूर्वजों से ही दीगई है। यथा—

1. वळै 'मानसी' चढै **केलण बिजाई**।[4]
2. मौजां समंद **बिजाई म्हौकम**[5]
   चावॉ धिन खग चौचरिया।

1. वचनिका : सं० दीनानाथ खत्री।
2. शोधपत्रिका : वर्ष 26, अंक 2, वेदप्रकाश गर्ग का लेख।
3. महाराणा यशप्रकाश : पृ० 60, सं० ठा० भूरसिंह शेखावत।
4. बिन्हैरासो : पृ० 49, सं० सौभाग्यसिंह शेखावत।
5. रा० वी० सं०, भाग 1, पृ० 69, सं० वही।

इसी भाँति, जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को कवि ने उन्हीं के पूर्वज राव मालदेव से उपमित करते हुए उन्हें 'बजाई मालो' कहा है—

मेलो मेलो मेलो बाज आखतो **बजाई मालो**[1]

ऐसे शतशः उदाहरण दिए जा सकते हैं। आलोच्य वचनिका में ही स्वयं होशंग को कवि ने उसी के हम-मजहब और पूर्ववर्ती सुल्तान अलाउद्दीन से उपमित किया है, किसी हिन्दू राजा से नहीं—'सुरिताण **दूसरउ अलावदीन**'।[2]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि चरित्रनायक को उसी के पूर्वज से उपमित किया जाता है, न कि किसी अन्य वंश के व्यक्ति से, चाहे वह कितना ही प्रतापी क्यों न हो। पौराणिक पात्र, जैसे कर्ण, दुर्योधन आदि अवश्य इसके अपवाद हैं, जो क्रमशः दानवीरता तथा वीरदर्प के लिए समान रूप से उपमान-रूप में गृहीत हुए हैं।

अतः वचनिका की विवेच्य पंक्ति में उल्लिखित समरसिंह देवड़ा (चौहान) को कवि ने जिस मालदेव से उपमित किया है, वह कोई पूर्ववर्ती चौहान नरेश ही हो सकता है। इस सम्बन्ध में, हमारी धारणा है कि वह सम्भवतः जालोर का सोनगरा चौहान मालदेव हो, जो इतिहास में 'मालदेव मूंछाळा' के नाम से विख्यात है।[3] वह कान्हड़देव का छोटा भाई था तथा बड़ा साहसी और शूरवीर था। बादशाह अलाउद्दीन ने उसे कुछ समय के लिए चित्तौड़ का अधिकार भी सौंप दिया था, जहाँ उसने सात वर्ष शासन किया।[4] इस दृष्टि से चौहान मालदेव को राठौड़ मालदेव समझकर वचनिका का रचनाकाल आगे खिसकाना भ्रांत नहीं तो और क्या है?

दूसरे, श्री गर्ग की उक्त मान्यता निरी असंगत एवं कालक्रमदोष (Anachronism) से भी ग्रस्त है। कारण, कोई भी कवि अपने चरित्रनायक या काव्य में वर्णित पात्र की उपमा उससे पूर्ववर्ती या समकालीन व्यक्ति से ही दे सकता है, परवर्ती से नहीं, क्योंकि अनागत को वह कैसे जान सकता है? वचनिका में वर्णित समरसिंह देवड़ा अचलदास का समकालीन था, जबकि

---

1. प्रा० रा० गी०, भाग 7, पृ० 1, सं० कविराव मोहनसिंह।
2. वचनिका (97).
3. नैणसी री ख्यात : भाग 1, पृ० 204; सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
4. वही, पृ० 224।

जोधपुर का राव मालदेव उसके कोई 109 वर्ष बाद पैदा हुआ था (समय 1589–1619)। ऐसी स्थिति में, वचनिका के कवि ने क्या कोई ख्वाब देखा था, जो वह संवत 1480 के युद्ध में भाग लेने वाले समरसिंह की उसके सौ साल बाद होने वाले मालदेव राठौड़ से उपमा देता और समरसिंह को 'दूसरा मालदेव' कहता, जबकि उस 'पहले मालदेव' का अभी कहीं अता-पता ही नहीं था ? हम महात्मा गाँधी को 'दूसरा सत्यवादी हरिश्चन्द्र' तो कह सकते हैं परन्तु क्या हरिश्चन्द्र को 'दूसरा महात्मा गाँधी' बताना संगत होगा ? श्री गर्ग ने अपनी तर्क-प्रक्रिया से कुछ ऐसा ही कौतुक किया है।

इसी प्रसंग में, श्री गर्ग ने वचनिकाकार पर यह आरोप भी लगाया है कि उसने ज़िन ऐतिहासिक व्यक्तियों का नामोल्लेख किया है, उनमें से अधिकांश कपोल-कल्पित एवं मनगढंत हैं।[1] श्री गर्ग का यह आरोप आश्चर्यजनक है क्योंकि उन्होंने अपने लेख में एक भी ऐसे पात्र का निर्देश नहीं किया है, जो अनैतिहासिक हो। अतः बिना किसी कृति की ऐतिहासिकता का परीक्षण किए उसमें वर्णित पात्रों एवं घटनाओं को कपोल-कल्पित व मनगढंत बताना चिन्त्य है। वचनिका के ऐतिहासिक महत्व के अन्तर्गत हम इन आरोपों की चर्चा करेंगे। यहाँ विषयान्तर न कर, मूल प्रश्न, वचनिका के रचनाकाल को लें।

ऊपर हम बता आए हैं कि अधिकांश विद्वान वचनिका को एक सम-सामयिक रचना मानने के पक्ष में है। हमारी भी यही धारणा है। इस सम्बन्ध में, एक अंतःसाक्ष्य ध्यान देने योग्य है। शिवदास ने वचनिका के छंद संख्या 8 (कुण्डलिया) में खेरला के शासक नरसिंह की प्रशंसा करते हुए उसकी तुलना गलबन्धन न सहने वाले सिंह से की है।

वेढ कीध पड़ियार, निहसि कट्टारउ दुहुँ करि।
राइ न ग्रहइ नरसिंघ, गळइ गळहत्थ जउं गइवरि।।

आश्चर्य है कि विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा सहित प्रायः सभी विद्वानों ने इसे अचलदास की प्रशंसा में कथित मान लिया है, जबकि वस्तुतः यह पूरा कुण्डलिया छंद नरसिंह की प्रशंसा में कहा गया है, जैसाकि छंद की अंतिम पंक्ति से ज्ञापित है। 'वेढ कीध पड़ियार' का स्पष्ट अर्थ है 'उस पड़िहार ने युद्ध किया।'

---

1. शोध-पत्रिका : वर्ष 26, अंक 2; पृ० 78; वेदप्रकाश गर्ग का लेख।

जैसाकि विदित है, **अचलदास खीची (चौहान) था, पड़िहार (प्रतिहार) नहीं।** अतः यह छंद चौहान अचलदास पर कैसे घटित किया जा सकता है ? रहा प्रश्न यह कि क्या नरसिंह पड़िहार क्षत्रिय था ? इस प्रश्न पर हमने पुस्तकान्त में दी गई ऐतिहासिक टिप्पणियों के अन्तर्गत विस्तार से विचार करते हुए उसके पड़िहार क्षत्रिय होने की सम्भावना व्यक्त की है।

अब प्रश्न यह है कि नरसिंह तो सुल्तान होशंग के एक अधीनस्थ सामन्त के रूप में अचलदास के विरुद्ध लड़ा था, फिर कवि ने उसे गलवन्धन न सहने वाले सिंह से उपमित करते हुए उसकी प्रशंसा क्यों की ?

इसका उत्तर यह है कि नरसिंह होशंग द्वारा बन्दी बना लिए जाने के कारण विवशतावश ही अचलदास के विरुद्ध सैन्य अभियान में सम्मिलित हुआ था अन्यथा मनसा उसने होशंग की अधीनता कभी स्वीकार नहीं की। वह उससे मुक्त होने के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करता रहा। यही कारण है कि सन् 1428-29 में जब होशंग बहमनी सुल्तान अहमदशाह से बुरी तरह पराजित होगया तो नरसिंह ने तत्काल होशंग की अधीनता का जूड़ा उतार फैंका और बहमनी सुल्तान से सन्धि करली। फलतः नरसिंह को दंडित करने हेतु होशंग ने 1433-34 में, जब बहमनी सुल्तान गुजरात के विरुद्ध युद्ध में उलझा हुआ था, खेरला पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में नरसिंह वीरता पूर्वक लड़ता हुआ काम आया। इससे सिद्ध है कि नरसिंह परिस्थितिवश ही इस 'गलत्थरण' को सहने हेतु विवश हुआ था।

उपर्युक्त सन्दर्भ में विचार करने पर हमारा अनुमान है कि वचनिका की रचना नरसिंह के वीरगति प्राप्त करने (सन् 1433-34) के पश्चात तथा गागरोण के दूसरे साके (सन 1443-44) से पहले ही कभी हुई होगी। अर्थात् होशंग और नरसिंह के बीच हुए इस अन्तिम युद्ध के पश्चात्, जिसमें नरसिंह ने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए वीरगति प्राप्त की। कवि द्वारा उसकी स्वाधीन वृत्ति की प्रशंसा करते हुए उसे गलबन्धन न सहने वाले सिंह से उपमित किए जाने का यही समाधान किया जा सकता है, जो परोक्षतः वचनिका के रचना-काल का भी स्पष्ट संकेत देता है। यदि वचनिका की रचना गागरोण के पतन के तत्काल पश्चात और होशंग एवं नरसिंह के बीच हुए इस अन्तिम संघर्ष से पहले होगई होती तो कवि उसे उक्त प्रकार से प्रशंसित न करता क्योंकि तब तो नरसिंह की स्थिति अचलदास के विरुद्ध लड़ने वाले उसके शत्रु (होशंग) के एक दण्डोपनत सामन्त से अधिक न थी।

साथ ही, हम वचनिका का रचनाकाल सन 1443-44 के बाद भी नहीं खिसका सकते, जब पाल्हणसी के समय में गागरोण का दूसरा साका हुआ था क्योंकि यदि वचनिका की रचना उसके बाद हुई होती तो कवि उसका भी किसी न किसी रूप में उल्लेख किए बिना नहीं रहता। विदित हो कि सन 1423 में गागरोण का पतन होने के पश्चात दुर्ग से निष्क्रमित पाल्हणसी ने सन 1437 के लगभग तत्कालीन शाही दुर्गाध्यक्ष दिलशाद सुल्तान से गागरोण को पुनः अपने हस्तगत कर लिया था, जो सन 1444 में गागरोण का दूसरा साका होने तक उसके अधिकार में रहा।[1] वचनिका की रचना निश्चय ही इस साके से पहले होगई होगी।

निष्कर्ष—अतः निष्कर्ष यह है कि हम गाडण शिवदास को अचलदास का समकालीन मानते हुए वचनिका का रचनाकाल गागरोण के प्रथम साके (सन 1423) के पश्चात 15–20 वर्ष की अवधि में ही किसी समय स्थिर करने के पक्ष में हैं; अनुमानतः सन 1434 से सन 1444 के बीच, जिसके कारणों का सविस्तार उल्लेख हम ऊपर कर आए हैं। विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा ने भी अपने परवर्ती ग्रन्थ Rajasthan Through The Ages में वचनिका का रचनाकाल सन 1435 के लगभग ही माना है।[2]

विदित हो कि किसी युद्ध को उपजीव्य बनाकर रचे जाने वाले काव्य की रचना उस युद्ध के तत्काल बाद ही की जाती हो—यह आवश्यक नहीं है। युद्धोपरान्त तत्सम्बद्ध घटनाओं की पूरी-पूरी एवं प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के अनन्तर ही कवि अपनी काव्य-रचना में प्रवृत्त होते थे। उदाहरणतः वीरमायण का रचयिता कवि बादर (बहादुर) ढाढी उक्त काव्य में वर्णित युद्ध-व्यापार का प्रत्यक्ष द्रष्टा था परन्तु उसने वीरमायण की रचना उस युद्ध के कोई बीस वर्ष बाद की थी, जैसा कि ग्रंथ में स्वयं कवि ने कहा है—

"म्हारी उकत प्रमाणे रावलजी जगमालजी व कंवरजी रिड़मलजी रै कैणे सूं जस वणाय नै सुणायौ। **जो झगड़ौ हुआं पछै बरस बीस सूं औ ग्रंथ**

---

1. Gagron Fort : The Second Saka, by A. H. Nizami (Research Paper).
2. Rajasthan Through The Ages, Page 459-460, Dr. Dashrath Sharma.

वणायौ। जोया वरस पांच अठै राठौड़ां कनै रैया, जितै हूँ जोयां साथै छो सो बात सारी सूं वाकब हुवौ।"[1]

कवि का उपर्युक्त कथन बहुत महत्वपूर्ण है। इससे पता चलता है कि उसने युद्ध-वृत्त की पूरी जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त ही युद्ध के कोई बीस वर्ष पश्चात अपने ग्रंथ की रचना की थी।

अतः गाडण शिवदास ने भी संभवतः 10-11 वर्ष के अन्तराल के बाद अर्थात सन 1434 में नरसिंह के वीरगति प्राप्त करने अथवा सन 1437 में पाल्हणसी द्वारा गागरोण दुर्ग को पुनः अधिकृत करने के अनन्तर तथा सन 1444 में गागरोण के पुनः पतन के बीच की इस अवधि में ही किसी समय वचनिका की रचना की होगी, जो परिस्थितियों की दृष्टि से भी उसके सर्वथा अनुकूल था।

इस सम्बन्ध में, एक अन्य तथ्य भी विचारणीय है। कुछ प्रतियों में होशंग की सेना में जिन-जिन स्थानों से सैन्य-दलों के आने का उल्लेख हुआ है, उनमें होशंगाबाद भी एक है। विदित हो कि गागरोण पर आक्रमण के समय (सन 1423 ई०) तो होशंगाबाद बसा भी नही था। होशंगाबाद तो होशंग ने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व बसाया था। होशंग की मृत्यु ई० सन 1434 में हुई।[2] अतः इससे भी यही धारणा पुष्ट होती है कि वचनिका की रचना सन 1435 के लगभग हो कभी हुई होगी, इससे पहले नहीं।

परन्तु कुछ विद्वानों ने इसे निपट परवर्ती रचना (17 वीं शताब्दी) सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिए हैं, वे निर्मूल और निराधार हैं।

(4) वचनिका : अर्थ, स्वरूप और परम्परा—

'वचनिका' शब्द संस्कृत 'वचन' से व्युत्पन्न है। राजस्थानी में गद्य की प्रचलित विधाओं में 'वचनिका' (रूपभेद वचनका) वारता, वात, ख्यात आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यहाँ केवल वचनिका के स्वरूप व भेदादि का संक्षिप्त विवेचन ही हमारा उद्दिष्ट है।

---

1. कवि बहादर और उसकी रचनाएँ; पृ० 58; सं० श्री भूरसिंह राठौड़, फेफाणा।
2. Mandu, Page 9; Archaelogical Survey Of India, 1975.

अर्थ व प्रयोग की दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि राजस्थानी साहित्य में 'वचनिका' शब्द प्राय: तीन विशेष अर्थों अथवा तीन विशिष्ट कोटि की रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है—

1. गद्य में एक छन्द विशेष अथवा गद्य-रचना की एक विशिष्ट शैली के अर्थ में।
2. गद्य में लिखित टीका, व्याख्या एवं अनुवाद-ग्रंथ के अर्थ में।
3. गद्य-पद्य-मिश्रित विशिष्ट काव्य-विधा के अर्थ में।

हमारी विवेच्य वचनिका इनमें तृतीय कोटि में आती है। तथापि, प्रत्येक का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना समीचीन होगा।

(1) गद्य के एक छंद विशेष के अर्थ में—

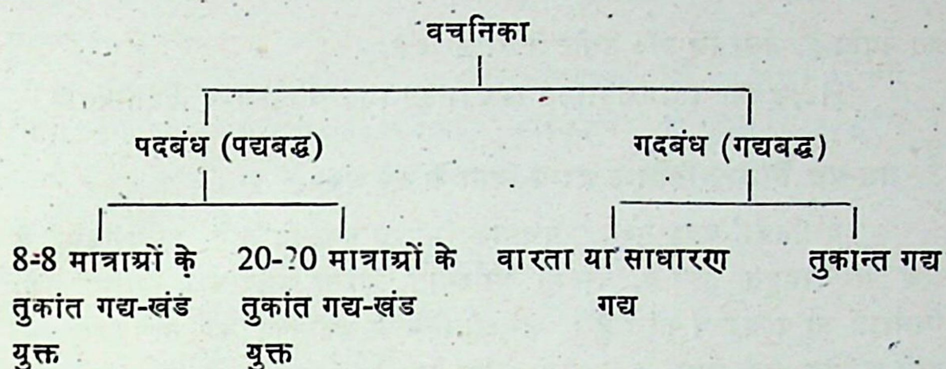
डिंगल के प्रसिद्ध लक्षण-ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' में 'वचनिका' को इसी अर्थ में ग्रहण करते हुए 'दवावैत' के समान इसे भी एक गद्य-छन्द मानकर लक्षण-निरूपण किया गया है।[1] इसी भाँति, डिंगल के अपर लक्षण-ग्रन्थ रघुवरजसप्रकास के रचयिता ने छंद को–गद्य और पद्य–इन दो रूपों में वर्गीकृत करते हुए 'वचनका' को दवावैत के समान ही एक गद्य-छंद माना है—

> गद्य-पद्य बे जगत में, जांण छंद की जात।[2]
> सम पद पद्य सराहजै, छूटक गद्य छ जात ।।1।।
> दवावैत फिर बातदख, जुगत वचनका जाण।
> ओछ अधक तुक असमत्रै, बीदग गद्य बखांण ।।2।।

रघुवरजसप्रकास में वचनिका के भेदोपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जबकि रघुनाथरूपकगीतांरौ में वचनिका के दो भेद—1. पदबंध और 2 गदबंध बताते हुए प्रत्येक के दो-दो उपभेदों का सोदाहरण लक्षण-निरूपण किया गया है।[3] सुविधा के लिए वचनिका के भेदोपभेदों को वर्गीकृत रूप में यों रखा सकता है—

---

1. रघुनाथरूपकगीतांरौ पृ० 242, सं० श्री महतावचंद्र खारैड़।
2. रघुवरजसप्रकाश, पृ० 85, सं० श्री सीताराम लाळस।
3. रघुनाथरूपकगीतांरौ, पृ० 242 सं० श्री महताबचंद्र खारैड़।



इस प्रकार 'वचनिका' शब्द छंद-संदर्भ में एक छंद विशेष या गद्य-रचना की एक शैली विशेष का वाचक है। पद्य-गद्य-शैली तुकांत एवं अतुकांत-दोनों ही रूपों में वचनिका संज्ञा से अभिहित हुई है।

2. गद्य में लिखित टीका, व्याख्या एवं अनुवाद-ग्रन्थ के अर्थ में—

द्वितीयार्थ में 'वचनिका' शब्द गद्य में लिखित टीका, व्याख्या तथा अनुवाद ग्रन्थ के लिए भी अभिहित हुआ है। 18-19 वीं शताब्दी में रचित जैन-वचनिकाएँ, जैसे भावदीप-वचनिका, श्लोकसार-वचनिका, परमात्मप्रकाश-वचनिका, तत्वार्थसूत्र-वचनिका, भक्तामरस्तोत्र-वचनिका[1] आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं, जो साधारण गद्य में लिखित टीका या व्याख्यापरक ग्रन्थ हैं। इन्हें विशुद्ध साहित्यिक कोटि की वचनिकाओं–जैसे अचलदास खीची री वचनिका, राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका आदि में परिगणित करना भ्रम होगा, क्योंकि ये वस्तुतः धार्मिक रचनाएँ हैं।

उपर्युक्त टीका या व्याख्यापरक रचनाओं के अतिरिक्त 'वचनिका' शब्द एक और अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और वह है गद्य में लिखित अनुवाद-ग्रन्थ के रूप में। उदाहरणतः महाराजा सवाई प्रतापसिंहजी जयपुर की आज्ञा से मुंशी लाल हीरालाल ने संवत 1852 में अबुलफजल-कृत आईने-अकबरी का फारसी से जयपुरी में भाषानुवाद किया था, जिसे अनुवादक ने 'आईने-अकबरी की भाखा वचनिका' नाम दिया है।[2] यहाँ 'भाखा वचनिका' शब्द स्पष्ट ही भाषानुवाद

1. महाकवि दौलतराम कासलीवाल : व्यक्तित्व और कृतित्व, पृ० 23-24, सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
2. Bardic & Historical MSS, Section I, Part II, Page 55, Dr. L. P. Tessitori.

का पर्याय है, जैसा कि डॉ० टैसीटरी ने लिखा है—

'Here the translation is called the Bhaka-Vacanika.'[1]

3. गद्य-पद्य मिश्रित विशिष्ट काव्य-विधा के रूप में—

'वचनिका' शब्द मुख्यत: गद्य-पद्य मिश्रित एक विशिष्ट काव्य-विधा के अर्थ में व्यवहृत हुआ है, वैसे ही जैसे ख्यात, वारता आदि शब्द विशिष्ट गद्य-विधाओं का वाचकत्व करते हैं। हमारी विवेच्य वचनिका का नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है। इसी भाँति, 'राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री वचनिका' में प्रयुक्त वचनिका शब्द भी इसी अर्थ का ज्ञापक है।

हमारे यहाँ गद्य-पद्य मिश्रित रचनाओं की परम्परा बहुत पुरानी है। संस्कृत में इसे 'चम्पू' काव्य-संज्ञा से अभिहित किया गया है—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।'[2] अत: वचनिका संज्ञक इन राजस्थानी रचनाओं को हम चम्पू-काव्य की कोटि में रख सकते हैं।

बहुत सम्भव है, वचनिका काव्य-विधा में 'वचनिका' संज्ञक गद्य-छंद विशेष का, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं, अधिक प्रयोग होने के कारण इस काव्यविधा को भी 'वचनिका' नाम से अभिहित किया जाने लगा हो। अर्थात् 'वचनिका' काव्यविधा के नामकरण का आधार 'वचनिका' नामक गद्य-छंद-प्रधान रचना रही हो।

जो हो, संप्रति काव्यविधा के अर्थ में वचनिका उस गद्य-पद्य मिश्रित रचना का वाचक है, जिसका विषय (Theme) युद्ध हो तथा जिसमें चरित्र-नायक के उद्भट शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन करते हुए उसका यशोगान किया जाए।

हमारी विवेच्य वचनिका इसी कोटि की रचना है, जिसमें गागरोण के शासक वीर अचलदास खीची द्वारा लड़े गए भीषण संग्राम का वर्णन करते हुए कवि ने उसके वीरोचित उत्सर्ग का गुणगान किया है।

---

1. Bardic & Historical MSS, Section I, Part II, Page 55, Dr. L. P, Tessitori.
2. साहित्यदर्पण।

परम्परा—

वचनिका-काव्य परंपरा के अन्तर्गत हम केवल उन्हीं रचनाओं को सम्मिलित करेंगे, जो ऊपर निर्देशित 'वचनिका' काव्यविधा की दृष्टि से इस कोटि में आती है। अर्थात् जो गद्य-पद्य-मिश्रित विशुद्ध साहित्यिक रचनाएँ हैं। इनमें तीन उल्लेखनीय हैं—

1. अचलदास खीची री वचनिका।
2. राठौड़ रतनसिंघजी—महेसदासोत री वचनिका।
3. माताजी री वचनिका।

1. अचलदास खीची री वचनिका—

यही हमारी विवेच्य वचनिका है, जिसे डिंगल की आदि वचनिका होने का गौरव प्राप्त है। ग्रन्थ-परिचय के अन्तर्गत हम इसका परिचय दे आए हैं तथा इससे सम्बद्ध अन्य प्रश्नों की चर्चा हमने आगे के पृष्ठों में विस्तार से की हैं। अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करना अनावश्यक होगा। वचनिका-काव्य-परम्परा की पहली रचना होने के नाते यहाँ हमने केवल क्रम-बोध की दृष्टि से इसका उल्लेख कर दिया है।

2. राठौड़ रतनसिंघजी - महेसदासोत री वचनिका—

वचनिका-काव्य-परम्परा की दूसरी महत्वपूर्ण कृति खिड़िया जगा-रचित राठौड़ रतनसिंघजी महेसदासोत री वचनिका है, जिनका चरित्रनायक भूतपूर्व रतलाम राज्य (मध्यप्रदेश) का संस्थापक राठौड़ रतनसिंह महेसदासोत है, जो सन् 1658 में धरमाट (उज्जैन) के रणक्षेत्र में हुए उत्तराधिकार-युद्ध में बादशाह शाहजहां की ओर से विद्रोही शाहजादों-मुराद और औरंगजेब के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। रतनसिंह ने उस युद्ध में ऐसा उद्भट पराक्रम दिखलाया तथा स्वामिभक्ति का ऐसा अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया कि उसका नाम इतिहास में सदा के लिए अमर होगया।

खिड़िया जगा सहित अनेक चारण कवियों ने उसके अनुपम शौर्य और त्याग पर रीझ कर उसे अपने प्रबन्ध-काव्यों एवं गीत-छन्दों का उपजीव्य बनाया। उसके व्यक्तित्व से प्रेरित हो डिंगल-कवियों ने उसकी प्रशंसा में एक से बढ़कर एक अनूठे गीत रचे। 'वचनिका' राठौड़ रतनसिंह पर रचित इस काव्यमाला का सुमेरु हैं, जो डिंगल की एक प्रौढ़ एवं प्रतिनिधि रचना के रूप में विद्वानों में समादृत है। इसके साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व के लिए पाठक

इन पंक्तियों के लेखक द्वारा उक्त वचनिका का संपादित संस्करण देखें।[1] यहाँ परिचय के लिए केवल एक उदाहरण देते हैं। अपने स्वामिधर्म का पालन करने के महत् आदर्श से प्रेरित राजा रतन प्राणों का मोह त्याग शत्रु सेना पर टूट पड़ता है। उस समय अप्रमेय वीरोन्मेष से उच्छ्वसित उसका यह रूप देखिए—

करि प्रणाम रवि ताम, ध्यान ग्यानह मन धारे।[2]
धसण धोम विचि धार, वसण वैकुंठ विचारे।।
तजे मोह चढि छोह, लोह बोहां जुधि लेयण।
ताणि मूंछ ऊससै, जाणि पांडव्व अरज्जण।।
ऊल्हसै रोम पोरस्स अति, ग्रहै पछाडण गैवरां।
रूठौ सरीर ऊपरि 'रतन', तूठौ सीस पळच्चरां।।

3. माताजी री वचनिका—

जती जैचंद-कृत माताजी-री-वचनिका भी डिंगल की एक उत्कृष्ट रचना है, जिसका प्रतिपाद्य त्रिजगन्मूला महाशक्ति की महिमा का भावपूर्ण स्तवन तथा उसके द्वारा शुम्भ-निशुम्भादि असुरों का वध कर देवताओं का संताप-हरण है। अंत:साक्ष्य के अनुसार इसकी रचना संवत् 1776 में हुई थी। एक जैन कवि के द्वारा रचित इसके जोड़ की ऐसी प्रौढ़ और उत्कृष्ट डिंगल-रचना कदाचित् दूसरी नहीं मिल सकेगी। यह कृति जहाँ एक ओर कवि की उदार धार्मिक दृष्टि की परिचायक है, वहाँ दूसरी ओर डिंगल पर उसके असाधारण भाषाधिकार का भी ज्ञापन करती है। यह देखकर हम आश्चर्य-मुग्ध हुए बिना नहीं रहते कि गद्य और पद्य-दोनों ही दृष्टियों से यह डिंगल की अत्युत्कृष्ट रचनाओं में परिगणित की जाने योग्य है। उदाहरणार्थ इसका एक छंद अवलोक्य है, जिसमें कवि ने दैत्यों का संहार करने से पूर्व देवी की भुवनमोहिनी छवि का अपूर्व चित्रण किया है—

क्रिस अंग चीर सुरंग कन्या, वणी खटदस वेसए।[3]
चिहुँ पास अळियळ भवै चौसर, देह सुरंभ, सुदेस ए।
देख पदमणि असुर दाझै, लीलंग-गय-गति लज्जए।
सिणगार असुरां छलण समहर, सगति अद्भुत सझ्झए।।

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री, सं. डॉ. शंभुसिंह मनोहर; पंचशील-प्रकाशन, जयपुर।
2. वचनिका, छंद (77), पृ० 139 सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।
3. माताजी-री-वचनिका, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

डिंगल की ये तीन ही प्रमुख ग्रौर प्रतिनिधि वचनिकाएँ हैं। यों, वचनिका-संज्ञक कुछ ग्रौर भी रचनाएँ मिलती हैं परन्तु साहित्यिक महत्व की दृष्टि से वे इनके टक्कर की नहीं हैं। संख्या में ग्रल्प होने पर भी इनमें से प्रत्येक का ग्रपना महत्व है तथा डिंगल-साहित्य की समृद्धि में ग्रपना विशिष्ट योगदान है।

5. वचनिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

वचनिका एक ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्य है। ग्रतः इसमें गर्भित ऐतिहासिक संदर्भ तथा घटनावली की पृष्ठभूमि स्पष्ट हुए बिना इसका ऐतिहासिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन सम्भव नहीं है। काव्य में निहित यह ऐतिहासिक तत्व ही वस्तुतः वह पीठिका है, जिस पर वचनिका के भव्य काव्य-प्रासाद का निर्माण हुग्रा है। ग्रतः इसके काव्य-सौष्ठवादि का विवेचन करने से पूर्व हमें इसकी ग्राधारभूत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित हो लेना ग्रावश्यक है क्योंकि मूलतः ऐतिहासिक घटना ही इस काव्य का उपजीव्य किंवा इसकी प्रेरिका है।

जैसाकि कह ग्राए हैं, हमारी विवेच्य वचनिका में वर्णित युद्ध मांडू (मालवा) के सुल्तान ग्रलपखां गोरी (उर्फ होशंगशाह) एवं गागरोण के शासक ग्रचलदास खीची के बीच विक्रम संवत् 1480 (ई. सन् 1423) में हुग्रा था। ग्रतः ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के ग्रन्तर्गत तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के सिंहाव-लोकन सहित दोनों का वंशगत परिचय प्राप्त कर लेना ग्रपेक्षित है।

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति

ईसा की चौदहवीं ग्रौर पन्द्रहवीं शताब्दी का संधिकाल देश में भयंकर उथल-पुथल, ग्रसंतोष ग्रौर ग्रराजकता का काल था। दिल्ली में तुगलक-वंश का तप-तेज क्षीण हो चुका था। वह ग्रपने पतन के ग्रन्तिम दौर में था। केन्द्रीय सत्ता के निर्बल हो जाने से प्रान्तीय शासकों (सूबेदारों) की महत्वा-कांक्षाएँ जाग उठी थीं तथा वे दिल्ली सुल्तान की ग्रधीनता छोड़कर ग्रपने-ग्रपने प्रान्तों में स्वयं को वहाँ का स्वतंत्र शासक घोषित करने के सपने संजोने लगे थे।

ठीक इसी समय, सन् 1398 में तैमूर का ग्राक्रमण हुग्रा, जिसने जर्जर तुगलक-साम्राज्य की कमर पूरी तरह तोड़ कर रख दी। तुगलक-वंश का ग्रन्तिम सुल्तान-महमूद तुगलक ग्रपने ही वतन में निराश्रित हो पनाह की खोज में दर-दर भटकने को मजबूर होगया। साम्राज्य में फैली इस ग्रव्यवस्था का लाभ उठाकर गुजरात का सूबेदार जफरखां, सुल्तान मुजफ्फरशाह के नाम से वहाँ का स्वतंत्र बादशाह बन बैठा। यहाँ तक कि उस कृतघ्न ने ग्राश्रय की

खोज में आए अपने बेवतन और बेसहारा भूतपूर्व स्वामी महमूद तुगलक को शरण तक देने से इन्कार कर दिया।

यही हाल मालवा का हुआ। वहाँ के सूबेदार दिलावरखां गोरी ने यद्यपि प्रकट में अपने को बादशाह घोषित नहीं किया तथा आश्रय की खोज में आए अपने भूतपूर्व स्वामी महमूद तुगलक को मालवा की पुरानी राजधानी धार में ठहरा कर एवं पूर्ण राजोचित मर्यादा और सम्मान के साथ उसका आतिथ्य-सत्कार कर अपनी कृतज्ञता और शालीनता का परिचय दिया तथापि सन् 1401 में महमूद के दिल्ली लौटते ही उसने शालीनता का यह आवरण उतार फैंका तथा केन्द्रीय सत्ता से पूरी तरह अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर सारे राज्याधिकार स्वयं हस्तगत कर लिए।

इसी भाँति, मलिक सरवर ख्वाजासरा, जिसे सुल्तान महमूद ने ख्वाजये-जहां एवं सुल्तानुशशर्क की उपाधि प्रदान की थी, जौनपुर का सुल्तान बन बैठा। और भी अनेक छोटे-बड़े राज्य स्थापित होगए। यों, महमूद तुगलक का वह विशाल साम्राज्य, जो कभी कच्छ, काठियावाड़ के कुछ भाग तथा उड़ीसा को छोड़कर शेष सारे भारत में फैला हुआ था, अब छिन्न-भिन्न होकर केवल 'दिल्ली से पालम' तक सिमट कर रह गया। साम्राज्य-विघटन की इसी प्रक्रिया के फलस्वरूप सुदूर दक्षिण में विजयनगर के महान हिन्दू साम्राज्य का उदय हुआ तथा ग्वालियर पर तोमर राजवंश का अधिकार होगया।

मालवा सल्तनत का उदय तथा सुल्तान अलपखां गोरी उर्फ होशंगशाह—

सूबा मालवा, जो सन् 1305 में बादशाह अलाउद्दीन द्वारा विजित किए जाने के बाद से हो दिल्ली सल्तनत का एक अंग रहा था, अब वहाँ के गवर्नर दिलावरखाँ गोरी उर्फ सुल्तान आमिदशाह दाऊद के अधीन एक स्वतंत्र राज्य बन गया। हमारे चरित्रनायक अचलदास खीची का प्रतिस्पर्द्धी अलपखां गोरी (उर्फ होशंगशाह) इसी दिलावरखाँ गोरी का पुत्र था। यह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। उसने सन् 1406 में अपने पिता के जीतेजी ही राज्याधिकार प्राप्त करने की गर्हित लालसा के वशीभूत हो उसे विष देकर मरवा डाला तथा स्वयं होशंगशाह की उपाधि धारण कर मालवा का सुल्तान बन बैठा।[1] उसका फुफेरा

1. The Cambridge History Of India, Vol. III, Page 349.

भाई मलिक मुगीस, जो एक कुशल सेनानायक और प्रभावशाली उमराव था, उसका प्रवल पक्षधर होगया।

गद्दी पर बैठने के आरम्भिक कुछ वर्षों में सुल्तान होशंग गुजरात के सुल्तान मुजफ्फरशाह तथा उसके बाद उसके पोते अहमदशाह से (जो मुजफ्फर शाह के मरने के बाद गद्दी पर बैठा) अनेक युद्धों में उलझा रहा, जिनमें हर बार उसे पराजय का मुँह देखना पड़ा। यह सोचकर कि उसकी हार का कारण उसकी सेना में हाथियों की कमी है, वह सन् 1422 में जाजपुर (उड़ीसा) के राजा के विरुद्ध एक अत्यन्त साहसिक अभियान पर चल पड़ा तथा अपने को घोड़ों का सौदागर बतला कर उसने छल से उसे पराभूत कर दिया तथा उससे प्रचुर धन-द्रव्य तथा 75 हाथी वसूल कर लौट आया।[1]

लौटते समय उसने लगे हाथ खेरला पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया तथा वहाँ के राजा नरसिंह को कैद कर अपने साथ ले आया। खेरला का राजा नरसिंह उस समय अपने बल-विक्रम के साथ-साथ धन वैभव के लिए भी विख्यात था। फिरिश्ता ने उसके प्रभुत्व और वैभव का उल्लेख करते हुए लिखा है—

"Nar Singh Rai, who had great wealth and power, being possessed of all the hills of Gondwana and other countries.... ..."[2]

वह बहमनी सुल्तान का करद सामन्त था। उसकी बेटी भी सुल्तान फीरोज बहमनी को ब्याही हुई थी। वचनिका में जिस नरसिंह का उल्लेख हुआ है, वह खेरला का शासक यही नरसिंह है।

गागरोण पर आक्रमण (ई० सन् 1423, वि० सं० 1480)

खेरला को पदाक्रान्त करने के बाद अपनी सेना को थोड़ा विश्राम दे होशंग सन् 1423 (वि० सं० 1480) में, नरसिंह प्रभृति अनेक दण्डोपनत हिन्दू

---

1. The Cambridge History Of India, Vol. III, Page 351; तबकाते-अकबरी, उ० तं० भारत, भाग 2, पृ० 55-56, सं० सैयद अतहर अब्बास रिजवी।
2. फिरिश्ता, अनु० जान ब्रिग्स तथा The Bahamani Kingdom Of Kulburga, Page 56-57.

राजाओं सहित, सदल-बल गागरोण पर चढ़ आया। गागरोण के शूरवीर और स्वाभिमानी शासक अचलदास ने उसका वीरतापूर्वक मुकाबला किया किन्तु अंततः वह लड़ता हुआ काम आया और उसके अंतःपुर की सहस्रों ललनाओं ने[1] जौहर कर अपने को चिता की लपटों के समर्पित कर दिया। यद्यपि इस युद्ध में अचलदास की मृत्यु के साथ ही गागरोण का पतन होगया तथापि उसने जीतेजी दुर्ग पर शत्रु का अधिकार नहीं होने दिया। **वचनिका के अनुसार यह युद्ध महाष्टमी से दूसरी अष्टमी के बीच हुआ था,[2] जो अंग्रेजी तारीख के अनुसार 13 सितम्बर, 1423 से 27 सितम्बर, 1423 तक चला। गागरोण का यह इतिहास-प्रसिद्ध साका ही, जिसकी ख्याति का हम प्रारम्भ में उल्लेख कर आए हैं, प्रस्तुत वचनिका का उपजीव्य है।**

गागरोण को अधिकृत कर सुल्तान होशंग ने ग्वालियर को जा घेरा, परन्तु वहाँ के राजा के पक्ष में दिल्ली के मुबारकशाह द्वारा हस्तक्षेप किए जाने पर उसने घेरा उठा लिया।

नरसिंह और सुलतान होशंग—

खेरला के शासक नरसिंह द्वारा सुल्तान होशंग की अधीनता स्वीकार कर लिए जाने पर सुल्तान अहमदशाह बहमनी उस पर कुपित होगया क्योंकि नरसिंह उसका करद सामन्त था। सन् 1398 में, अपनी जवानी के जोम में नरसिंह ने बहमनी राज्य के सूबे बरार में खूब लूटपाट मचाकर प्रचुर धन-द्रव्य एकत्र कर लिया था।[3] इस पर तत्कालीन बहमनी सुल्तान फीरोजशाह ने खेरला पर आक्रमण कर नरसिंह को दंडित किया था। साथ ही, उसे अपनी बेटी भी सुल्तान फीरोज बहमनी को ब्याहनी पड़ी थी। तबसे ही नरसिंह बहमनी सुल्तान का करद सामन्त चला आ रहा था। फीरोजशाह के बाद उसका भाई अहमदशाह गद्दी पर बैठा। उसे नरसिंह का मालवा सुल्तान होशंग की अधीनता स्वीकार करना सह्य नहीं हुआ, जिसके फलस्वरूप उसने सन् 1428 में खेरला के दुर्ग को घेर लिया। जब होशंग को इसका पता चला तो वह

---

1. वचनिका के अनुसार इनकी संख्या चालीस हजार थी, 15(5)
2. वचनिका, 21(1)
3. The Cambridge History Of India, Vol. III, page 491; The War of The Goldsmith's Daughter, Page 203, by Adam Watson.

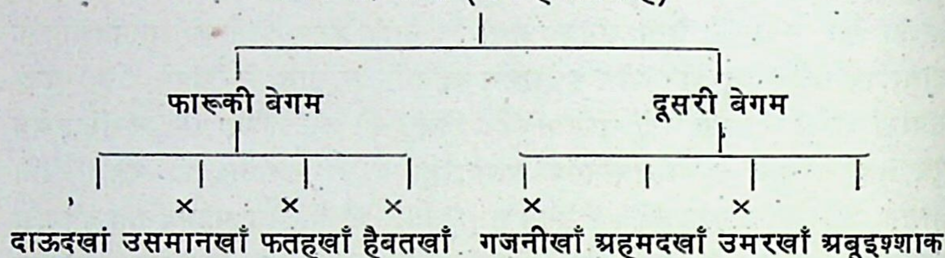
नरसिंह की सहायतार्थ सदल-बल आ पहुँचा परन्तु इस मुठभेड़ में होशंग को मुँह की खानी पड़ी। अहमदशाह बहमनी ने उसे बुरी तरह खदेड़ दिया। होशंग की सेना में ऐसी भगदड़ मची कि उसके हरम की बेगमें अहमदशाह के हाथों पड़ गई परन्तु वीर और उच्चाशय बहमनी सुलतान ने अपने 500 घुड़सवारों के संरक्षण में उन्हें सम्मानपूर्वक होशंग को लौटा दिया।[1] नरसिंह अब पुनः बहमनी सुल्तान का अधीनस्थ सामंत होगया। नरसिंह की यह स्थिति होशंग को सहन नहीं हुई। उसने सन् 1432-33 में, जब अहमदशाह बहमनी गुजरात के सुल्तान के विरुद्ध संघर्ष में उलझा हुआ था, खेरला पर पुनः आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में नरसिंह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया तथा नरसिंह के पुत्र ने होशंग की अधीनता स्वीकार कर ली।[2]

सुल्तान होशंगशाह : अन्य ज्ञातव्य

होशंग ने कालपी के शासक को भी दंडित किया। मालवा के सुल्तानों में वह बहुत ही साहसी और प्रतापी शासक हुआ है। उसने नर्मदा के किनारे अपने नाम पर होशंगाबाद नामक एक शहर भी बसाया, जो संप्रति इसी नाम से प्रसिद्ध है। 8 जुलाई, सन् 1435 को होशंग की मृत्यु होगई।[3] मांडू में होशंग का भव्य मकबरा आज भी मौजूद है। इसने मालवा पर लगभग 30 वर्ष पर्यन्त राज्य किया। सुल्तान होशंग ने दो विवाह किये थे, जिनसे कुल मिला कर उसके 8 लड़के और 2 लड़कियाँ हुई।[4] हमारी विवेच्य वचनिका में होशंग की सेना के प्रमुख योद्धाओं की सूची में, इनमें से जिनका नामोल्लेख हुआ है, उन्हें नीचे दिए गए वंशानुक्रम में[5] चिह्नांकित (×) कर दिया गया है ताकि पाठकों को उनकी पहचान करने में सुविधा रहे—

---

1. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, भाग 2, अनु० सैयद अतहर अब्बास रिजवी।
2. Mediaeval Malwa, P. 45-46 U. N. Dey; Adam Watson ने अपनी पुस्तक 'The War Of The Goldsmith's Daughter' में नरसिंह का सन् 1429 में मारा जाना लिखा है (पृ० 129-131), जो गलत है।
3. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, भाग 2, पृ० 63; Cambridge History Of India, Vol. III, Page 352, में होशंग की मृत्यु-तिथि 6 जुलाई 1435 दी है तथा G. Yazdani ने अपनी पुस्तक Mandu : The City Of Joy में 7 अगस्त, 1432 (पृ० 13); जो गलत है।
4. Mediaeval Malwa, P. 67, U. N. Dey,
5. Mediaeval India, Page 67, U. N. Dey.



होशंग की मृत्यु के बाद मलिक मुगीस खल्जी और उसके पुत्र महमूद खल्जी के समर्थन से होशंग का पुत्र गजनीखां मुहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बैठा परन्तु वह अत्यधिक शराबी, अदूरदर्शी और क्रूर स्वभाव का था। उसने अपने तीनों भाइयों को मरवा डाला तथा अपने भतीजे, दामाद निजामखाँ और उसके तीन छोटे बच्चों को अंधा करवा दिया। फलतः महमूद उससे शंकित होगया और उसने छल से अपनी बहिन के हाथों, जो गजनीखाँ को ब्याही थी, उसे विष दिलवाकर मरवा डाला तथा स्वयं सुल्तान बन बैठा। तभी से मालवा की सल्तनत पर गोरी वंश के स्थान पर खल्जी वंश का अधिकार होगया। महमूद खल्जी की गणना मालवा के सर्वाधिक प्रतापी और प्रभुत्वशाली सुल्तानों में की जाती है। उसके शासनकाल में मालवा की राज्य-सीमा का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। गागरोण का दूसरा साका (सन् 1444 में) महमूद खल्जी के ही शासनकाल में हुआ था, जिसकी संक्षेप में जानकारी प्राप्त कर लेना असंगत न होगा।

गागरोण का दूसरा साका (ई० सन् 1444)

सन् 1423 में गागरोण के पतन के बाद होशंग ने अपने शहजादे गजनीखाँ के अनुरोध पर गागरोण का किला उसे सौंप दिया था। गजनीखाँ के मरने पर मलिक मुगीस का बेटा महमूद खल्जी मालवा का सुल्तान बना और फलस्वरूप गागरोण का किला भी उसके अधिकार में चला गया। महमूद ने पहले सरदार बदरखाँ को और उसकी मृत्यु के बाद दिलशाद सुल्तान को गागरोण का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त किया। दिलशाद के समय में ही पाल्हणसी ने गागरोण दुर्ग पर फिर से अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। कुम्भलगढ़-प्रशस्ति के अनुसार महाराणा कुंभा ने मालवा-विजय से लौटते हुए गागरोण दुर्ग को भी विजय कर इसे अचलदास के पुत्र पाल्हणसी को सौंप दिया—

प्रत्यर्थिपार्थिवपराजयजन्महेतुर्वृन्दावतीपुरमदीदहदेष वीरः ।[1]
तद्गगराटगिरिदुर्गमपि क्षणेन संक्षोभमापयदपारपराक्रमेण ।।

'वचनिका' में वंश की रक्षा तथा खोई हुई राज्यलक्ष्मी को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से अचलदास द्वारा पाल्हणसी को दुर्ग से पलायन करने हेतु प्रेरित किए जाने का मार्मिक वर्णन हुआ है। जैसाकि आगे की घटनाओं से विदित है, पाल्हणसी ने, चाहे अल्पकाल के लिए ही सही, अपने पिता की इस अन्तिम इच्छा को पूरा कर दिखाया। मआसिरे-महमूदशाही के लेखक शिहाब हकीम के अनुसार सुल्तान महमूद खल्जी ने सन् 1444 में गागरोण पर आक्रमण किया था।[2] उस समय पाल्हणसी वहाँ का शासक था। मआसिरे-महमूदशाही में हुए इस उल्लेख के आधार पर कि पाल्हणसी ने दुर्ग की रक्षा के लिए पिछले सात वर्षों से तैयारी कर रखी थी तथा दुर्ग में पर्याप्त सैन्य-सामग्री और रसद एकत्र करली थी, यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः पाल्हणसी ने (सन् 1444 से सात वर्ष पहले अर्थात्) सन् 1437 के लगभग दुर्ग को पुनः अधिकृत कर लिया था।

मआसिरे-महमूदशाही के लेखक ने गागरोण के इस दूसरे साके का अत्यन्त विशद और सटीक वर्णन किया है, जो प्रत्यक्षदृष्ट होने का-सा आभास देता है। अन्य फारसी तवारीखों की भाँति मुस्लिम बादशाहों के प्रति किंचित् पक्षपातपूर्ण होने पर भी यह तद्विषयक जानकारी का एक प्रमुख और प्रामाणिक स्रोत है।

मआसिरे-महमूदशाही के अनुसार, "सुलतान महमूद खल्जी अपनें अमीर-उमरावों और 29 हाथियों सहित स्वयं काली सिंध नदी के तट पर आ उतरा और अपनी विशाल सेना से दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। पाल्हणसी ने दुर्ग की रक्षा की पिछले सात वर्षों से पूरी-पूरी तैयारी कर रखी थी। तथापि उसने मेवाड़ के तत्कालीन महाराणा एवं अपने मामा राणा कुंभा से सैनिक

---

1. कुम्भलगढ़-प्रशस्ति 259, वीरविनोद; भाग 1; कविराजा श्यामलदास।
2. मआसिरे-महमूदशाही। महमूद खल्जी ने ता॰ 25.11.1443 को गागरोण-विजय के लिए प्रस्थान किया था।

सहायता की प्रार्थना की, जिस पर कुंभा ने धीरा[1] (धीरजदेव) के नेतृत्व में विविध युद्धोपकरणों से सज्जित एक सैन्य-दल उसके साथ भेज दिया। दोनों ओर से भीषण संग्राम हुआ, जो लगातार सात दिन तक चलता रहा। इस युद्ध में राजपूत अत्यधिक संख्या में हताहत हुए। फिर भी वे दुर्ग की रक्षा में अन्तिम क्षण तक चट्टान की तरह अविचल डटे रहे।"

"सातवें दिन धीरा, जो अपने शौर्य और सूझबूझ के लिए विख्यात था तथा जिसकी सलाह से पाल्हणसी युद्ध का संचालन कर रहा था, दुर्भाग्यवश अपने सभी योद्धाओं सहित वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसके मरते ही पाल्हणसी की हिम्मत टूट गई। उसे अब अपनी विजय की कोई आशा नहीं रही। फलतः अपने कुछ बचे खुचे साथियों सहित वह रात के अंधेरे में दुर्ग से भाग निकला। परन्तु जंगल में भटकते हुए उसका पाला बर्बर भीलों के एक गिरोह से पड़ गया, जिसने पाल्हणसी सहित उस भगोड़े दल के प्रत्येक सैनिक का सिर धड़ से अलग कर दिया तथा उनके रक्तरंजित शवों को भूमि पर यों ही पड़ा छोड़ वह चलता बना। उधर धीरा की मृत्यु और पाल्हणसी के पलायन से दुर्ग-निवासियों में भय छा गया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने जौहर का अनुष्ठान करने का निश्चय किया। उसी रात चिताग्नि जलाई गई, जिसमें बूढ़े-बच्चे तक जल मरे। कुछ ने जहर खा लिया और कुछ ने तलवार से अपनी गर्दन काट डाली। कुछ कमजोर थे, वे बच निकले। जब जौहर की लपटों से उस अंधेरी रात में भी दिन का-सा उजाला छा गया तथा अधजलों के मर्मभेदी क्रन्दन और चीख-पुकार की आवाज बाहर सुनाई दी तो शाही सेना ने हिम्मत कर किंवाड़ तोड़ डाले और किले में प्रविष्ट होगई। आग और धुएँ के घटाटोप में उसने देखा कि दुर्गवासियों के मस्तक-विहीन धड़ नाना बहुमूल्य रत्नाभूषणों से लदे थे तथा उनके घर अनेक दुर्लभ वस्तुओं से भरे थे। यह देख शाही सेना में उन्हें पाने की लूट मच गई। इस लूट में अनेक बन्दी बना लिए गए तथा अगणित सुन्दर दासियाँ, रूपसियाँ तथा प्रचुर सोना-चाँदी, द्रव्य और अश्वादि उनके हाथ लगें। सुबह होने पर विजयी सुल्तान ने दुर्ग में प्रवेश

1. रामवल्लभ सोमानी ने 'महाराणा कुंभा' (पृ० 74-75) में इसका नाम 'दाहिर' लिखा है, जो अशुद्ध है। इसी भाँति श्री कालूराम शर्मा एवं डॉ० प्रकाश व्यास ने भी अपनी पुस्तक 'राजस्थान का इतिहास' (पृ० 112) में इसका नाम 'दाहिर' लिखा है किन्तु इसका सही नाम 'धीर' (या धीरा) है, जैसाकि मआसिरे-महमूदशाही में उल्लिखित है।

किया। जगह-जगह लगे लाशों के ढेर से उठी दुर्गन्ध के कारण दुर्ग में प्रवेश करना असम्भव होगया था। सुल्तान की आज्ञा से सेना की एक टुकड़ी भगोड़े सैनिकों का पीछा करने के लिए भेजी गई, जिसने कुछ को तलवार के घाट उतार दिया और कुछ कैदियों की तरह रस्सियों से बाँध कर पकड़ लाए गए। सुल्तान ने उदारतापूर्वक अपने सैनिकों को उनके द्वारा लूटा गया माल उन्हें ही बतौर इनाम बख्श दिया।''[1]

शिहाब हकीम ने गागरोण के किले को 'हिन्दुस्तान के किलों के कंठहार का बिचला मोती' कहकर प्रशंसित किया है तथा आगे लिखा है—'कुछ समय बाद सुल्तान ने दुर्ग में एक और कोट का निर्माण करवाया, जिसका नाम उसने 'मुस्तफाबाद' रखा। गागरोण दुर्ग के पतन के समाचारों से सर्वत्र हड़कम्प मच गया। यहाँ तक कि आसपास के 24 गढ़ों के गढपति अपने-अपने गढ़ों को छोड़कर भाग खड़े हुए।'[2]

गागरोण के इस दूसरे साके का वर्णन एक अन्य फारसी तवारीख 'जफरुलवालेह' में भी मिलता है, जिसके अनुसार—

"(सुल्तान महमूद) 19 नवम्बर, 1445 ई० को करकून (गागरोण) पहुँच गया। यह स्थान होशंग के राज्य में सम्मिलित था और राय फालन (पाल्हणसी) ने उसका अपहरण कर लिया था। उसने किले को घेर लिया और उसे अपनी शक्ति से विजय कर लिया। वहाँ के निवासियों में से वे, जो वहाँ उपस्थित थे, तलवार के घाट उतार दिए गए। जिन लोगों की हत्या हुई, उनमें राय का वकील देहरा (धीरा) भी था।' राय अपने प्राण बचाकर वहाँ से निकल गया, किन्तु उसकी स्त्रियाँ अग्नि में जल कर नष्ट होगईं। ख़ल्जी ने कोट का पुनः निर्माण कराया और उसका नाम 'मुस्तफाबाद' रखा। यह किला उस क्षेत्र में अत्यन्त दृढ़ता, बलन्दी तथा शान के लिए प्रसिद्ध था। इस किले को विजय करने के उपरान्त वह जिस किले पर भी पहुँचता था, उसे वहाँ के निवासियों से खाली पाता था। कारण कि, करकून (गागरोण) को

---

1. Gagron Fort : The Second Saka; A. H. Nizami; (मआसिरे-महमूदशाही के आधार पर पठित लेखक का शोध-पत्र)।
2. Gagron Fort : The Second Saka; A. H. Nizami (Research-Paper) (मआसिरे-महमूदशाही के आधार पर)।

उसने जिस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कराया था, उससे भयभीत होकर वे पलायन कर जाते थे।"[1]

इस प्रकार गागरोण के इस दूसरे साके के बाद खीचिंयों का वर्चस्व उत्तरोत्तर क्षीण होता चला गया। नैणसी के अनुसार बादशाह अकबर के शासन-काल तक खीचियों का प्रभुत्व खीचीवाड़े पर बरकरार रहा। बादशाह अकबर ने आंबेर के कछवाहा कुँवर मानसिंह भगवंतदासोत को फौज दे खींचीवाड़े पर भेजा। उस समय रायसल खींची वहाँ का शासक था। कुँवर मानसिंह और रायसल के बीच घमासान युद्ध हुआ, जिसमें विजय मानसिंह की हुई। रायसल हार गया। तत्पश्चात् अकबर ने गढ़ गागरोण बीकानेर के पृथ्वीराज कल्याणमलोत को प्रदान किया। तब पुनः युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज जीता और खींची हार गए। अकबर के बाद बादशाह जहांगीर ने खींचियों के साथ सख्ती की एवं मऊ राव रतन को सौंप दी तथा उसे खीचियों को मारकर बलात् उस भूभाग पर अपना अधिकार करने का आदेश दिया। फलतः हाडाओं और खीचियों में लगातार लड़ाइयाँ होती रहीं, जिनसे खींची दिन-दिन कमजोर पड़ते गए और हाडाओं ने इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। स्वतंत्रता-पूर्व तक गागरोण दुर्ग कोटा के महाराव के ही अधीन था।[2]

गागरोण के इतिहास, मालवा सल्तनत तथा सुल्तान होशंग से सम्बद्ध विवरण यहीं समाप्त कर अब हम गागरोण संस्थान के अधिपति तथा वचनिका के चरित्रनायक अचलदास के राजवंश का संक्षिप्त परिचय देंगे।

6. चौहान राजवंश : संक्षिप्त परिचय

अचलदास खीची चौहानवंशीय क्षत्रिय था, जो क्षत्रियों के मान्य 36 राजवंशों में से एक है। खीची, चौहानों की ही एक शाखा है। यह चौहान राजवंश अपनी अनुपम वीरता, उद्भट पराक्रम, अप्रमेय स्वाभिमान तथा अनूठी स्वामिभक्ति के लिए सदा से ही प्रसिद्ध रहा है। अजमेर का महाप्रतापी एवं पराक्रमी सम्राट् पृथ्वीराज तृतीय इसी कुल का रत्न था, जिसने एक बार तो मोहम्मद गोरी जैसे प्रबल शत्रु के भी दाँत खट्टे कर दिए थे। यह और बात

---

1. जफरुलवालेह; उ०तै०का० भारत, भाग 2, पृ० 151-521 सं० सैयिद अतहर अब्बास रिजवी।
2. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 255-256, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।

है कि तराइन के दूसरे युद्ध में वह कूटनीति में उससे मात खागया, जिसके फलस्वरूप उसे अपने साम्राज्य के साथ-साथ प्राणों से भी हाथ धोना पड़ा। उसकी इस पराजय पर टिप्पणी करते हुए चौहान-इतिहास के मर्मज्ञ एवं अधिकारी विद्वान् डॉ० दशरथ शर्मा ने उचित ही लिखा है—'वह पराजय केवल सपादलक्ष की ही नहीं, अपितु सब उत्तर भारत की पराजय सिद्ध हुई।'[1]

इसी भाँति, चौहान राजवंश में हठ का धनी, शरणागत-वत्सल एवं सत्य-प्रतिज्ञ राव हमीर हुआ, जिसने केवल अपनी शरण में आए एक विधर्मी की प्राण-रक्षा के लिए अपना धन-धाम, राज्य-वैभव आदि सब कुछ निछावर कर दिया। जालोर का शासक वीर कान्हडदे तथा सिवाणा के सातल-सोम जैसे शूरवीर भी इसी चौहान राजवंश में हुए हैं।

चौहान राजवंश के इन्हीं वीरोचित गुणों पर रीझकर कवियों ने उनकी कीर्ति में एक से बढ़कर एक अनूठे ग्रन्थ रचे हैं। पृथ्वीराज-विजय से लेकर वंशभास्कर तक प्रशस्ति का यह स्वर उत्तरोत्तर मुखर ही होता रहा है। कवियों ने ही नहीं, इतिहासकारों ने भी जीवन के उदात्ततम मूल्यों के लिए इन वीरों द्वारा किए गए त्याग और बलिदान की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। राजपूत-इतिहास एवं संस्कृति के अनन्य प्रेमी और अन्वेषी कर्नल जेम्स टॉड ने चौहान-राजवंश की प्रशस्ति में अपने भावोद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है—

"This is the most valiant of Agni-Kuls, and it may be asserted not of them only, but of whole Rajput race.... Though the 'Talwar Rathoran' would be ready to contest the point, impartial decision with a knowledge of their respective merit, must assign to the Chohan, the van in the long career of arms."[2]

आगे चलकर कर्नल टॉड पुनः लिखते हैं—

"There is no spot in Rajpootana that does not contain some record of the illustrious Chohan, and though every race has

---

1. चौहान सम्राट् पृथ्वीराज तृतीय और उसका युग, भूमिका, डॉ० दशरथ शर्मा।
2. Annals And Antiquites Of Rajasthan, Vol. I, Page 79 M. N. Publishers, New Delhi.

its career of glory the sublimity of which, the annals of the Sisodias before the reader sufficiently attest, yet with all my partiality for those with whom I long resided and with whose history I am best acquainted, my sense of justice compels me to assign the palm of martial intrepedity to the Chohan over all the 'royal races' of India."[1]

कर्नल टॉड का कथन हमें चौहान राजवंश के प्रति किंचित् पक्षपातपूर्ण एवं अतिरंजित प्रतीत हो सकता है, किन्तु यदि हम इतिहास की कसौटी पर इसका परीक्षण करें तो हम इससे सहमत हुए बिना न रहेंगे। प्रश्न मात्र वीरता या शौर्य का नहीं है, अपितु उन आदर्शों और जीवन-मूल्यों का है, जो उस शौर्य और वीरत्व के प्रेरक रहे हैं और वे हैं—स्वातंत्र्य, स्वाभिमान, धर्म-रक्षा, शरणगत-वत्सलता एवं वचन-पालन आदि, जिनकी रक्षा व निर्वाह के लिए उन्होंने किसी भी त्याग को त्याज्य और मूल्य को मँहगा नहीं समझा है। उन्होंने जो जौहर जगाए, वे इतिहास के कीर्तिपृष्ठों में अमरत्व के उज्ज्वल आलेख हैं। रणथंभोर, जालोर, सिवाणा और गागरोण के ध्वस्त खंडहरों में आज भी उन सहस्रों ललनाओं की याद जीवित है, जो सतीत्व की रक्षा के लिए ज्वाला का शृंगार बन गई थीं! चौहान राजवंश की, त्याग और उत्सर्ग की इन्हीं गौरवमयी परंपराओं को दृष्टि में रख विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है—

"There is no better theme for history than the determined struggle of a brave people for the maintenance of its liberty, religion and culture. According to all our accounts, old as well as new, the eponymous hero Chahman or Chauhan was created to fight for and defend all that is best in the Indian values of life."[2]

चौहान राजवंश : उत्पत्ति :—

ऐसे इस प्रसिद्ध चौहान-राजवंश की उत्पत्ति को लेकर इतिहास के विद्वानों में बड़ा मतभेद है। यहाँ इस प्रश्न का विस्तृत विवेचन न उद्दिष्ट है, न

---

1. Annals And Antiquities of Rajasthan, Vol. I, Page 550, M. N. Publishers, New Delhi.
2. Early Chauhan Dynasties, Preface, Dr. Dashrath Sharma.

आवश्यक। पाठकों की सामान्य जानकारी के लिए एतद्विषयक प्रमुख मान्यताओं का उल्लेख करते हुए उनकी विचारणा का केवल सारभूत निष्कर्ष ही यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थानी काव्य-परम्परा में चौहानों के आदि पुरुष (चतुर्भुज रूपधारी, अतः चौहान) की उत्पत्ति आबू पर्वत पर वसिष्ठ मुनि के अग्निकुण्ड से मानी गई है—

इम वशिष्ठ मख अनल-कुंड अर्बुद गिरि उप्पर।[1]
चउ भुजदंड चुहान अधिप निकस्यो जग ईश्वर।।

तथा—

अमरख करे वसिष्ठ जब चहुवाण उपाया।[2]

पृथ्वीराजरासो ही कदाचित् इस धारणा का आधार रहा है[3] तथा आगे चल कर चौहानों के बड़वों की पोथियों में प्रायः इसी मान्यता को दुहराया गया है—

अनलकुंड से ऊपन्या, अर शर फेरी आण।[4]
आबू से एवाडगढ, चाहू बसे चौहान।।

जहाँ तक अग्निकुण्ड से उत्पत्ति की बात है, आज के वैज्ञानिक युग में यह मान्यता किसी के गले नहीं उतरती। फलतः आधुनिक युग के विद्वानों और इतिहास-वेत्ताओं ने इस प्रसंग की अपने-अपने ढंग से व्याख्या करने का प्रयास किया है।

हमारे विचार से इनमें कर्नल टॉड ही वह प्रथम विद्वान् था, जिसने चौहानों की उत्पत्ति विषयक इस प्रतीकात्मक प्रसंग का रहस्य सर्वप्रथम उद्घाटित किया है। यद्यपि उसका यह मानना कि चौहानों का मूल उद्‌गम उस विदेशी जाति से है, जिसकी संज्ञा 'तक्षक' थी तथा जो ईसा से दो शताब्दी पूर्व आक्रांता के रूप में भारत आई थी,[5] भ्रांत है, तथापि **उसके इस मत में सार**

1. वंशभास्कर, पृ० 400
2. डिंगल-कोश, पृ० 6, कविराजा मुरारिदान।
3. पृथ्वीराज रासो, खंड 1, पृ० 45–51, सं० कविराव मोहनसिंह।
4. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ 2
5. Annals And Antiquities Of Rajasthan, Vol: I, Page 94-95, M. N. Pub., New Delhi.

है कि अनलकुण्ड से उत्पत्ति की कथा के मूल में ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ-शुद्धि की प्रक्रिया से क्षत्रियत्व में दीक्षित किए जाने का ही रहस्य निहित है।

वस्तुत: अग्निकुण्ड से उत्पत्ति की कल्पना भी पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व की नहीं है, जिस पर टॉड की मान्यता आधारित है। परन्तु इसके लिए टॉड को दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि उस समय तक चौहान-इतिहास पर प्रामाणिक प्रकाश डालने वाले वे ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुए थे, जिनसे रासो में वर्णित अग्निकुण्ड से उत्पत्ति की कथा निरस्त होजाती है। उदाहरणत: तथाकथित अग्निकुल की ही एक शाखा प्रतिहार है, जिसका पहले मंडोर (जोधपुर) पर शासन था। प्राप्त शिलालेखों के अनुसार मंडोर के ये प्रतिहार 'हरिश्चन्द्र' नामक ब्राह्मण तथा 'भद्रा' नामक क्षत्राणी के वंशज हैं।[1] इससे यह सिद्ध हो जाता है कि प्रतिहारों सहित चौहानों के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की बात निर्मूल है।

इस सम्बन्ध में, डॉ० भंडारकर का मत है कि चौहान कदाचित् 'खजर' (अपभ्रष्ट गुर्जर) जाति के थे, जो मूलत: पुजारी वर्ग की कोई जाति थी।[2] उनकी मान्यता का आधार 'वासुदेव वहमन' की एक मुद्रा है। डॉ० भंडारकर का मत है कि 'वासुदेव' के आगे लगा 'वहमन' वस्तुत: 'चाहमान' है जिसे पठन-दोष से 'वहमन' पढ़ लिया गया है। अपनी इसी धारणा के आधार पर डॉ० भंडारकर इस 'वासुदेव' को शाकंभरी शाखा के प्रवर्तक उस वासुदेव चौहान से अभिन्न मानते हैं, जिसका 'पृथ्वीराजविजय' और 'प्रबन्धकोश' में उल्लेख हुआ है। चूंकि 'वासुदेव खजर' जाति का था, अत: डॉ० भंडारकर ने इस 'वासुदेव खजर' को चौहानों के आदि पुरुष वासुदेव[3] से एकरूप कर यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि चौहान मूलत: इसी 'खजर' नामक विजातीय वासुदेव की संतति है।

विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा ने डा० भंडारकर की इस मान्यता का युक्तियुक्त खंडन करते हुए निष्कर्ष रूप में अपना यह मत प्रस्तुत किया है कि चौहान मूलत: ब्राह्मण वर्ग के थे एवं वे किसी विदेशी जाति के वंशज न होकर

---

1. बिड़ला-विद्या-विहार-पत्रिका, अंक 2–3, पृ० 11-20, ले० डॉ० दशरथ शर्मा।
2. इंडियन एंटीक्वेरी, XII; पृ० 25-29, डॉ० भंडारकर का लेख।
3. पृथ्वीराजविजय व प्रबन्धकोश।

यहीं के ब्राह्मण-वर्ग से उत्पन्न हुए थे, जैसाकि बिजोलिया के शिलालेख से स्पष्ट सिद्ध होता है—'विप्रः श्रीवत्सगोत्रेभूत' ।[1] डॉ० भंडारकर के मत के विरोध में एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि 'वासुदेव वहमन' की विवेच्य मुद्रा के पृष्ठभाग में 'मुलतान मलका' भी अंकित है, जिसका अर्थ है – मुल्तान का राजा। तद्विपरीत, वासुदेव चौहान 'पृथ्वीराजविजय' के अनुसार सपादलक्ष का राजा था, जो सांभर के किसी विद्याधर से सांभर-झील में उत्पन्न नमक उपहार-रूप में प्राप्त करता था।[2] अतः डॉ० दशरथ शर्मा के अनुसार मुल्तान का राजा उक्त 'वासुदेव वहमन', वासुदेव चौहान नहीं हो सकता। कारण, सपादलक्ष सांभर का समीपस्थ भूभाग था एवं नागोर (अहिच्छत्रपुर) व पूर्णतल्ल उसके प्रमुख नगरों में से थे।[3] बाद में सांभर चौहान नरेशों की राजधानी हो जाने पर वे 'शाकम्भरीश्वर' या 'संभरीनाथ' आदि उपाधियों से सम्बोधित किए जाने लगे।

चौहानों की उत्पत्ति विषयक इन विविध मतमतान्तरों की चर्चा यहीं समाप्त कर अब हम विद्वानों के निष्कर्ष को संक्षेप में प्रस्तुत कर देना उचित समझते हैं। **इस सम्बन्ध में, अब मान्य मत यही है कि चौहान मूलतः ब्राह्मण थे, जिन्हें या तो ब्राह्मणों ने धर्म-रक्षार्थ क्षत्रियवर्ग में दीक्षित किया था या जिन्होंने स्वेच्छया क्षत्रियवर्ण स्वीकार कर लिया था, वैसे ही जैसे पल्लवों, कादंबों और गुहिलों ने किया था।**

'क्यामखांरासो' में भी चौहानों को जामदग्नेय गोत्रीय वत्स का पुत्र बताया गया है,[4] जिससे चौहानों का मूलतः ब्राह्मण होना सिद्ध है। इसी भाँति, 'वीरविनोद' के लेखक कविराजा श्यामलदास ने भी चौहानों की उत्पत्ति के विषय में यही अभिमत व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—"ऐसा मालूम होता है कि करीब 2000 वर्ष पहिले जब बौद्ध मत की वृद्धि थी, तब पाँच राजपूतों* को, जो बौद्धमती हो गए होंगे, वेद के मजहब पर लाये और प्रायश्चित्त करने

1. Early Chauhan Dynasties, Page 9, Dr. Dashrath Sharma.
2. पृथ्वीराजविजय, चतुर्थ सर्ग।
3. चौहान सम्राट् पृथ्वीराज तृतीय और उनका युग, पृ० 9, डॉ० दशरथ शर्मा।
4. क्यामखांरासो, पृ० 4, सं० डॉ० दशरथ शर्मा।

*"1. पड़िहार (प्रतिहार), 2. चालुक्य (सोलंकी), 3. परमार (पंवार), 4. चाहमान (चौहान) और 5. डोड–सम्पादक।"

के बाद पढ़ने के लायक बनाकर उन्हीं राजपूतों की सहायता से ब्राह्मणों ने अपना बल बढ़ाकर वेदमत फिर जारी किया होगा। धीरे-धीरे दूसरे राजपूत भी उन राजपूतों के साथ होकर वेद को मानने लगे होंगे। इस प्राचीन इतिहास का निर्णय करना बहुत ही कठिन है।"[1]

डॉ० दशरथ शर्मा ने एतद्विषयक सारभूत निष्कर्ष को यों प्रस्तुत किया है–

"वस्तुत: आरंभ में चौहान ब्राह्मण थे, धर्म की रक्षा के लिए क्षत्रियोचित कार्य संभालने के कारण, बाद में उनकी गणना क्षत्रियों में की गई। प्राचीन काल में इसी तरह ब्राह्मणों से अनेक क्षत्रियवंशों का और क्षत्रियों से अनेक ब्राह्मण-वंशों का प्रवर्तन हुआ है।"[2]

चौहान-राजवंश : शाखाएँ

प्राय: प्रत्येक राजवंश की अपनी अनेक शाखाएँ-उपशाखाएँ होती हैं, जो उस वंश में हुए किसी विशिष्ट व्यक्ति या उसके द्वारा शासित स्थान विशेष के नाम पर चल पड़ती हैं। उदाहरणत: जयपुर के कछवाहा राजवंश में राव शेखाजी के नाम पर कछवाहों की शेखावत, राव खंगार जी के नाम पर खंगारोत आदि शाखाएँ हैं। तदनन्तर, खंगारजी के पुत्र मनोहरदासजी के नाम पर खंगारोतों की मनोहरदासोत (संक्षिप्तीकृत रूप 'मनोहर') उपशाखा चल पड़ी। इसी भाँति, स्थान विशेष के नाम पर भी शाखाएँ चल पड़ती हैं। जैसे राव दूदाजी जोधावत का राज्य-स्थान मेड़ता होने से उनके वंशज मेड़तिया राठौड़ कहलाते हैं। चौहानों की सोनगरा शाखा का नामकरण भी 'स्वर्णगिरि' (जालोर) पर शासन करने के कारण हुआ है। कभी-कभी कोई विशेष घटना भी किसी शाखा-प्रशाखा के प्रवर्तन का कारण बन जाती है, जैसी कि खीचियों के विषय में नैणसी ने दी है[3] जिसकी चर्चा हम यथाप्रसंग आगे करेंगे।

इसी प्रकार, चौहानों की भी अनेक शाखाएँ हैं, जिनकी संख्या को लेकर बड़ा मतभेद और अनैश्चित्य है। सामान्यतया चौहानों की 24 शाखाएँ प्रसिद्ध हैं, वैसे ही जैसे परमारों की 35 तथा राठौड़ों की 13, परन्तु चौहानों की इन 35 शाखाओं के अलावा और भी कई शाखाओं का उल्लेख मिलता है।

---

1. वीरविनोद, भाग 2, पृ० 101।
2. क्यामखांरासो (टिप्पण), पृ० 109, सं० डॉ० दशरथ शर्मा।
3. नैणसी रीं ख्यात, भाग 1, पृ० 250-51, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।

उदाहरणतः अनुश्रुति व भाटों की पोथियों के अनुसार चौहानों की 10 शाखाएँ साँभर से तथा 24 नाडोल से निकली हैं।[1] वस्तुतः इस विषय में इतना मतभेद और अनैश्चित्य है कि चौहानों की जो प्रसिद्ध 24 शाखाएँ अलग-अलग इतिहासकारों ने गिनाई है, उनमें ही एकरूपता नहीं है। नैणसी की सूची[2] कर्नल टॉड की सूची[3] से नहीं मिलती और कर्नल टॉड की सूची कविराजा बाँकीदास की सूची[4] से। ऐसी स्थिति में, इस झमेले में न पड़ हमें इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि चौहानों की इन 24 शाखाओं में से खीची भी एक है। अब हम संक्षेप में चौहानों की इस खीची शाखा के उद्भव का इतिहास बताते हुए हमारे चरित्रनायक अचलदास के संस्थान–गागरोण के खीची राजवंश का संक्षिप्त परिचय देंगे।

7. खीची शाखा : संक्षिप्त परिचय—

खीची शाखा के उद्भव के सम्बन्ध में खिल्चीपुर की हस्तलिखित ख्यात के अनुसार साँभर के विशलदेव के 24 पुत्रों से चौहानों की 24 शाखाएँ चलीं। इनमें अजयराव से खीची (जायलगढ) शाखा का प्रवर्तन हुआ।[5] तद्विपरीत, नैणसी की ख्यात के अनुसार नाडोल के राव लाखणसी (लक्ष्मणसिंह) की आठवीं पीढी में माणकराव हुआ, जिसे उसके पिता आसराव ने 'गवारियों' (एक जाति विशेष, जो मूँज की रस्सी बाँटने, छप्पर बाँधने आदि का धंधा कर, अपना जीविकोपार्जन करती है) के यहाँ खिचड़ी खा लेने से 'खीची' नाम दिया और इसी कारण उसके वंशज 'खीची' कहलाए।[6] इस सम्बन्ध में, डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह ने नैणसी की ख्यात को गलत रूप से उद्धृत किया है। उनका यह लिखना कि 'नैणसी की ख्यात में अजयराव को उसके पिता माणिक्यराव द्वारा 'खीची' नाम दिया जाना लिखा है,'[7] भ्रांत है। तद्विपरीत, **नैणसी की ख्यात में,**

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 9; ले० लल्लूभाई भीमभाई देसाई।
2. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 89, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
3. Annals & Antiquities Of Rajasthan, Vol. I, Page 101, M. N. Pub. New Delhi.
4. बाँकीदास री ख्यात, पृ० 141, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
5. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, भाग 1, पृ. 89, ले. लल्लूभाई भीमभाई देसाई।
6. नैणसी-री-ख्यात, भाग 1, पृ. 250-51, सं. बदरीप्रसाद साकरिया।
7. भगवंतराय खीची और उनके मंडल के कवि, पृ. 46, ले. डॉ. महेन्द्रप्रतापसिंह।

जैसाकि हमने ऊपर लिखा है, माणिक्यराव को उसके पिता आसराव द्वारा 'खीची' नाम दिए जाने का उल्लेख है, न कि माणिक्यराव द्वारा उसके पुत्र अजयराव को। अतः नैणसी के उल्लेखानुसार तो खीची-शाखा का मूल पुरुष साँभर के राजा माणकराव को माना जाना चाहिए, जिसे उसके पिता आसराव ने 'खीची' उपाधि दी थी। एक अन्य मत यह है कि माणकराव का द्वितीय पुत्र अजयराव साँभर से सुदूर उत्तर-पश्चिम में सिंध सागर (दोआब, सिंधु व झेलम नदी के बीच का क्षेत्र) में बस गया तथा वहाँ खीचपुर-पट्टन को अपनी राजधानी बनाई, जिससे अजयराव के वंशज खीची चौहान कहलाए। खीची चौहानों का मूल वतन पहले पंजाब में ही था।[1] इस दृष्टि से. अजयराव खीची चौहानों का मूल पुरुष है। अधिकांश ग्रन्थों में इसी आशय का उल्लेख है, जो संगत प्रतीत होता है। अब हम 'खीची' शब्द की व्युत्पत्ति पर आते हैं, जिसके बारे में अनेक मत हैं।

'खीची' शब्द की व्युत्पत्ति –

चौहानों की इस 'खीची' शाखा का यह नाम क्यों पड़ा, इसे लेकर अनेक मत प्रचलित हैं, जिनमें उल्लेखनीय ये हैं—

भारत-राजमंडल ग्रंथ में लिखा है कि माणकराव के पुत्र अजयराव ने खिल्चीपुर-पट्टन नगर बसाया, जिससे उसके वंशज खीची राजपूत कहलाए।[2]

खिल्चीपुर की ख्यात में उल्लेख है कि अजयराव ने सोने-चाँदी की खिचड़ी करके बाँटी, जिससे उसके वंशजों का नाम खीची पड़ा।[3] यह मत खीची-शाखा के मूल पुरुष के वैभव और औदार्य के ज्ञापनार्थ किसी की मनगढंत कल्पना से अधिक महत्व नहीं रखता।

नैणसी की ख्यात के अनुसार राव आसराव ने अपने पुत्र माणकराव से कहा कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक एक दिन में तू जितनी धरती पर घूम आएगा, उतनी ही तुझे दे दी जाएगी। तदनुसार माणकराव सूर्योदय होते ही ऊँट पर बैठ चल पड़ा तथा नागौर पट्टी के 84 गाँवों से होता हुआ भदाण व जायल पहुँच

1. History Of Modern India, Maratha Period, G.S. Sardesai, Page 88-91, तथा Hind Rajasthan, Page 804-13.
2. भारत-राजमंडल, पृ. 460-64
3. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ. 90, ले. लल्लूभाई भीमभाई।

गया । वहाँ 'गवारियों' का डेरा पड़ा था । माणकराव दिन भर का भूखा था । अतः गवारियों के मनुहार करने पर उसने कहा—"जो भोजन तैयार हो, वही ले आओ ।" इस पर गवारिये चावल-मूँगों की खिचड़ी, जो उस समय तैयार थी, दोनों हाथों में भरकर ले आए, जिसे माणकराव ने ऊँट पर चढ़े-चढ़े ही खा ली । संध्या को लौटने पर माणकराव ने अपने पिता को गवारियों के यहाँ खिचड़ी खाने की बात बताई तो पिता (आसराव) ने कहा "तुमने यों खिचड़ी खाई तो हमने तुम्हारी शाखा का नाम 'खीची-री' दिया और वह धरती तुम्हें दी ।" तदनन्तर आसराव के निर्देशानुसार माणकराव ने भदाण तथा जायल – दोनों जगह कोट (गढ़) बनवाकर अपनी राजधानी स्थापित की ।[1]

वंशभास्कर में खीची कहलाने का निम्नोक्त कारण दिया है—

बूठो मेघ नहीं जिण वेला, भैचकि भूप हुवा सब भेळा ।[2]
जीमण खिच्च जिकाँ दीधो जिम, आव्हय खिच्चीराज हुवो इम ।।

वीरविनोद के अनुसार "माणिक्यराज के मुहुःकर्म्मा साँभर के राजा थे । उनके दो बेटे—एक रामचन्द्र और एक खिच्चीराज हुए । रामचन्द्र साँभर के राजा हुए और खिच्चीराज से खिच्ची चहुवान कहलाए ।"[3]

परन्तु खीची शाखा के नामकरण के सम्बन्ध में अधिकतर मान्य मत यह है कि माणकराव के वंशज सिंध सागर (दोआब; सिंधु व झेलम का मध्यवर्ती क्षेत्र) में खीचपुर-पट्टन नामक नगर पर राज्य करने के कारण खीची चौहान कहलाए । इस सम्बन्ध में कुछ उल्लेख ध्यान देने योग्य हैं :—

(i) "Khichi Chauhan's first settlement was at Sind Sagar, a tract extending over one hundred miles between the Behut and Sind with their Capital at Khichpur-Patan."[4]

---

1. नैणसी-री-ख्यात, भाग 1, पृ० 250-51, सं० बदरीप्रसाद साकरिया ।
2. वंशभास्कर, पृ० 1192;
3. वीरविनोद, भाग 2, पृ० 104;
4. Ruling Princes & Chiefs Of India, 1930; Page 189-94 (Chota-Udaipur State).

(ii) "Descended from Manik Rao (Sambhar) the Khichi Chauhans first settled in remote Sind Sagar........whose Capital was Khichpur—Patan."[1]

(iii) "The Khichis appear to have first settled in Sind-Sagar in the Punjab."[2]

कर्नल जेम्स टॉड ने भी माणकराव के अनेक पुत्रों से चौहानों की विभिन्न शाखाओं का उद्भव मानते हुए इस तथ्य की पुष्टि की है कि खीची चौहान सिंधसागर के दोआब क्षेत्र में बसे थे, जिसकी राजधानी खीचपुर-पाटन थी :—

"Manik-Rae, whom we may consider as the founder of the Chohans of the North, recovered Ajmer. He had a numerous progeny, who established many petty dynasties throughout western Rajwarra, giving birth to various tribes, which are spread even to the Indus. The Kheechie, the Hara, the Mohil............The Kheechies were established in the remote 'Do-abeh', called Sinde-Sagar, comprising all the tract between the Behut and the Sinde, a space of sixty eight coss, whose capital was keechpoor Patun"[3]

कवि शंकरराव-कृत भीमविलास में लाखणसी के 24 बेटों से चौहानों की 24 शाखाएँ फटने के प्रसंग में चौथे पुत्र 'खीचर' से खीची शाखा का प्रवर्तन होना लिखा है—

"जो या विधि लाखणसी के चौबीस वेटा हुया, जिनके नाम से चौबीस षाँप वाजी।........चौथा खीचर का खीचो गागरोण उगैरे........।"[4]

'खीची' शब्द की व्युत्पत्ति विषयक उपर्युक्त मतों को देखते हुए किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकना कठिन हैं। तथापि, हमारी धारणा है कि

1. Gazetteer Of Bombay Presidency, Vol. VI, Page 112 (Chota Udaipur).
2. Imperial Gazetteer Of India, Vol. XXI, Page 34-35.
3. Annals And Antiquities Of Rajasthan; Vol. II; Page 360; M.N. Publishers, New Delhi.
4. भीमविलास : पृ० 35, सं० डॉ० महावीरप्रसाद शर्मा।

खीचपुर पाटन (सिंध सागर, दोग्राब) से सम्बद्ध होने के कारण ही कदाचित् चौहानों की यह शाखा खीची कहलाई हो। कारण, अपने मूल संस्थान या निवास-स्थान के आधार पर किसी जाति या शाखा के नामकरण की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। यथा सोनगरे (स्वर्णगिरि, जालोर पर शासन करने के कारण) मेड़तिये (मेड़ता पर शासन करने वाली राठौड़ों की एक शाखा) आदि। अतः सम्भव है, अपने आदि संस्थान—खीचपुर पाटन के नाम पर ही खीची शाखा का नामकरण हुआ हो।

(8) गागरोण का खीची राजवंश—

गागरोण के खीची चौहान यद्यपि चौहानों की नाडोल-शाखा के संस्थापक राव लाखणसी की आठवीं पीढ़ी में हुए माणकराव (या माणकराज) के वंशज हैं, तथापि मूलतः वे अजमेर के चौहान राजवंश से अनुस्यूत हैं। अजमेर में विक्रम की 11 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजा रायसिंह राज्य करता था, जिसने यवनों से युद्ध किया किन्तु उनसे पराजित होने के कारण उसने उनकी अधीनता स्वीकार करली। स्वाभिमानी लाखणसी को यह सहन नहीं हुआ और वह रुष्ट हो नाडोल चला गया, जहाँ उसने अपना अलग राज्य स्थापित कर लिया[1]—

रायसिंघ तिण पाट रहै, सेवै तुरकाणौ।
लाखणसी घर छाँड हुवौ नाडोलो राणौ।।

इसी राव लाखणसी की आठवीं पीढ़ी में माणकराव हुआ, जिसका राज्य-संस्थान पहले साँभर व जायल था। जायल से उसके किस वंशधर ने कब गागरोण जाकर अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, उसके विषय में इतिहास-ग्रन्थों में अलग-अलग उल्लेख मिलते हैं।

भारत-राजमण्डल ग्रंथ में लिखा है कि अजयराव से 32वीं पुश्त पर 'गेसिंह' नामक पुरुष हुआ। उसके पोते देवनसिंह (उर्फ धारू) ने मालवा में धुलरगढ़ के राजा बिजलदेव को मार कर वि० संवत् 1251 में धुलरगढ़ कब्जे किया और उसका नाम 'गागरून' दिया।[2]

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 53
2. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 91

उपर्युक्त ग्रन्थानुसार देवनसिंह की अपने बहनोई धुलरगढ़ के राजा बिजलदेव के कामदार बड़गूजर गंगदास से अनबन थी। अतः उसने धुलरगढ़ पर चढ़ाई की। इस युद्ध में बिजलदेव और गंगदास मारे गए। रानी गंगाबाई सती हुई। तबसे धुलरगढ़ का नाम गागरून पड़ा।[1]

खिल्चीपुर रियासत की ख्यात के अनुसार अजयराव की सातवीं पीढ़ी में (वि० सं० 1175 में) गोहनराय हुआ एवं गोहनराय की चौदहवीं पीढ़ी में देवनसिंह हुआ। इसने ढोलनगढ़ (गागरून) के राजा बिजलदेव को मारकर वि० सं० 1307 में गागरून का राज्य स्थापित किया।[2] मारने का कारण यह बताया गया है कि बिजलदेव ने चौपड़ के खेल में—'हमने खीची को स्यार मारी' कहकर रानी का अपमान किया, जिससे वह रुष्ट होगई। फलतः बहिन के अपमान का बदला लेने हेतु देवनसिंह ने ढोलनगढ़ पर आक्रमण किया। इस युद्ध में बिजलसिंह मारा गया तथा गंगाबाई सती होगई। सती होते समय गंगाबाई ने अपने भाई से कहा कि वह अब इस स्थान का नाम बदल दे और यहीं राज्य करे। तदनुसार, देवनसिंह ने 'ढोलनगढ़' का नाम 'गागरून' रख दिया तथा अपने पैतृक संस्थान जायल का राज्य अपने भाई कमलसिंह को सौंपकर वहीं राज्य करने लगा।[3]

नणसी की ख्यात के अनुसार माणकराव की छठी पीढ़ी में गूंदलराव खीची हुआ, जो पृथ्वीराज चौहान का सामन्त था। वह पृथ्वीराज की रूठी रानी सूहवदे जोइयाणी में अनुरक्त था, जो पितृगृह में खाटू की पहाड़ी पर बने एक महल में अलग रहा करती थी। दोनों के इस प्रणय-सम्बन्ध से कुपित हो पृथ्वीराज ने अपने सामन्त चामुण्डराय दाहिमा के अधीन एक सेना गूंदलराव को दण्डित करने हेतु भेजी। इस पर गूंदलराव जायलगढ़ से भाग कर मालवा चला गया, जहाँ डोडिया राजपूत रहते थे। वहाँ उनके 12 गढ़ थे, जिनमें गागरोण भी शामिल था। गूंदलराव ने इन डोडिया राजपूतों को मारकर उन गढ़ों पर अपना अधिकार कर लिया।[4]

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 97;
2. वही, पृ० 92;
3. वही, पृ० 97;
4. नैणसी-री-ख्यात : भाग 1, पृ० 251-253, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।

उक्त ख्यात में यद्यपि देवनसिंह का उल्लेख नहीं है, तथापि यह लिखा है कि गूँदलराव के पोते खीचीवाड़े में बड़े प्रतापी और पराक्रमी हुए, जिनमें धारू आनलोत अतिशत दानी और शूरवीर था। इस धारू आनलोत के जन्म के सम्बन्ध में नैणसी की ख्यात में एक घटना का उल्लेख हुआ है, जिससे उसके देवनसिंह से अभिन्न होने का संकेत मिलता है—

एक बार जायल के गुँदलराव खीची का पुत्र आनलदेव दुष्काल में अपनी आसन्नप्रसवा रानी साँखली के साथ अपनी ससुराल डोडवाड़ा जा रहा था। मार्ग में कोटा परगने के गाँव सूरसेन-गुढा के पास साँखली के प्रसव-वेदना होने लगी, जिससे उसे समीपस्थ एक पुराने मंदिर में ठहरा दिया गया। वहीं उसने धारू को जन्म दिया।[1] सम्भव है, देवमंदिर में जन्म लेने के कारण उसका अपर नाम देवनसिंह पड़ गया हो। धारू के जन्म के साथ एक और अलौकिक घटना भी जुड़ी हुई है। धारू के जन्म लेते ही वहाँ एक सर्प आविर्भूत हुआ, जिसने पीढ़ी पर सोये शिशु धारू की प्रदक्षिणा कर एक स्वर्ण मुद्रा वहाँ रखदी। यों प्रतिदिन वह एक स्वर्ण मुद्रा वहाँ रख जाया करता था। एक दिन आनलदेव के पूछने पर सर्प ने बताया कि पुराकाल में इस देश में एक महाप्रतापी हूण राजा राज्य करता था, जो उसका मित्र था। यह उसी का खजाना है। तदनंतर सर्प ने आनलदेव को मोहरों से भरे 30 कलश सौंपते हुए उसे वहीं अपना गढ़ बनाकर राज्य करने का निर्देश दिया।[2]

वस्तुतः प्रतापी एवं यशस्वी पुरुषों के जन्म के सम्बन्ध में इस प्रकार की अलौकिक कथाएँ एवं चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रायः जुड़ जाया करती हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि धारू एक होनहार बालक था। उसका पालन-पोषण अपनी ननिहाल में ही हुआ। बड़ा होकर वह अपने मामा डोडों की सेवा करने लगा तथा उसकी योग्यता एवं सपूती से प्रसन्न हो डोडों ने सारा राज्य-कार्य उसी पर छोड़ दिया। यों, खीचियों का प्रभुत्व और प्रताप बढ़ता गया तथा डोडों की शक्ति क्षीण होती चली गई, जिससे कालान्तर में राज्यलक्ष्मी उनके हाथ से जाती रही।[3]

---

1. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ॰ 253-254
2. वही
3. नैणसी री ख्यात : भाग 1, पृ॰ 255-256

इस प्रकार हम देखते हैं कि धारू आनलोत हो गागरोण राजवंश का संस्थापक था। चौहान-कुल-कल्पद्रुम के अनुसार धारू का ही दूसरा नाम देवनसिंह था तथा यही गागरोण के खीची राजवंश का प्रवर्तक था।[1] उक्त ग्रन्थानुसार गुंदलराव (पृथ्वीराज चौहान का सामन्त) गे सिंह और गोहनराय भी एक ही व्यक्ति के नाम हैं, जो देवनसिंह का पितामह तथा आनलदेव का पिता था। भरतराजमण्डल-ग्रन्थ में देवनसिंह के पिता का नाम बेलमंजु लिखा है तथा खिल्चीपुर रियासत की ख्यात में सामन्तसिंह परन्तु चौहान-कुल-कल्पद्रुम के लेखक के मतानुसार ये तीनों नाम—आनलदेव, बेलमंजु तथा सामन्तसिंह भी एक ही व्यक्ति के हैं।[2]

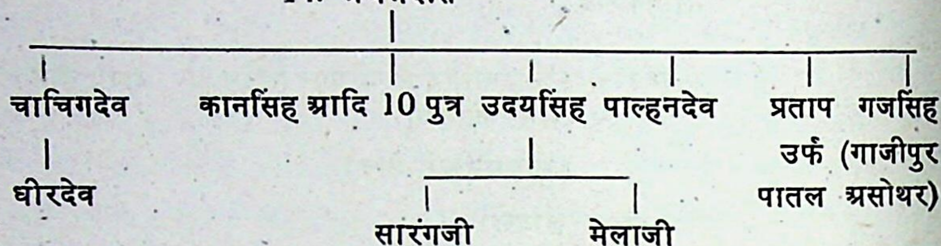
इस प्रकार नामों में असंगति का यह झमेला मिट जाता है एवं उपर्युक्त सारे विवेचन का सारभूत निष्कर्ष यह निकलता है कि गागरोण के खीची राव लाखणसी के नेतृत्व में अजमेर से नाडोल गई चौहानों की शाखा से प्रादुर्भूत हैं। राव लाखणसी की आठवीं पीढ़ी में माणकराव हुआ, जिसके वंशज खीचपुर-पाटन (सिंधसागर) के राजा होने के कारण 'खीची' कहलाए। एक अन्य मतानुसार अपने पिता आसराव द्वारा प्रदत्त उपाधि के कारण माणकराव खीची कहलाया तथा भदाण और जायल खीचियों के नए 'राजस्थान' बने।[3] इसी माणकराव का वंशज गुंदलराव (या गे-सिंह) हुआ, जिसके पौत्र धारू (उर्फ देवनसिंह) ने अपने मामा डोडों से तत्कालीन ढोलनगढ़ अधिकृत कर उसे नया नाम गागरोण दिया तथा वहाँ खीची राजवंश की स्थापना की। गागरोण के खीची राजवंश का संस्थापक यही धारू (उर्फ देवनसिंह) है, जिसकी वंश-परम्परा में आगे चल कर हमारी वचनिका का चरित्र नायक अचलदास हुआ।

माणकराव से लेकर अचलदास के पुत्रों तक की जो विविध वंशावलियाँ हमें चौहान-राजवंश से सम्बद्ध इतिहास-ग्रंथों में मिलती है, उनमें इतना अधिक वैषम्य है कि उनके आधार पर कोई निर्विवाद एवं प्रामाणिक वंशवृक्ष प्रस्तुत कर सकना सम्भव नहीं। तथापि, चौहान-कुलकल्पद्रुम सहित अन्य विश्वस्त स्रोतों के आधार पर गागरोण के खीची राजवंश की वंशावली नीचे दी जा रही है ताकि पाठकों को वचनिका में वर्णित पात्रों का वंशानुक्रम समझने में सुविधा रहे।

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 97;
2. वही।
3. नैणसी री ख्यात : भाग 1, पृ० 250-251।

माणकराव
|
अजयराव (सिंध सागर में खीचपुर-पाटन पर राज्य होने से खीची कहलाए)
|
(कुछ पीढ़ियों बाद)
|
गुंदलराव (जायल)
|
आनलदेव (बेलमजु या सामन्तसिंह)
|
1. देवनसिंह (धारू), (गागरोण-राजवंश का प्रवर्तक)
|
2. चुंडपाल
|
3. सांगपाल (सिंहराव)
|
4. विजेपाल
|
5. रतनसिंह
|
6. मलयसिंह
|
7. जैत्रसिंह
|
8. साँडनसिंह
|
9. सावंतसिंह
|
10. क्रोध सिंह (कड़वाराय)
|
11. भक्त पीपाजी (बप्पाजी राजा)
|
12. कल्याणराव (गोद आए; भतीजे)
|
13. भोजराज (द्वारकानाथ)
|
14. अचलदास (वचनिका का चरित्रनायक)



उपर्युक्त वंशावली में देवनसिंह के बाद क्रम संख्या 2 से 10 तक के नाम भारतराजमंडल-ग्रन्थ के अनुसार हैं।[1] क्रम संख्या 11 पर अंकित पीपाजी (बप्पाजी) प्रसिद्ध हरिभक्त हुए हैं, जिनका भक्तमाल में भी उल्लेख हुआ है। इनके निःसंतान मरने से इनके बाद इनका भतीजा कल्याणराव गागरोण की गद्दी पर बैठा। अचलदास इसी कल्याणराव का पौत्र और भोजराज का पुत्र था।

अचलदास के पुत्रों की संख्या के सम्बन्ध में भी वंशावलियों में पर्याप्त अंतर मिलता है, जिसकी चर्चा हम यथाप्रसंग आगे करेंगे। ऊपर वंशवृक्ष में हमने, चौहान-कुल-कल्पद्रुम तथा अन्यत्र प्राप्य वंशावलियों के आधार पर मान्य वंशावली दी है[2], क्योंकि हमारे पास इसकी प्रामाणिकता की जाँच का अन्य कोई स्रोत उपलब्ध नहीं है। यह वंशावली निश्चय ही निर्विवाद नहीं है।

9. अचलदास खीची : जीवनवृत्त; व्यक्तित्व—

अब हम वचनिका के चरित्रनायक अचलदास खीची के जीवन-वृत्त विषयक कुछ प्रमुख ज्ञातव्यों की चर्चा करेंगे। खेद है, उसका कोई विशद एवं क्रमबद्ध जीवन-वृत्त उपलब्ध न होने से हमें तद्विषयक इधर-उधर बिखरी सामग्री का ही आकलन कर सन्तोष करना पड़ता है।

माता-पिता—

अचलदास के पिता का नाम भोजराव (भोजराज) तथा माता का नाम सफलादे (सुफलादेवी) था, जैसाकि वचनिका से ज्ञापित होता है।[3] बांकीदास

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 99
2. वही : पृ० 102
3. वचनिका 21 (8)

री ख्यात से भी इसकी पुष्टि होती है यद्यपि अचलदास की माँ का नाम एक जगह 'सकळादे'[1] तथा अन्यत्र 'सलहदे'[2] दिया है परन्तु इनमें वचनिका का उल्लेख ही प्रामाणिक माना जाना चाहिए। वह अपने पिता की मृत्यु के बाद संवत् 1466 (ई० सन् 1409) में गद्दी पर बैठा।[3]

रानियाँ—

वचनिका में अचलदास की केवल पाँच रानियों का उल्लेख हुआ है— 1. पुहपाई (पुष्पावती; राणा मोकल की पुत्री) 2. कछवाही 3. साँखुली 4. वागुडणी तथा 5. तूँवरिणी।[4]

इनमें जहाँ प्रथम का नामोल्लेख हुआ है, वहाँ शेष को उनकी पितृवंशीय शाखा द्वारा सूचित किया गया है, जैसाकि क्षत्रिय घरानों में रानियों व सामन्त-पत्नियों को सम्बोधित किए जाने की परिपाटी है। विवाह के पश्चात् भी वे अपना पितृवंशीय कुलनाम (Surname) नहीं छोड़ती।

खिल्चीपुर रियासत की हस्तलिखित ख्यात के अनुसार अचलदास के सात रानियाँ तथा चार पासवानें (उपपत्नियाँ) थी।[5] चौहान-कुल-कल्पद्रुम के सम्पादक ने नीचे फुटनोट में उनका यह ब्योरा दिया है :—

1. भटियाणी उमादेवी (यह बड़ी भक्त हुई, जिसका चरित्र भक्तमाल में वर्णित है)।
2. राणावतजी लालांदेवी (मेवाड़ के महाराणा की पुत्री)।
3. राठौड़जी महेची (लींबड़िया राठौड़ की पुत्री)।
4. अहाड़ी (डूंगरपुर के राजा की पुत्री)।
5. शेखावतजी (फतेपुर सीकरी के शेखावत की पुत्री)।
6. कछवाही (जयपुर (?) के राजा की पुत्री)।
7. यादव (करौली के यादव की पुत्री)।

---

1. बाँकीदास री ख्यात : पृ० 142; सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
2. वही, पृ० 14२
3. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 104
4. वचनिका 14 (5, 6, 7, 8)
5. खिल्चीपुर रियासत की ख्यात; (हस्तप्रति)।

खिल्चीपुर रियासत की ख्यात के आधार पर संपादकीय फुटनोट में दी गई इस नामावली को देखने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह निरी अशुद्ध और भ्रामक है। उदाहरणत: संख्या 1 में निर्देशित 'उमा भटियाणी' काव्य परम्परा-नुसार 'उमा साँखली' होनी चाहिए, जैसाकि 'लालां मेवाड़ी री बात' में उल्लिखित है[1], यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से जाँगलू के राणा खींवसी की पुत्री उमा साँखली का अचलदास की पत्नी होना संभव नहीं लगता, जिसकी चर्चा हम यथाप्रसंग आगे करेंगे। इसी भाँति, क्रम संख्या 5 में निर्देशित रानी शेखावतजी तथा उसके पितृ-संस्थान फतेहपुर सीकरी का उल्लेख भी स्पष्टतया भ्रान्त है। कारण, जैसाकि राजस्थानी इतिहास के मर्मज्ञ और विद्वान ठा० सा० सुरजनसिंह जी शेखावत, झाझड़ ने सूचित किया है—"वि० सं० 1480 में जब युद्ध करके अचलदास काम आया; उस समय तो मोकल के पुत्र राव शेखा का जन्म हुआ था। अत: 'शेखावत' खाँप का आरम्भ ही उस वक्त तक नहीं हुआ था। दूसरे, फतेहपुर-सीकरी में शेखावत कहाँ से आए? यदि यहाँ शेखावाटी-स्थित फतेहपुर और सीकर से आशय हो तो उस वक्त तक न तो फतेहपुर बसा था और न सीकर ही अस्तित्व में आया था।"[2] साथ ही, यह भी स्मरणीय है कि शेखावत मूल कछवाहा वंश की ही एक खाँप है। अत: प्रथम तो उपर्युक्त कारण से, उस समय किसी शेखावत रानी के होने का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि कोई होती भी तो उसे भी कछवाही रानी कहकर ही संबोधित किया जाता। लगता है, यह ख्यात बहुत बाद की लिखी हुई है अन्यथा संख्या 6 में कछवाही रानी का पितृ-संस्थान जयपुर न लिखा जाकर आमेर लिखा जाता क्योंकि जयपुर का तब अस्तित्व ही नहीं था। तात्पर्य यह कि इस सम्बन्ध में हमें वचनिका को ही अधिक विश्वसनीय मानकर उसके आधार पर अचलदास की रानियों की पहचान करनी चाहिए। यहाँ हम वचनिका में उल्लिखित क्रमानुसार प्रत्येक की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

1. रानी पुष्पावती (लालाँ मेवाड़ी)—

"यह मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री तथा अचलदास की पटरानी थी। इसे लेकर लिखी गई 'लालां मेवाड़ी री बात' अति प्रसिद्ध है। 'लालाँ'

---

1. लालां मेवाड़ी री बात : परिशिष्ट, वचनिका, सं० दीनानाथ खत्री।
2. ठा० सा० सुरजनसिंहजी शेखावत, झाझड़ से प्राप्त टिप्पणी से साभार।

कदाचित्त् पितृगृह में उसके प्यार का नाम रहा होगा, इसके रूप-लावण्य के कारण, जैसा की कर्नल टॉड ने लिखा है—

"Besides three sons, Rana Mokul had a daughter, celebrated for her beauty, called Lal-Bae or 'the ruby". She was betrothed to the kheechie chieftain of Gagrown, who at the 'Hatleva' demanded the pledge of suuccour on foreign invasion."[1]

अचलदास की इस पुष्पावती रानी (लालाँ मेवाड़ी) को मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री मानने के प्रश्न को लेकर भी विद्वानों में गंभीर मतभेद है। इस सम्बन्ध में, डॉ० मोतीलाल मेनारिया की आपत्ति है कि सन् 1480 में (गागरोण युद्ध के समय) महाराणा मोकल की आयु सात से चौदह वर्ष के बीच थी। अतः यह कैसे सम्भव है कि वे इसके पहले ही कन्या के पिता बन गए हों तथा उनका अचलदास से विवाह भी हो गया हो ?[2]

इस विषय में, डॉ० दशरथ शर्मा कवि की इतिहास-निष्ठा और उसके वर्णनों की सत्यता को देखते हुए यद्यपि इसे निराधार नहीं मानते तथापि डॉ० मेनारिया जी की इस आपत्ति से वे भी सहमत हैं कि यदि राणा मोकल की आयु गागरोण-युद्ध के समय सात से चौदह वर्ष के बीच रही हो तो पुष्पावती उनकी पुत्री नहीं हो सकती। इस विसंगति के समाधान हेतु वे यह सम्भावना प्रकट करते हैं कि वचनिका में वर्णित पुष्पावती महाराणा मोकल की पुत्री न होकर कदाचित् एतद्नामधारी किसी अन्य सामन्त की पुत्री हो। अपने सुझाव की पुष्टि में उन्होंने मोकलसी नामक दो-तीन समकालीन ऐतिहासिक व्यक्तियों का नामोल्लेख भी किया है तथा यह तर्क दिया है कि 'वचनिका' में कहीं भी 'राणा मोकल' का महाराणा मोकल के रूप में ज्ञापन नहीं हुआ है।[3]

हमारी समझ में उक्त दोनों ही विद्वानों की उपर्युक्त धारणा अमान्य है। कारण, पुष्पावती विषयक सारे विवाद की ज़ड़ राणा मोकल की जन्मतिथि

---

1. Annals And Antiquities Of Rajasthan; Vol. I; Page 229; M.N. Pub., New Delhi.
2. शोधपत्रिका—विशेषांक, वर्ष 17, अंक 1–2, डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
3. विश्वंभरा, वर्ष 9, अंक 3–4, डॉ० दशरथ शर्मा।

विषयक अनिश्चितता है। परन्तु ज्ञात तथ्यों एवं मेवाड़ की ख्यातों आदि के आधार पर अधिकांश विद्वानों का मत है कि राणा मोकल का जन्म संवत् 1452[1] में तथा राज्यारोहण संवत् 1454 में हुआ था।[2] इस आशय का एक प्राचीन राजस्थानी गीत भी ध्यातव्य है—

रधू कूंख राठौड़ बरस बावना वचालै।[3]
मोकल लियो जनम, ऋसन वसुदेवक ढालै।।
प्रथम साल चौपने, राण सुरलोक सिधायो।
पाछै लाखा पाट, वडम मोकल बैठायो।।

इस दृष्टि से, मोकल का संवत् 1480 में 28 वर्ष का होना तो सिद्ध हो ही जाता है। इस बीच उनके एक कन्या का पिता बन जाने तथा किशोर वय में ही उसका अचलदास के साथ विवाह हो जाने में असम्भव क्या है? हमें स्मरण रखना चाहिए कि उस युग में राजकन्याओं का प्रायः उनकी अल्प वय में ही विवाह कर दिया जाता था।

'वाल्ही बैस' (बाल वयस) में ब्याही, अपने प्रवासी प्रियतम को बिसूरती ऐसी न जाने कितनी प्रेषितपतिका नायिकाओं की विरहव्यथा से राजस्थानी प्रेमाख्यान भरे पड़े हैं—

वील्हा रिणमल सूं [कहे, सोढी तणा संदेस।
थे ईडर री चाकरी, साइधण बाले वेस।।

अचलदास की दूसरी रानी उमा साँखली भी विवाह के समय अपने तेरहवें वर्ष में ही थी—'उमा साँखली मारवणी रै अवतार। बरस तेरा में छै।'[4]

अतः आयु के आधार पर रानी पुष्पावती के महाराणा मोकल की पुत्री होने तथा उसे अचलदास से ब्याहे जाने में कोई ऐतिहासिक विसंगति नहीं है। श्री रामवल्लभ सोमानी के अनुसार भी राणा मोकल की जन्मतिथि वि० सं०

1. महाराणा कुंभा, पृ० 29–30, ले० रामवल्लभ सोमानी।
2. वीर विनोद, भाग 1, पृ० 270; Annals and Antiquities Of Raj.; Vol. I; Page 228; M. N. Publishers; New Delhi.
3. प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग II, पृ० 79, सं० कविराव मोहनसिंह, साँवलदान आशिया।
4. अचलदास खीची री वार्ता (हस्तप्रति), राज० शोध संस्थान चोपासनी, जोधपुर।

1452 से पहले ही कभी रखी जा सकती है, उसके बाद नहीं।[1] उनके मतानुसार "कुम्भा के अतिरिक्त मोकल के 6 पुत्र और थे। एक पुत्री लालबाई थी, जिसका विवाह अचलदास खीची के साथ हुआ था। वह कुम्भा से उम्र में बड़ी थी और मोकल की पहली संतान थी।'[2]

जहाँ तक विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा की मान्यता का प्रश्न है, राणा मोकल की आयुगत विसंगति का समाधान हो जाने पर उनकी आपत्ति स्वतः निरस्त हो जाती है। यों भी, वचनिका में वर्णित 'राणा मोकल' नाम, प्रयोग व संदर्भ से, निर्भ्रान्त रूप से मेवाड़ के महाराणा मोकल का ही सूचन करता है क्योंकि लोक-व्यवहार में 'महाराणा' की अपेक्षा 'राणा' सम्बोधन अधिक प्रचलित है, जैसे राणा सांगा, राणा प्रताप आदि। साथ ही, वचनिका में प्रयुक्त 'राणा मोकल' के साथ जो ऐतिहासिक संदर्भ जुड़ा हुआ है, उससे भी निश्चित रूप से मेवाड़ के महाराणा मोकल की ही व्यंजना होती है। यथा—

"धीरउ उहां राणा मोकलसी पास गयउ थउ"[3]

यहाँ उल्लिखित मोकलसी, मेवाड़ के महाराणा मोकल के सिवा और कौन हो सकते हैं, जिनके पास धीरा को सहायता प्राप्ति हेतु भेजा गया था? यह इतिहास का एक सुविदित तथ्य है, जिसकी अन्य स्रोतों से भी पुष्टि होती है।

अतः निष्कर्ष यह कि हमें अचलदास की रानी पुष्पावती को मेवाड़ के महाराणा की पुत्री मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, जिसका एक सुदृढ़ ऐतिहासिक आधार है तथा जिसके पीछे एक सुदीर्घ साहित्यिक एवं आनुश्रुतिक परम्परा रही है।

वस्तुतः अचलदास की उल्लिखित सब रानियों में एक यही रानी ऐसी है, जिसकी पहचान सुनिश्चित है।

2. कछवाही रानी—

अचलदास की कछवाही रानी के पैतृक संस्थान के विषय में कहीं कोई

1. महाराणा कुम्भा, पृ० 29–30, ले० रामवल्लभ सोमानी
2. महाराणा कुम्भा, पृ० 36. ले० रामवल्लभ सोमानी।
3. वचनिका 21 (12)

सूचना प्राप्य नहीं है। चौहान-कुल-कल्पद्रुम के अनुसार[1] यदि यह आमेर-राजवंश की राजकुमारी रही हो तो तत्कालीन आमेर नरेश नरसिंहदेव की बहिन या पुत्री हो सकती है क्योंकि अचलदास के समय में आमेर की गद्दी पर नरसिंहदेव नामक राजा आरूढ़ था, जिसका समय वि० सं० 1445 से 1485 (ई० सन् 1388 से 1428) था।[2]

3. वागुडणी रानी—

अचलदास की इस 'वागुडणी रानी' की पहचान कठिन नहीं। वचनिका में अचलदास ने अपनी शौर्य-गाथा को सुनकर गौरवान्वित होने वाले अपने ससुराल-पक्ष के जिन राजाओं का उल्लेख किया है, उनमें 'राउल गइपउ राउ' भी है[3], जो डूंगरपुर के रावल गोपीनाथ का ही अपर नाम है। शिलालेखों में इसे 'गईप', 'गजपाल', 'गोप', 'गोपाल' तथा ख्यात में 'गेबा' लिखा गया है।[4] यह अचलदास का समकालीन था। वचनिका में वर्णित 'वागुडणी' रानी (वागड़ डूंगरपुर का प्राचीन नाम है) इसी रावल गोपीनाथ की बेटी रही होगी।

4. साँखली रानी—

काव्य-परम्परा तथा लोकानुश्रुति के अनुसार अचलदास की साँखली रानी जाँगलू के शासक राणा खींवसी की पुत्री तथा कुँवरसी की बहिन उमा थी, जिसके तथा अचलदास के प्रणय-प्रसंग का 'लालाँ मेवाड़ी री बात' में अतीव मार्मिक चित्रण हुआ है। वचनिका में उमा का कहीं नामोल्लेख नहीं मिलता परन्तु काव्य तथा लोक-परम्परा दोनों में ही अचलदास का जाँगलू के शासक राणा खींवसी की पुत्री उमा साँखली से विवाह करना तथा उसमें अतिशय अनुरक्त होना प्रसिद्ध है। यही नहीं, सम्बद्ध इतिहास-ग्रंथ भी इसका समर्थन करते हैं। उदाहरणत: पंवार-वंश-दर्पण में लिखा है—

"खीमसी कनै सूं दहिया मराय जांगलू खींवसी रो अमल करायो। पछै

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम; पृ० 104
2. Literary Heritage Of The Rulers Of Amber And Jaipur; Introduction; Page 11; By Pt. Gopal Narain Bahura.
3. वचनिका 26 (3)
4. डूंगरपुर राज्य का इतिहास (राजपूताने का इतिहास : जिल्द III, भाग I, पृ० 64-65) म० पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

केसो दोयड़ पसाव दिया। पोळपात थापियो। **इणरी बेटी उमा गढ़ गागुरण खीची अचलदास नूं परणाई।"**[1]

इसी भाँति, वंशभास्कर में भी अचलदास के वीरगति प्राप्त करनेपर लालाँ मेवाड़ी के साथ उमा के भी सहगमन करने का उल्लेख हुआ है—**लालां उमां साथ गति लीधी,** पति सह त्रिदिव सुधा मिल पीधी" ।[2] बाँकीदास री ख्यात में भी उल्लेख है :—

"रायसल रो खीमसी, चरूसुगाळ, जिण वीठू नूं दोयड़ पसाव दिया। पोळपात थापियो। **इणरी बेटी उमा गढ़ गागुरण खीची अचलदास नूं परणाई।"**[3]

अतः वचनिका में उल्लिखित 'साँखुली' रानी से अनिवार्यतः यही धारणा बनती है कि वह खींवसी साँखला की बेटी उमा साँखली ही होनी चाहिए।

परन्तु आश्चर्य की बात है कि उपर्युक्त धारणा, जो लोक और कवि-परम्परा दोनों से पुष्ट है, इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। कारण, खींवसी और अचलदास के समय में लगभग 150 वर्ष का अंतर पड़ता है, जो इस काव्य-परम्परानुमोदित वैवाहिक संबंध पर एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा देता है।

विदित हो कि खींवसी साँखला के पुत्र कँवलसी (कुँवरसी) के नाम पर बसे कँवलीसर गाँव में, जो बीकानेर से 36 मील दक्षिण में स्थित है, कई देवलियों का समूह है। ये दवलियाँ इस भू-भाग पर शासन करने वाले साँखला राणाओं की हैं। इनमें से एक देवली संवत् 1328 (ई० सन् 1271) की है, जो इस गाँव को वसाने वाले स्वयं राणा कँवलसी की मृत्यु का उल्लेख करती है।[4]

प्रश्न उठता है कि खींवसी साँखला का पुत्र कँवलसी जब संवत् 1328 में ही चल बसा था तो उसकी बहिन और खींवसी साँखला की पुत्री उमा का विवाह अचलदास से होना कैसे संभव है, जो 152 वर्ष बाद संवत् 1480 में लड़ता हुआ काम आया ?

---

1. पँवार-वंश-दर्पण : पृ० 32, सं० डॉ० दशरथ शर्मा।
2. वंशभास्कर : पृ० 1191.
3. बाँकीदास री ख्यात : पृ० 139, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
4. बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खंड : पृ० 58, म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा।

यही नहीं, बीकानेर से 15 मील दक्षिण में वासीवरसिंहसर गाँव में 35 पंक्तियों का एक महत्वपूर्ण कीर्तिस्तम्भ है, जिस पर उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है कि जाँगलकूप (जाँगलू) के शासक शंखुकुल (साँखला) के क्षेमसिंह (खेमसी, खींवसी) के पुत्र राणा कुमारसी (कुँवरसी, कँवलसी) की पुत्री और जैसलमेर के राजा कर्णदेव की पत्नी दूलहदेवी ने संवत् 1381 में वहाँ एक तालाब का निर्माण करवाया।[1]

यह शिलालेख, जो अधिकांश संस्कृत में है, अतीव महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे खींवसी व कुँवरसी के पारस्परिक सम्बन्ध तथा उनकी ऐतिहासिकता के साथ-साथ उनके जीवन-काल पर भी असंदिग्ध रूप से प्रकाश पड़ता है। इस शिलालेख की सबसे पहले खोज करने का श्रेय डॉ० टेसीटरी को है।[2] विद्वद्वर ओझाजी ने भी इसे बहुत महत्वपूर्ण मानते हुए अपने बीकानेर राज्य के इतिहास में इसका उपयोग किया है। उक्त कीर्तिस्तम्भ में राणा खींवसी और कँवलसी से सम्बद्ध लेख का अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, जो डॉ० परमेश्वर सोलंकी द्वारा प्रस्तावित पाठ के आधार पर है :[3]

"(14) तत्रासीज्जांगल कूप भूपा
(15) लकः श्री क्षेम सिंहात्म
(16) जः शंषुकुलेऽनघे कु (म)
(17) र सिंहाख्यः कृती भूपतिः ।

× × ×

(21) तस्य लक्ष्मीव या
(22) (राशिः) सुता दूलहदेवि नामा
(23) (कन्या) दानादि पुण्ये करौहं
(24) (श्री क) र्णं देवेन मुदोपयेमे सौ
(25) (भाग्य) भाग्यवती हरेण ।। रो

× × ×

---

1. बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम खंड : पृ० 58, म० गौरीशंकर हीराचंद ओझा।
2. Journal And Proceedings; Asiatic Society Of Bengal; Dr. L. P. Tessitori; N. S. Vol. 16, P. 256.
3. वरदा, अप्रेल–जून 1985 : पृ० 31, 'बहुचर्चित और अप्रकाशित शंखुकुल-शिलालेख, डॉ० परमेश्वर सोलंकी।

(32) वदिदं स्थिर [ ] सं० 1381
(33) राशि फाल्गु (न) सुदि 10
(34) रा(ज) श्री दूलहदेविसर:
(35) प्रतिष्ठितं ।। शुभं भवतु ।"

उपर्युक्त शिलालेख से यह स्पष्ट होजाता है कि राणा खींवसी के पुत्र कुँवरसी (कंवलसी) की पुत्री दूलहदेवी ने संवत् 1381 में तालाब का निर्माण करवाया था, जिसका समय अचलदास की मृत्यु से सौ वर्ष पहले का है। ऐसी स्थिति में, अचलदास तथा खींवसी की समकालीनता की बात स्वतः निरस्त होजाती है।

इस सम्बन्ध में, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में उपलब्ध 'अलावदी री उतपत री बात' की हस्तप्रति में एक और आश्चर्यजनक उल्लेख मिलता है और वह यह कि खींवसी साँखला ने अपनी एक पाँगली (पंगु) बेटी का विवाह अचलदास के पूर्वज आनलदेव खीची (धारू के पिता) से किया था—

"आंदलराव खीची जायंल कठौती रहै। सु अेके दिन रे समीयीये खींवसी साँखले रे बेटी सु पांगळी। ताहरा खींवसी जाणीयो जु ओर तो कोई लेवे न लेवे आंदल भलो रजपूत छै। .... ।"[1]

आनलदेव और अचलदास में तो कई पीढ़ियों का अन्तर है। अतः खींवसी साँखला की पुत्री का दोनों से सम्बन्ध जोड़ा जाना एक जबरदस्त ऐतिहासिक विसंगति है, जो इस प्रश्न को और भी उलझा देती है।

कुछ ऐसी ही विसंगति 'अचलदास खीची री बात' की एक अन्य हस्तप्रति में मिलती है, जिसके प्रारम्भ में यद्यपि 'अचलदास खीची लालां मेवाड़ी री बात' लिखा है, तथापि उसके अन्त में 'उमा देवड़ी री बात', जिससे 'उमा' का साँखली न होकर देवड़ी होना ज्ञापित होता है।[2]

ऐसी स्थिति में यह प्रश्न और भी उलझ जाता है।

---

1. Bardic And Historical MSS; Section I; Part II; Page 80; Dr. L. P. Tessitori.
2. वही, पृ० 78।

तो क्या अचलदास और उमा साँखली की यह अतिशय रोमेंटिक और रसमयी प्रेमगाथा तथा उसे लेकर रचित 'लालां मेंवाड़ी और उमा साँखली की बात' निरी काल्पनिक और मनगढंत है ? निश्चय ही, ऐसी स्थापना करना तो सैकड़ों वर्षों से चलो आ रही एतद्विषयक लोक-मान्यता और काव्य-परम्परा का ही तिरस्कार होगा, जो युक्ति-संगत नहीं लगता। जैसाकि कहा है— 'नह्यमूला अनुश्रुतिः' अर्थात् अनुश्रुति निर्मूल या निराधार नहीं होती। और फिर इतिहास-ग्रंथ भी इसका उल्लेख करते हैं।[1] 'वचनिका' में भी अचलदास की अन्य रानियों के साथ एक 'सांखली रानी' का स्पष्ट उल्लेख हुआ है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही, उमा और अचलदास के प्रणय-प्रसंग का 300-400 वर्ष पुराना एक लोकगीत भी उपलब्ध हुआ है, जिसे सहज ही अमान्य नहीं कर सकते क्योंकि उसका कोई न कोई आधार तो रहा ही होगा। यह गीत राजस्थानी साहित्य के प्रसिद्ध अन्वेषी और विद्वान् स्व० श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'तीन-चार सौ वर्ष पुराने कतिपय लोकगीत' शीर्षक से मरु-भारती में प्रकाशित करवाया है। 'अचला और उमा के रूसने का गीत' शीर्षक उक्त गीत का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है—

"उमादे जंगल री, अचला जी सूं रीसणो रें,[2]
जो पिय लियो रे मनाय ।। 1 ।।

× × ×

हार सटे पिउ आणियौ, हस नै साम्हो थाई ।। उमादे....
हारि दियौ छंदो कियो रे, मूक्यो माण भरम्म ।
उमां प्रेम न चाखीयो रे, अइयो लेख करम्म ।।

× × ×

लालां लाल जम्भीरिया, ऊमां फूलां भार
अचल ऐराकि न माणिया, रोढां रौ असवार ।। उमादे...."

इस गीत पर टिप्पणी देते हुए श्री नाहटाजो ने लिखा है—"इनमें से एक गीत अचलदास खीची और उमादे रानी सम्बन्धी है, जिनकी कथा 'अचलदास खीची री वचनिका' में परिशिष्ट में प्रकाशित हो चुकी है।" इनकी प्राचीनता

---

1. पँवार-वंश-दर्पण, पृ० 32; वंशभास्कर: पृ० 1191; बाँकीदास री ख्यात, पृ० 139
2. मरु-भारती : अप्रेल 1970, पृ० 96, अगरचन्द नाहटा का लेख।

के विषय में वे पुनः लिखते है –"ये सभी गीत 300 वर्ष पहले के लिखे हुए मिले हैं।"

इतिहास, काव्य-परम्परा तथा लोकानुश्रुति – सभी जब एक स्वर से अचलदास और उमा साँखली के विवाह तथा प्रेम-प्रसंग की पुष्टि करते हैं तो निश्चय ही इसमें कुछ तथ्य होना चाहिए।

इन सब बातों को दृष्टिगत रखते हुए हमारी यह सुविचारित धारणा है कि अचलदास के कोई साँखली रानी अवश्य थी तथा उसका नाम 'उमा' था, जैसाकि लोकानुश्रुति के साथ-साथ काव्य-परम्परा और इतिहास दोनों से अनुमोदित है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह उमा साँखली संभवतः शिलालेखों में उल्लिखित राणा खींवसी की पुत्री न होकर एतद्नामधारी किसी अन्य परवर्ती साँखला सामन्त की कन्या रही हो, जिसका सम्बन्ध अधिक प्रसिद्धि के कारण उक्त राणा खींवसी से जोड़ दिया गया हो। एक ही नाम के दो या अनेक व्यक्ति हो जाने के कारण कभी-कभी नामों के विषय में ऐसा घपला हो जाने के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। उदाहरणतः अजमेर में बीसलदेव नाम के चार राजा हुए हैं। इनमें से बीसलदेवरासो का नायक कौन था—इसे लेकर विद्वानों में कोई कम विवाद नहीं है। इसी प्रकार संभव है, उमा साँखली, खींवसी नामक किसी अन्य साँखला सामन्त की पुत्री रही हो परन्तु नाम-साम्य के कारण उसका सम्बन्ध उक्त राणा खींवसी से जोड़ दिया गया हो। जो हो, किसी संतोषप्रद समाधान के अभाव में यह प्रश्न उलझन भरा एवं अन्वेष्य ही रहेगा। हमें इस प्रसंग पर जो सामग्री उपलब्ध हुई, उसे सारभूत रूप में, पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।

5. तँवरनी रानी—

वचनिका में वर्णित 'तुंवरिणी' अर्थात् तोमरवंशीय रानी कदाचित् ग्वालियर के तोमरवंशीय राजा डूँगरसिंह[1] की कन्या या बहिन रही होगी। यही कारण है कि वचनिका में होशंगशाह, गढ़ छोड़कर चले जाने हेतु, अचलदास के ससुराल-पक्ष के जिन स्थानों का निर्देश करता है, उनमें तँवरों का संस्थान (ग्वालियर) भी एक है।

---

1. Cambridge History Of India; Vol. III; Page 354.

पुत्र—

अचलदास के पुत्रों की संख्या तथा उनके नामों के बारे में भी खीची-इतिहास ग्रन्थों में मतैक्य नहीं है।

भारतराजमंडल ग्रन्थ में अचलदास के तीन पुत्रों—1. चाचकदेव 2. प्रताप उर्फ पातलदे और 3. गर्जसिंह का उल्लेख हुआ है। इनमें चाचकदेव का मेवाड़ जाना लिखा है तथा धीरदेव को चाचकदेव का पुत्र बताया गया है। साथ ही, उसका पुन: मऊ व गागरोन प्राप्त करना लिखा है।[1]

तद्विपरीत, खिल्चीपुर रियासत की हस्तलिखित ख्यात में अचलदास के 1. कानसिंह 2. नौ अन्य पुत्र 3. खड्गसेन तथा 4. पालसिंह का उल्लेख हुआ है। उक्त ख्यात में चाचिगदेव के विषय में लिखा है कि वह कड़वाराय का चौथा पुत्र था एवं अचलदास के पक्ष में युद्ध करता हुआ काम आया। उस समय उसकी रानी (नरूकी, जो उणियारा की थी) गर्भवती थी तथा अपने पीहर थी। पति के देहान्त की खबर सुनकर वह सती होने को उद्यत हुई परन्तु ब्राह्मणों ने उसे धीरज दे मरने नहीं दिया। समय पर उसने पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम धीरजदेव रखा गया तथा उसने गढ़ गागरोन पुन: प्राप्त किया।[2]

श्री रघुनाथसिंहजी खीची, इन्द्रोका ने गागरोण के खीची शासकों की जो वंशावली हमारे पास भेजी है, उसमें अचलदास के चार पुत्रों क्रमश: 1. चाचकदेव 2. उदयसिंह 3. पाल्हनदेव तथा 4. गजसिंह का उल्लेख है। इसमें उदयसिंह के दो पुत्रों—1. सारंगजी और 2. मेलाजी का भी उल्लेख है।[3]

यह वंशावली कदाचित कवि चेलदान खिड़िया द्वारा लिखित पुस्तक 'श्री गुमान-यश-स्वामी धर्माणव' (खीची इतिहास) के आधार पर दी गई है, जिसका सम्बद्ध अंश श्री रघुनाथसिंहजी इन्द्रोका ने ही हमारे पास भेजा है। वह निम्नांकित है—

---

1. चौहान कुल-कल्पद्रुम : पृ० 105.
2. वही।
3. श्री रघुनाथसिंहजी खीची इन्द्रोका द्वारा प्रेषित वंशावली; उनका पत्र दिनांक 23-4-78.

"अचलदास महीस के, सुत भया च्यार भुवार।[1]
'चाचक्क', **'ऊदो'** अो **'पतो'**, **'गज'** यहु नाम निहार।।
उदयसीह चाचक सों लघु, सो गागरून में राय।
तरूण बय के माहि त्यागी, वाहि रण में काय।।
अरू उदेसिंघ नरेश के, **'परताप'** छोटो जान।
वाकोहि फेरू कहत **'पालण'**, श्रवण कर चहुवान।।
'चाचक्क', **'ऊदो'** चउ **'पतो'**, अनै **'गजसीह'**।
पुत्र अचल महिपाल कै, हा यह च्यार सु दीह।।"

श्री रघुनाथसिंहजी इन्द्रोका द्वारा प्रेषित उपर्युक्त वंशावली में नम्बर 2 पर उल्लिखित उदयसिंह का नाम हमें अन्य किसी वंशवृक्ष में नहीं मिलता। खिल्चीपुर रियासत की हस्तलिखित ख्यात में अचलदास के जिन नौ छोटे पुत्रों का नामोल्लेख किया गया है, उनमें भी उदयसिंह नाम का कोई पुत्र नहीं है।[2] परन्तु उपर्युक्त 'गुमान यश-स्वामी धर्मार्णव' में उदयसिंह के दो पुत्रों सारंगजी और मेलाजी का उल्लेख है। उदयसिंह के इन दो पुत्रों—सारंगजी और मेलाजी से खीचियों की दो शाखाएँ—सारंगोत और मेलावत चलीं। जोधपुर के बालक-राजा अजीतसिंह की रक्षा करने वाला प्रसिद्ध स्वामिभक्त सामंत मुकुन्ददास मेलावत खीची था।

लगता है, इन वंशावलियों में ये नाम छूट गए हैं क्योंकि इनमें से कोई भी वंशावली एकान्ततः पूर्ण और प्रामाणिक नहीं कही जा सकती। इनमें प्राप्य इसी नाम व संख्यागत वैषम्य को देखते हुए चौहान-कुल-कल्पद्रुम के लेखक ने भी अपने द्वारा दी गई वंशावली की संदिग्धता स्वीकार की है।[3]

इधर जब हम 'वचनिका' पर दृष्टिपात करते हैं तो ये वंशावलियाँ हमारा साथ नहीं देतीं। 'वचनिका' में, जिसका साक्ष्य हम अधिक विश्वसनीय समझते हैं, अचलदास के पुत्र-रूप में सिवा पाल्हणसी के यद्यपि अन्य किसी का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं मिलता, तथापि प्रयोग व संदर्भ से जिनके अचलदास के पुत्र होने की संभावना ही पुष्ट होती है, वे (पाल्हणसी सहित) निम्नांकित हैं—

---

1. रघुनाथसिंहजी इन्द्रोका द्वारा प्रेषित उक्त हस्तप्रति का अंश।
2. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 100.
3. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 101.

1. चांदा (14) 2. पाल्हा (पाल्हणसी) 3. पातल (14) (12) 4. पामा एवं धीरउ (21) (12)।

वचनिका में प्रयुक्त इन नामों में से पूर्वोद्धृत वंशावलियों में केवल दो (पातल व पाल्हण) के नाम मिलते हैं, अन्य किसी के नहीं (अचलदास के पुत्र-रूप में)। साथ ही, वचनिका से यह भी स्पष्ट होजाता है कि 'पातल' और 'पाल्हण' दो भिन्न व्यक्ति हैं, एक नहीं, जैसाकि रघुनाथसिंहजी इन्द्रोका द्वारा प्रेषित 'श्री गुमान-यश-स्वामी-धर्मार्णव' की हस्तप्रति में दी गई वंशावली में लिखा है। इससे उक्त वंशावली की संदिग्धता स्वतः सिद्ध होजाती है।

धीरजदेव को वंशावलियों में चाचकदेव का पुत्र बताया गया है। यह चाचकदेव एक वंशावली[1] के अनुसार अचलदास का पुत्र तथा अन्यानुसार कड़वाराय का पुत्र था।[2] साथ ही इसका गागरोण पुनः प्राप्त करना भी लिखा है।[3] स्पष्ट ही, यह भ्रान्त है क्योंकि गागरोण धीरजदेव ने नहीं बल्कि पाल्हणसी ने अधिकृत किया था, जैसाकि हम पूर्व पृष्ठों में 'वचनिका की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत बता आए हैं।

प्रश्न है कि धीरजदेव कौन था? कर्नल टॉड के अनुसार वह अचलदास का पुत्र था, जो होशंगशाह का आक्रमण होने पर राणा मोकल के पास सहायतार्थ भेजा गया था—

"Dheeruj, the son of Keechie had come to solicit the stipulated aid against Hoshang of Malwa, who had invested their capital. The Rana's Head Quarters were then at Madaria and as he was employed in quelling a revolt of the mountaineers, when Dheeruj arrived and obtained the necessary aid."[4]

हमारे विचार से अधिक संभावना यही है कि धीरजदेव अचलदास का पुत्र था। 'वचनिका' में उसे राणा मोकल के पास भेजे जाने का स्पष्ट उल्लेख

---

1. भारतराजमंडल-ग्रंथ।
2. खिल्चीपुर रियासत की ख्यात (हस्तप्रति)।
3. वही।
4. Annals & Antiquities Of Rajasthan; Vol. I; Page 229, M. N. Pub., Delhi.

हुआ है[1] जो एक प्रामाणिक साक्ष्य है। अतः भारतराजमंडल का यह उल्लेख कि चाचकदेव को राणा मोकल के पास सहायता-प्राप्ति हेतु भेजा गया था, निराधार है। इसी भाँति, पाल्हणसी का राणा मोकल के पास भेजा जाना[2] भी इतिहास सम्मत नहीं है। 'वचनिका' में इस आशय का स्पष्ट एवं निर्भ्रान्त उल्लेख है कि धीरजदेव को मेवाड़ भेजे जाने के बाद पाल्हणसी को वंश-रक्षाथ दुर्ग के घेरे से बाहर जाने हेतु प्रेरित किया गया था।[3] गागरोण को ई० सन् 1437 के लगभग उसी ने पुनः अधिकृत किया था।

अचलदास के अन्य पुत्र 'पातल' (प्रतापसिंह) का 'वचनिका' में तो उल्लेख है ही, भारतराजमंडल ग्रंथ में दी हुई खिल्चीपुर की ख्यात में भी इसका अचलदास का पुत्र होना अंकित है।[4]

अचलदास का अन्य पुत्र गजसिंह, जिसका नाम खिल्चीपुर रियासत की हस्तलिखित ख्यात में खड्गसेन है, गागरोण के पतन के बाद पूर्व की ओर चला गया, जहाँ उसने कानपुर और प्रयाग के बीच 'गाजीपुर असोथर' राज्य की स्थापना की। इसके वंश में आगे चलकर भगवंतराय खीची बहुत यशस्वी और प्रभावशाली हुआ।[5]

इनके अतिरिक्त चौहान-कुल-कल्पद्रुम में अचलदास के कानसिंह सहित अन्य नौ पुत्रों का भी उल्लेख हुआ है[6] परन्तु उनके विषय में कोई विस्तृत एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है और न ही वचनिका में उनका कोई उल्लेख हुआ है।

पुत्रियाँ -

अचलदास की पुत्रियों के सम्बन्ध में कोई निश्चित ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं। वचनिका में केवल एक 'बाई ऊदी' का उल्लेख हुआ है (गोत

---

1. 'धीरउ उहां राणा मोकलसी पासि गयउ थ्यउ, तउ न जाण्यउ उहां ही रहउ, न जाणउ आवतउ किहीं बीच ही अडालराल यउ' 22(12)
2. Mediaeval Malwa; Page 49-50, U. N. Dey.
3. वचनिका (23-24)
4. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 105.
5. भगवंतराय खीची और उनके मंडल के कवि : ले० डॉ० महेन्द्रप्रतापसिंह।
6. चौहान-कुल-कल्पद्रुम : पृ० 100.

सवासणी तउ बाई ऊदी) जो अचलदास की बेटी या बहिन हो सकती हैं क्योंकि 'गोत-सवासणी' शब्द बहिन-बेटी के लिए ही प्रयुक्त होता है।

इधर लेखक को स्व० ठा० केसरीसिंहजी खींवसर से 'मारवाड़ की ख्यात' (पहली जिल्द) की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। उसमें अचलदास के जामाता बरजाँग भीमोत के वर्णन-प्रसंग में अचलदास के पाँच-सात पुत्रियाँ होने का उल्लेख है। ख्यात में लिखा है कि राव रिड़मल के चित्तौड़ में मारे जाने के फलस्वरूप हुए युद्ध में बरजाँग-भीमोत राव जोधा के पक्ष में लड़ता हुआ घायल होगया था परन्तु सीसोदियों का भाणेज होने से उसे उन्होंने न मारकर उसके घावों के पाटे (चौड़ी-पट्टियाँ) बँधवाए।[1] उसके घावों पर बाँधने हेतु प्रतिदिन 12 गज रेजी का थान लाया जाता था, जिसकी रस्सी बनाकर वह एक नाई एवं चारण की सहायता से निकल भागने में सफल होगया। उसके सेवक उसे बैल-गाड़ी में बैठाकर गागरोण ले आए।[2] उसके बाद का वृत्तान्त ख्यात में यों दर्ज है—

"जो सो बरजांग गागुरण जाय तलाव पिणगट रूंख री भली छांह देख बैठो। डेरो कियो छै। **सो गागुरण का धीणी खीची अचलदास रै बेटी पांच-सात छै।** सो तिणहिज दिनां सगळी रा विहाव छै। सो एक बेटी नूं वर जुडियो नहीं छै। सो बातां करै छै। बीजी सगळी बायां नूं बर जुडिया ने म्हारी बाई नूं वर जुडियो नहीं सो म्हारी धणीयाणी घणी सचीती छै सो ऐ बातां छोकरीयां नूं करतां राव बरजांग सूणी तरै कयो—"म्हांने परणावो तो हूं परणूं........।"[3]

आगे इसी ख्यात में लिखा है कि अचलदास ने अपनी पुत्री का विवाह बरजाँग से कर दिया, जो अपने समय का उद्भट शूरवीर और पराक्रमी योद्धा था। उसकी वीरता की प्रशंसा में 'एक पाखर लाख पाखर' की उक्ति प्रसिद्ध है।[4] उसने अनेक लड़ाइयाँ लड़ी थीं।[5]

---

1. मारवाड़ री ख्यात, पहली जिल्द (हस्तलिखित प्रति) ठा० केसरीसिंहजी खींवसर के सौजन्य से।
2. मारवाड़ रा परगनां री विगत : भाग 3 : पृ० 67 सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
3. मारवाड़ री ख्यात, पहली जिल्द (हस्तलिखित प्रति) ठा० केसरीसिंहजी खींवसर के सौजन्य से।
4. मारवाड़ री परगनां री विगत, भाग 3 पृ० 67 सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
5. वही, भाग 3 पृ० 43-44.

मारवाड़ की उपर्युक्त हस्तलिखित ख्यात के इस उल्लेख में कि वरजाँग भीमोत अचलदास का जामाता था, सत्यांश संभव है, किन्तु उसके विवाह की घटना को अचलदास और, राव रणमल के मारे जाने के फलस्वरूप हुए युद्ध के साथ जोड़ना अनैतिहासिक है। कारण, राव रणमल के मारे जाने की घटना वि० सं० 1495 (ई० सन् 1438) में घटित हुई थी[1], जबकि अचलदास, होशंगशाह से युद्ध करता हुआ संवत् 1480 (ई० सन् 1423) में ही वीरगति को प्राप्त हो चुका था। अतः बरजांग भीमोत के राव जोधा के पक्ष में युद्ध करते हुए घायल अवस्था में गागरोण जाने की घटना को यदि सत्य भी मान लिया जाए तो उस समय अचलदास का जीवित होना कदापि संभव नहीं है। जैसाकि हम देख चुके हैं, सन् 1438 से कुछ पहले पाल्हणसी ने गागरोण पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। अतः यदि बरजाँग भीमोत सन् 1438 के लगभग गागरोण गया हो तो अचलदास की कन्या के साथ उसका विवाह पाल्हणसी के राज्य-काल में ही हुआ होगा। संभव है, अचलदास की यह कन्या गागरोण के पहले साके के समय (सन् 1423) बहुत छोटी रही होगी, जो अब 1438 में वयस्क होगई होगी और तभी बरजांग भीमोत के गागरोण आने पर उसके साथ उसका विवाह कर दिया गया होगा। 'मारवाड़ रा परगना री विगत' से भी इसकी पुष्टि होती है, जिसके अनुसार "जब घाव ठीक होने को हुए तो रेजी के बचेहुए टुकड़ों का रस्सा बनाकर सेवकों ने बरजांग को किले की दीवार पर से सीधा नीचे उतार लिया और गुप्त रूप से एक बैलगाड़ी लेकर वहाँ से भागे। रास्ते में गागुराण के तालाब पर डेरे किये और संयोग से अचलदास खीची की पुत्री के साथ उसका विवाह भी हुआ।"[2]

ध्यातव्य है कि 'विगत' में उस समय अचलदास का जीवित होना कहीं नहीं लिखा है। तथापि यहाँ यह शंका तो अनिवार्यतः उठती ही है कि उस समय दुर्ग में हुए जौहर में जहाँ अंतःपुर की चालीस सहस्र ललनाएँ, जिनमें वृद्धाएँ, तरुणियाँ, किशोरियाँ एवं बालिकाएँ तक सम्मिलित थीं, भस्मीभूत होगईं तो अचलदास की इस कन्या सहित अन्य पुत्रियों का बच जाना कैसे संभव था? हाँ, उनमें से कोई अपने ननिहाल या अन्यत्र कहीं रह गई हो तो बात दूसरी है।

---

1. मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ० 78 : विश्वेश्वरनाथ रेऊ।
2. मारवाड़ रा परगनां री विगत : भाग 3 : पृ० 67, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

इस सम्बन्ध में, श्री भूरसिंह राठौड़ ने बरजांग भीमोत को चाचकदेव का जामाता बताया है—"बरजांग भीमोत मेवाड़ की कैद से भाग कर गागरोण चला गया था। वहाँ खीचियों के मुखिया चाचकदेव ने अपनी पुत्री उसे ब्याह दी।"[1] जो हो, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना सकना कठिन है।

अचलदास की अन्य कन्याओं के विषय में कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है।

व्यक्तित्व—अचलदास एक परम स्वाभिमानी, शूरवीर एवं स्वातंत्र्य-प्रिय नरेश था। वचनिका में कवि ने उसके व्यक्तित्व का जो ओजस्वी चित्र अंकित किया है, उसके अनुसार वह क्षत्रियोचित शौर्य एवं स्वाभिमान का मूर्त विग्रह था। वह चाहता तो होशंग की अधीनता अंगीकार कर अपना राज्य रख सकता था परन्तु उसे स्वाभिमान के मोल पर राज्य-लक्ष्मी स्वीकार न थी। होशंग द्वारा प्रस्तावित संधि की शर्तों में संभवतः एक यह भी रही हो कि अचलदास अपनी पुत्री का विवाह सुल्तान या शहजादे से करे, जैसाकि 'वचनिका' की एक प्रति के पाठान्तर से ज्ञात होता है :—

गढपत गौरीवै तणा, कहियो अेह कहाव।[2]
देस समप्पै पातसा, धीय समप्पै राव।।

मुस्लिम सुल्तानों के लिए अपने विजित हिन्दू राजाओं के समक्ष ऐसी माँग रखना कोई नई बात न थी। विजयनगर के अतुल पराक्रमी एवं प्रभुत्वशाली नरेश देवराय तक को, अनुपम लावण्यवती स्वर्णकार-कन्या की माँग को लेकर लड़े गए युद्ध में पराजित होने पर, बहमनी सुल्तान फ़िरोज के साथ अपनी राजकुमारी का विवाह करना पड़ा था।[3] नरसिंह ने बहुत पहले ही सुल्तान फिरोज बहमनी को अपनी कन्या ब्याह कर उससे पिंड छुड़ाया था।[4] सुल्तान अलाउद्दीन की स्त्री-लोलुपता तो इतिहास-प्रसिद्ध है ही। अतः होशंग

1. राजस्थान में राठौड़ राज्य का उदय और विस्तार, पृ० 194, ले० भूरसिंह राठौड़ फेफाणां।
2. दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका में प्रति 'बी' का पाठांतर।
3. The War Of The Goldsmith's Daughter; Adam Watson;
4. वही, पृ० 203.

ने भी कुछ ऐसा ही विवाह-प्रस्ताव रखा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु मानधनी अचलदास ने उसका जो उत्तर दिया, वह उसी के योग्य है—

> धीय न दी चहुवाण, खान सूं साहै खांडो।[1]
> धीय न दी धारुवैं, अभंग पतसाहाँ अड्डौ।
> धीय न दी हम्मीर, सु तो धर धीर कहावै।
> ओ नथ अग्गा लगे, तेण कुळ कळंक न लावै।
> अचलेस कहै अहमद्द सूं, वदै न कथयण वक्करै।
> पतसाह पुत्री परणी नहीं, कंवर वीर कणयागरै।।

अचलदास के शौर्य एवं स्वाभिमान से दीप्त व्यक्तित्व के अतिरिक्त उसका एक और भी पक्ष है, और वह है उसकी विलास-प्रियता का, जो हमारी 'वचनिका' में अचर्चित है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि 'वचनिका' का प्रतिपाद्य केवल गागरोण के उस इतिहास-प्रसिद्ध साके का वर्णन करना है, जिसमें अचलदास खीचो दुर्ग की रक्षार्थ लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। अतः इसमें अचलदास के व्यक्तित्त्व के उस रंगीले पक्ष का चित्रण करने का न कवि को अवकाश है न प्रतिपाद्य की दृष्टि से उसकी प्रासंगिकता ही। तथापि अन्य स्रोतों (जैसे लालां मेवाड़ी की बात) से उस पर जो प्रकाश पड़ता है, वह उपेक्षणीय नहीं है। भले ही सन्-संवतों की दृष्टि से इन स्रोतों की ऐतिहासिकता संदिग्ध मानी जाए परन्तु इनमें अचलदास के चरित्र और व्यक्तित्व की जो अंतरंग झलक मिलती है, वह निरी काल्पनिक नहीं है। कवि-कल्पना एवं काव्योचित अतिरंजना के उपरान्त भी उसमें कुछ सार अवश्य है। उदाहरणतः लालाँ मेवाड़ी की बात में अचलदास के जिस विलास-प्रिय रूप का चित्रण हुआ है, वह बहुत कुछ यथार्थ है तथा अचलदास की पराजय एवं दुर्ग के पतन के लिए वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो परोक्षतः उत्तरदायी है। कारण, जैसाकि उक्त बात में लिखा है, लालाँ मेवाड़ी (रानी पुष्पावती) से विवाह होजाने के अनन्तर अचलदास ने झीमा चारणी के मुँह से जाँगलू के शासक खींवसी साँखला की तेरह वर्षीय कन्या उमा साँखली के अनुपम लावण्य की प्रशंसा सुन उससे विवाह कर लिया तथा अचलदास उसके रूप पर ऐसा रीझ गया कि अपने राज-काज की सब सुध-बुध भूल सात महीनों तक अपनी ससुराल

---

1. दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका में 'बी' प्रति का पाठांतर।

में ही रमा रहा। उधर गागरोण राज्य में राजा की इस दीर्घ अनुपस्थिति से सारी राज्य-व्यवस्था चौपट होगई, जिसकी खबर करने एक संदेशवाहक (मोहता) जाँगलू भेजा गया। उसने अचलदास को राज्य की शोच्य स्थिति से अवगत करते हुए जो विवरण दिया, वह बहुत महत्वपूर्ण है। राज्य की पतनोन्मुख व्यवस्था का वह एक सटीक चित्र है, जिसकी परिणति अंततः दुर्ग के पतन में हुई। जैसाकि हम लिख चुके हैं, उक्त बात में सम्बद्ध पात्रों की समकालीनता का प्रश्न विवादास्पद होने पर भी उनके माध्यम से अचलदास के चरित्र तथा उसकी तत्कालीन राज्य-स्थिति का जो निरूपण इसमें हुआ है, वह तथ्याश्रित है। दूसरे शब्दों में, इसके कथा-कलेवर में (जिसे थोड़ी देर के लिए काल्पनिक भी मान लिया जाए) जो ऐतिहासिक तत्त्व (Historical Content) गर्भित है, वह निराधार नहीं है। सन्देशवाहक द्वारा कथित उक्त बात का संवद्ध अंश निम्नांकित है—

"तरै मुंहतै कह्यो—'राज अठै आय नें वैस रह्या सु मास सात रह्या सो बुरो कीयौ। **उठै नुं मियां धरती सगळी सूनी कीधी।** राज अठै वेसी रह्या छो। **चिहुं काने नू मीयां माथो उपाडोयो छै।** धरती मांहे खोस-खूंद बुरो हवाल छै। जिन राजवी नुं धरती आस हुवै सो पारके घरि क्युं बैसि रहै। बुरौ कीयौ। हिमें राज वेगा पधारिज्यौ। मुंहतो अचलदासजी सूं गाढो रीसायो'।....''[1]

उपर्युक्त अंश से अचलदास की विलास-वृत्ति के फलस्वरूप गागरोण के पतन की पूर्व-पृष्ठभूमि का यथेष्ठ ज्ञापन होजाता है। इसके रेखांकित अंश से यह भी पता चलता है कि गागरोण पर होशंग के आक्रमण के पूर्व ही चतुर्दिक यवनों ने उत्पात मचाना शुरू कर दिया था। आखिर मोहता के यों खरी-खरी सुनाने पर अचलदास किसी प्रकार ससुराल से रवाना हुआ परन्तु गागरोण पहुँचने में ही उसने मार्ग में चार माह लगा दिए। तदनन्तर वह अपनी नई रानी के प्रेम-पाश में ऐसा बँध गया कि वह अपनी मेवाड़ी रानी को दिया गया वचनादि सब कुछ भूल गया तथा अपनी नई रानी उमा के साथ भोग-विलास में लीन होगया।[2]

---

1. अचलदास खीची री वार्ता (हस्तप्रति), राज० शोध संस्थान, चौपासनी, जोधपुर, (जयविमलगणि द्वारा संवत् 1774 में लिपिकृत)।
2. वही।

उपर्युक्त 'वार्ता' को यदि हम अचलदास को लेकर लिखित एक काल्पनिक 'बात' भी मानें, तो भी उसके चरित्र का यह पक्ष तथ्यशून्य नहीं है। यह विलास-प्रियता और प्रणय-प्रसंग अकारण आरोपित नहीं हो सकता। इससे कम से कम इतना तो पता चल ही जाता है कि अचलदास में यह विलास-वृत्ति किंचित् अधिक ही थी, जिसके फलस्वरूप उसने दुर्ग की साज-सज्जा, सैन्य-शक्ति तथा राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था पर समुचित ध्यान नहीं दिया। परिणामतः उसकी सामरिक शक्ति क्षीण होती गई एवं वह शीघ्र ही होशंग जैसे प्रबल शत्रु की महत्वाकांक्षा का शिकार हो अपने राज्य से हाथ धो बैठा। गांगरोण के पतन का यह भी एक आनुषंगिक कारण रहा है। उक्त वार्ता में वर्णित अचलदास की इस अतिशय विलास-वृत्ति की पुष्टि इतिहासकारों ने भी की है। यथा मध्यकालीन मालवा-इतिहास के विद्वान् लेखक श्री उपेन्द्रनाथ डे ने लिखा है—

"Thus left undisturbed, the Khichi Chauhans felt safe and neglected the defence of their country. Achaldas Khichi, the son-in-law of Rana Mokul and the ruler of Gagraun, devoted most of his time to pleasures of life and neglected the repair and upkeep of the fort"[1]

जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि आक्रमण होने पर अचलदास अत्यन्त वीरता से लड़ा तथा उसने शौर्य, स्वाभिमान और पराक्रम का ऐसा उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया, जो भावी नरेशों के लिए प्रेरणा का शाश्वत स्रोत बन गया।

अतः उसकी विलास-वृत्ति को उसके निजी शौर्य एवं वीरत्व में बाधक तत्व समझने की भ्रांति नहीं होनी चाहिए। हमारे कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि अपने ऐन्द्रिक सुखोपभोग में अतिशय लिप्त रहने के कारण वह दुर्ग की सुरक्षा एवं सैन्य-शक्ति पर वांछित ध्यान नहीं दे पाया। परन्तु जहाँ तक वैयक्तिक वीरता, साहस और शौर्य का प्रश्न है, अचलदास सर्वथा अतुलनीय था। स्वयं कवि के ही शब्दों में—"राजा अचळेसर सारिखा अचळ नइ अचळेस ही होयइ।"[2]

---

1. Mediaeval Malwa; Page 49; U.N. Dey.
2. वचनिका (9).

साथ ही, अचलदास की इस विलास-वृत्ति का एक और भी पक्ष है, जो तत्कालीन परिवेश एवं जीवन-मूल्यों से जुड़ा है तथा जिसे जाने बिना हम उसके साथ न्याय नहीं कर सकेंगे। विदित हो कि उस युग में विलासप्रियता को प्रभुत्वसंपन्न नरेशों के चरित्र और व्यक्तित्व का एक अनिवार्य गुण माना जाता था। यही कारण है कि आदर्श क्षत्रिय को डिंगल-कवियों ने जिन प्रशस्ति-वचनों से प्रशंसित एवं उपाधियों से विभूषित किया है, उनमें 'खाग-त्याग-ऊजळा' (शूरवीर और दानवीर) के साथ-साथ 'भोगी-भँवर' (भंवरे के समान रस-भोग करने वाला, विलास प्रिय) भी एक है। वीर और श्रृंगार की यह अनन्यता मध्ययुगीन क्षत्रिय नरेशों के व्यक्तित्व में एकरूप होगई थी। अचलदास भी इसका अपवाद नहीं था। अतः अचलदास का चारित्रिक मूल्यांकन करते समय हमें मध्ययुगीन क्षत्रिय नरेश विषयक इस तद्‌युगीन अवधारणा को भी ध्यान में रखना होगा।

युद्ध एवं अन्त—

वि० सं० 1480 (ई० सन् 1423) में अपने उड़ीसा-अभियान से लौटने के कुछ समय बाद ही होशंग ने गागरोण पर आक्रमण कर दिया। खिल्चीपुर रियासत की ख्यात के अनुसार यह लड़ाई राजा के एक तोते के कारण हुई।[1] गागरोण के तोते यद्यपि प्रसिद्ध हैं, तथापि उक्त युद्ध किसी तोते के कारण हुआ हो — यह संगत नहीं लगता। हमारे विचार से गागरोण पर आक्रमण करने के मूल में होशंग का उद्देश्य उस क्षेत्र के एक प्रमुख चौहान-संस्थान को नष्ट कर अपना प्रभुत्व स्थापित करना ही रहा होगा। कारण, होशंग एक महत्वाकांक्षी सुल्तान था। वह गुजरात और बहमनी सुल्तानों से टक्कर ले चुका था। पूर्व में उडीसा और दक्षिण में खेरला के शक्तिशाली और दुर्दम्य शासक नरसिंह का दमन कर उसने उसे बन्दी बना लिया था। अतः अपने उत्तरी सीमान्त पर अचलदास जैसे स्वाभिमानी हिन्दू राजा के स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व वह भला कैसे सहन कर सकता था? फलतः खेरला को विजित करने के तुरन्त बाद ही वह सदल-बल गागरोण पर चढ़ आया।

गागरोण के उक्त युद्ध का जो वर्णन 'वचनिका' में दिया है, उसका सार हमने आगे प्रस्तुत किया है। अतः यहाँ उसकी विवृत्ति अनावश्यक है। यहाँ

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 104.

हम अन्य ग्रन्थों में प्राप्य उक्त युद्ध सम्बन्धी केवल उन्हीं प्रमुख ज्ञातव्यों का उल्लेख करेंगे, जो विवरण को पूरक बनाने की दृष्टि से उपयोगी हैं।

इस युद्ध के सम्बन्ध में, भारतराजमंडल-ग्रन्थ में लिखा है कि, "अचलदास वीर पुरुष हुआ। उसने बारह दिन तक दुश्मन के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया और तेरहवें दिन इसका सिर कटकर 'भमरपोल' के पास गिरा और धड़ 'सखर-तलाव' पर जाकर पड़ा, जहाँ इसका स्मारक बना हुआ है और पूजन होता है।"[1]

वचनिका के अनुसार भी यह युद्ध महाष्टमी से दूसरी अष्टमी तक चला था[2], जो अंग्रेजी तारीख के अनुसार 13 सितम्बर, 1423 से 27 सितम्बर, 1423 तक हुआ। इससे स्पष्ट है कि यह युद्ध एक पखवाड़े में ही समाप्त होगया। इस दृष्टि से वंशभास्कर का यह उल्लेख कि अचलदास ने अनेक वर्षों तक युद्ध किया,[3] भ्रामक है। तबकाते-अकबरी में भी इसे अल्प समय में ही विजित कर लेना लिखा है,[4] जो सही है। वंशभास्कर में गागरोण-युद्ध का वर्णन करते हुए सूर्यमल्ल ने लिखा है—

गागरोणि अचलेस सजे गढ, रण बहु बरस किये रावण रढ।[5]
असुचि मंत्र दिल्लीस उपायो, बारि पटकि गोपल बिगड़ायो।
जरै अपेय अचळ जल जाणे, तोड़े अरर मुच्छ कर ताणे।
मथे जवन-दळ उदधि खीर मित, अचळ हुवो तिल-तिल सुर अंचित॥

उपर्युक्त वर्णन में अचलदास के प्रतिपक्षी शत्रु के लिए 'दिल्लीस' का प्रयोग भी अयुक्त है क्योंकि होशंग मांडू (मालवा) का सुल्तान था, दिल्ली का नहीं। यदि कवि ने 'दिल्लीस' का यहाँ व्यापक अर्थ में, 'बादशाह' या 'सुल्तान' के निमित्त प्रयोग किया हो तो बात दूसरी है, जैसे कि 'हैवेपति', 'असपति' आदि शब्दों का कवि रूढ़ार्थ में बादशाह के लिए प्रयोग करते आए हैं।

---

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 105
2. वचनिका 21(1)
3. वंशभास्कर, पृ० 1191
4. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, भाग 2, पृ० 57, सं० अतहर अ० रिजवी।
5. वंशभास्कर, पृ० 1191

वंशभास्कर में यह भी उल्लेख है कि दुर्ग को अधिकृत करने के जब अन्य सभी उपाय विफल होगए तो सुल्तान ने जलाशय में गोमांस डलवाकर उसे दूषित कर दिया, जिसके फलस्वरूप अचलदास ने उस जल को अपेय समझकर तथा जीने का अन्य कोई विकल्प न देखकर केसरिया करने का निश्चय किया। तदनुसार दुर्ग के कपाट खुलवाकर वह वीर क्रुद्ध हो मूँछे तानता हुआ शत्रु-सेना पर टूट पड़ा तथा तिल-तिल असि-धारा से खंडित हो मृत्यु का आलिंगन किया। यों, उसने देवों से भी वन्दित होने का गौरव पाया। उसकी रानियों—लालाँ और उमाँ ने उसके साथ सहगमन किया।[1] परन्तु वचनिका के अनुसार रानियों ने जौहर पहले ही कर लिया था। उसके बाद ही अचलदास अपने बंधु-बाँधवों सहित गढ़ से उतर कर गढ़ की तलहटी में आया और भीषण युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।[2] इस दृष्टि से, वचनिका में दिया गया युद्ध-विवरण (जौहर-सम्बन्धी) अधिक प्रामाणिक है।

जहाँ तक गोमांस द्वारा जलाशय को दूषित किए जाने का प्रश्न है, वचनिका में इस आशय का तो कोई उल्लेख नहीं मिलता परन्तु युद्ध-वर्णन-प्रसंग में रुधिर के नाले जल में मिलने से उसके दूषित होजाने का वर्णन अवश्य हुआ है—"रुधिर का बाहळा जळ में मिल्या। **पाणी बिटलिया।**"[3] खिल्चीपुर की ख्यात भी गोमांस से जल दूषित किए जाने का उल्लेख करती है। उसके अनुसार—"गागरून का किला हाथ नहीं आने से सुल्तान ने धोबी से मिलकर धर्म बिगाड़ने का यत्न किया, जिससे राव अचलदास ने किले से बाहर आकर मैदान में युद्ध किया, जिसमें इसके दस बड़े पुत्र व एक पासवान का पुत्र (गोपालदास) भी साथ थे और छोटे दो पुत्रों को वंश रखने के कारण दूर भेज दिये। युद्ध में इसके पुत्र काम आए। परन्तु अन्त में राव की जीत हुई। जबकि फतह पाकर राव अचलदास वापस लौटे तब मोतीदास और महेश्री (महेश्वरी) सुन्दरदास नाम के सख्स से, जो शत्रु से मिले हुए थे, उन्होंने जीत का निशान पीछे कर लिया, जिससे राणियां बारूद से जल गई (जमर खडक के जल कर मर गई)। इस कारण अचलदास ने किले में न जाके पुनः युद्ध शुरु किया और बहुत से शत्रुओं को मारकर खुद भी काम आया।"[4]

---

1. वंशभास्कर, पृ० 1191
2. वचनिका, 26 (17, 18, 22, 23)
3. वही, 22(2)
4. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 104

'वचनिका' में यद्यपि मोतीदास और सुन्दरदास महेश्वरी द्वारा विश्वास-घात किए जाने का कोई उल्लेख नहीं मिलता, तथापि बहुत सम्भव है गागरोण का पतन भी किसी विश्वासघात-जन्य षड़यन्त्र के फलस्वरूप हुआ हो, जैसाकि रणथंभोर और सिवाणा का हुआ था। विदित हो कि रणथंभोर का पतन रणमल और रायपाल (रतिपाल) नामक दो महेश्वरी प्रधानों के विश्वासघात के कारण ही हुआ था। रणमल न केवल स्वामिद्रोही था अपितु नीच और कृतघ्न भी। युद्धोपरान्त जब दिवंगत योद्धाओं के शवों से पटे रणक्षेत्र में बादशाह अलाउद्दीन ने रणमल को अपने स्वामी राव हमीर का शव बताने को कहा तो उस कृतघ्न ने अपने पैर से हमीर का शव बताया।[1] परन्तु अलाउद्दीन स्वामिभक्ति का महत्व जानता था। उसने जहाँ अपने विद्रोही, किन्तु हमीर के प्रति स्वाभिभक्त, सामन्त महिमाशाह (मुहम्मदशाह) की आदरपूर्वक अन्त्य-क्रिया करवाई, वहाँ रणमल और रायपाल की खाल खिंचवाई।[2] स्वामिद्रोह का यही उचित दंड था !

गागरोण का पतन भी यदि किसी ऐसे ही स्वामिद्रोही आमात्य की दुरभिसंधि का परिणाम हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। मध्ययुगीन राजस्थानी इतिहास के न जाने कितने पृष्ठ छल, प्रपंच, प्रतारणा और विश्वासघात के ऐसे ही कुकृत्यों से कलंकित हैं।

जो हो, अचलदास इस युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ काम आया। अन्तिम समय में उसे केवल एक ही चिन्ता सता रही थी—वंश-बीज की रक्षा की। इसीलिए उसने बहुत समझा-बुझाकर किसी तरह पाल्हणसी को दुर्ग से निष्क्रमण करने हेतु राजी किया और जब वह चला गया तो अचलदास ने निश्चिंत हो वीरोचित मृत्यु का आलिंगन किया तथा यों वह वीर अक्षय कीर्ति का भागी हुआ, जो वीरों की वरेण्य है। जैसाकि कवि छीहल ने कहा है, त्रिभुवन में बस एक यह कीर्ति ही अमर है। बाकी सब तो काल के प्रवाह में खप जाते हैं—

तिहुँ भुवन मज्झि छीहल कहइ, सदा एक कीरति अमर।[3]

---

1. हम्मीरायण, व्यास भांडा–रचित, पृ० 34, सं० भँवरलाल नाहटा।
2. वही, पृ० 36
3. कवि बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, पृ० 142, सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।

अचलदास ने इसी कीर्ति का वरण कर अपने नाम को सार्थक कर दिया।

10. अचलदास एवं महाराणा मोकल—

मेवाड़ के महाराणा मोकल अचलदास के श्वसुर थे। दोनों की समकालीनता तथा महाराणा मोकल की पुत्री एवं अचलदास की रानी पुष्पावती से सम्बन्धित ऐतिहासिक विसंगति के आरोपों की हम पहले चर्चा कर आए हैं। 'वचनिका' के अनुसार गागरोण पर होशंग का आक्रमण होने पर धीरा को सहायता-प्राप्ति हेतु मेवाड़ भेजा गया था[1] परन्तु वहाँ से कोई सहायता नहीं आई और गागरोण का पतन होगया। इस सम्बन्ध में, एक प्रचलित मान्यता यह है कि राणा मोकल अचलदास की सहायतार्थ जाने की तैयारी कर ही रहे थे कि चाचा और मेरा ने उनका वध कर दिया। 'मारवाड़ रा परगना री विगत' में इस आशय का उल्लेख हुआ है—

"खीची अचलदास भोजावत ऊपर गागरण पातसाह मांडव रौ आयो छै। सु अचलदास राणा मोकल रै जँवाई छै। सु राणा जी कनै आदमी आया छै। सु दीवांण उठा नु चढण री तयारी करै छै। तरै दीवांण राव रिडमल नु कहै छै—'थे मारवाड़ जाय साथ ले आवौ।' राव रिड़मल कहै छै—'हूँ दीवाण था इण बेळाँ में अळगौ नहीं होऊँ।' तरं दीवांण घणोज हैत कीवी। तरै राव रिड़मल कह्यौ—'म्हे चाचा मेरा रौ इसड़ौ घाट देखां छां, अै आज सुहार मांहे थांनू मारसी।' तरै राव रिड़मल नूं दीवांण कहै छै—'थे तो चालो।' तरै राव रिड़मल कह्यौ—'म्हे थांनूं पाणी दे ने चाल्याँ छाँ।' ....राणा मोकल नै चाचा—मेर ऊजळै घावाँ मारीयौ।"[2]

कर्नल टॉड ने भी राणा मोकल के अपने जामाता अचलदास की सहायता पर न जा पाने का यही कारण बताया है—

"Dheruj, the son of Kheechie had come to solicit the stipulated aid against Hoshung of Malwa, who had invested their capital. The Ranas' Head Quarters were then at Madaria and he was employed in quelling a revolt of the

---

1. वचनिका 21 (2)
3. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 1, पृ० 28-29, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

mountaineers, when Dheruj arrived and obtained the necessary aid. Madaria was destined to be the scene of the termination of Mokuls' career. He was assassinated by his uncles, the natural brothers of his father (Chacha and Maira)."[1]

उपर्युक्त उल्लेखों से यह धारणा बनती है कि गागरोण पर आक्रमण होने के समय ही राणा मोकल भी चाचा-मेरा के हाथों मारे गए, जिसके-फलस्वरूप वे अचलदास की सहायतार्थ न जा सके। दूसरे शब्दों में, उक्त दोनों घटनाएँ एक ही सन्-संवत में हुईं।

परन्तु परीक्षण करने पर यह धारणा निर्मूल सिद्ध होती है। कारण, गागरोण-युद्ध और राणा मोकल की मृत्यु में पूरे दस वर्षों का अन्तर रहता है। गागरोण का युद्ध जहाँ संवत् 1480 में हुआ, वहाँ राणा मोकल की मृत्यु संवत् 1490 में, जैसाकि ओझाजी सहित अन्य विद्वानों का मत है। अतः दोनों घटनाओं को समसामयिक मानने की धारणा भ्रान्त है।

जहाँ तक गागरोण-युद्ध का सम्बन्ध है, फारसी तवारीखों का एतद्विषयक उल्लेख सर्वथा प्रामाणिक एवं निर्भ्रान्त है, जिसके अनुसार उक्त युद्ध संवत् 1480 (ई० सन् 1423) में हुआ था।[2] इस सम्बन्ध में, खिल्चीपुर रियासत की हस्तलिखित ख्यात में गागरोण-युद्ध का संवत् 1482 दिया है,[3] जो गलत है। श्री सुखवीरसिंह गहलोत ने यद्यपि अचलदास पर मालवा-सुल्तान होशंग के आक्रमण का सन् ठीक दिया है। (ई० सन् 1423) तथापि उन्होंने भ्रमवश गागरोण के स्थान पर नागौर का गढ़ लेना लिख दिया है—

"मालवा के होशँगशाह ने 1: दिन के घेरे के बाद नागौर के गढ़ पर कब्जा किया। अचलदास खीची मारा गया।"[4]

परन्तु इसके नीचे ही वे लिखते हैं—

---

1. Annals And Antiquities Of Rajasthan; Vol. I, Page 229, M. N. Publishers, Delhi.
2. तबकाते-अकबरी।
3. चौहान-कुल-कल्पद्रुम।
4. राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, पृ० 12, ले० सुखवीरसिंह गहलोत।

"(सन् 1426 में) मालवा के सुल्तान हुसैनशाह ने गागरोण (कोटा) का किला जीता।"[1]

स्पष्ट ही, यहाँ लेखक ने सन्-संवत तथा नाम व स्थान का गड़बड़झाला कर दिया है। तथ्य यह है कि सन् 1423 में सुल्तान होशंग ने गागरोण पर आक्रमण कर अपना अधिकार कर लिया तथा इसी युद्ध में अचलदास काम आया।

इसी भाँति, राणा मोकल की मृत्यु, संवत् 1490 में होना भी इतिहास-सम्मत है। जैसाकि वीरविनोद में लिखा है, संवत् 1490 में जब राणा मोकल बागौर में मुकाम किए हुए थे, तब चाचा और मेरा ने उनका वध कर दिया।[2] अन्य स्रोतों से भी इस तिथि की पुष्टि होती है।[3] इनमें महाराणा मोकल का शृंगी ऋषि नामक स्थान पर प्राप्त श्रावण शुक्ला 5, संवत् 1485 का शिलालेख प्रमुख है, जो उन्होंने अपनी पत्नी गौराम्बिका की मुक्ति के लिए अपने धार्मिक गुरु की आज्ञा से उक्त स्थान पर एक कुण्ड बनवाकर प्रतिष्ठापित करवाया था। इस शिलालेख से राणा मोकल का गागरोण-युद्ध के पाँच वर्ष बाद तक जीवित रहना असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होजाता है।[4]

इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए 'मारवाड़ रा परगनां री विगत' तथा कर्नल टॉड के इतिहास पर आधारित यह धारणा कि राणा मोकल चाचा-मेरा द्वारा मार दिए जाने के कारण अचलदास की मदद पर न जा सके, निर्मूल प्रतीत होती है।

ऐसी स्थिति में, प्रश्न उठता है कि यदि राणा मोकल संवत् 1480 में नहीं मारे गए तो फिर अचलदास की सहायतार्थ उनके न जाने का कारण क्या है? अचलदास तो उनका जामाता था। और फिर धीरजदेव को एतन्निमित्त उनके पास विशेष रूप से भेजा गया था। इन परिस्थितियों में कोई भी श्वसुर अपने जामाता के अनुरोध की अवहेलना नहीं कर सकता था। फिर क्या कारण था कि राणा मोकल अचलदास की सहायता पर नहीं गए?

---

1. राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, पृ० 12, सुखवीरसिंह गहलोत।
2. वीरविनोद, भाग 1, पृ० 270।
3. राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, पृ० 12, सुखवीरसिंह गहलोत।
4. राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० 133-34, डॉ० गोपीनाथ शर्मा।

जहाँ तक इतिहास का सम्बन्ध है, वह इस प्रश्न पर कोई स्पष्ट प्रकाश नहीं डालता। कर्नल टॉड के इतिहास से हम केवल इतना जान पाते हैं कि उस समय राणा मोकल मदारिया में मुकाम किए हुए थे तथा वे पर्वतीय लोगों (मेवासियों) के उपद्रव को दबाने में व्यस्त थे।[1]

यदि कर्नल टॉड के इस कथन को आंशिक रूप में स्वीकार कर लिया जाय कि राणा मोकल मेवासियों के उपद्रव को दबाने में व्यस्त रहने के कारण न जा सके तो हमें इस प्रश्न का सन्तोषजनक समाधान मिल जाता है। वस्तुतः यह कारण संगत प्रतीत होता है, जिसके अनुसार उपर्युक्त परिस्थितिवश राणा मोकल तत्काल अचलदास की सहायता पर न जा सके एवं वे वहाँ जाने का उपक्रम करें, इसी बीच सम्भवतः दुर्ग का पतन होगया। गागरोण का युद्ध अल्पकालिक रहा था। अतः यह असम्भव नहीं कि राणा मोकल के अपनी सेना संगठित कर वहाँ पहुँचने से पहले ही उन्हें युद्ध-समाप्ति की सूचना मिल गई हो, जिसके फलस्वरूप उन्हें अपना अभियान स्थगित कर देना पड़ा हो।

ज्ञात हो कि सुल्तान होशंग ने एक बहुत बड़े सैन्य दल के साथ गागरोण पर आक्रमण किया था, जिसका मुकाबला करने के लिए राणा मोकल ने भी उतनी ही शक्तिशाली सेना की आवश्यकता अनुभव की हो। उनका राव रिड़मल को भी अपनी सेना सहित आने का अनुरोध करना इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।[2]

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि उस समय राज्य की अपनी निजी सेना तो अवश्य होती थी परन्तु आज की तरह हर क्षण सन्नद्ध एक विशाल सुनियोजित एवं सुसंगठित सेना (Standing Army) नहीं थी। राज्य को जब भी आवश्यकता पड़ती, अपने अधीनस्थ विविध जागीरी संस्थानों के सामन्तों को सूचना भेज दी जाती और वे अपने भाई-बेटों सहित अपनी-अपनी सैनिक टुकड़ियाँ लेकर आ एकत्र होते। दूसरे, तब संचार-साधन भी बहुत सीमित थे। अतः स्वाभाविक है कि एक विशाल सैन्य-दल जुटाने तथा उसे लेकर सुदूर मोर्चे पर पहुँचने में थोड़ा-बहुत समय लग ही जाता था। प्रस्तुत प्रसंग में भी

---

1. Annals & Antiquities Of Rajasthan; Vol. I; Page 229; M. N. Publishers, Delhi.
2. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 1, पृ० 28-29, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

सम्भवतः कुछ ऐसा ही हुआ। जो हो, **निष्कर्ष यह है कि गागरोण पर होशंग के आक्रमण के समय राणा मोकल विद्यमान थे किन्तु किन्हीं अपरिहार्य कारणों से वे अपने जामाता अचलदास की सहायतार्थ न जा सके।**

11. 'आलम' 'साहि आलम' एवं 'गोरी राव' उपाधियों का मर्म—

'वचनिका' में शिवदास ने मालवा के सुल्तान अलपखाँ गोरी (होशंगशाह) के लिए कहीं 'आलम', कहीं 'साहि आलम' और कहीं 'गोरी राव' का प्रयोग किया है। यथा—

1. **आलम** का अड़साल ईखे गूडर आसना।
2. लीधा बळि लागी करी, **साहि आहम** सहि देस।

इसे लेकर डॉ० टैसीटरी ने ग्रन्थ-रचयिता पर अनैतिहासिक कथन का आरोप लगाते हुए लिखा है कि यहाँ 'आलमगोरी' या 'आलमसाह' नामक दिल्ली के सुल्तान का अचलदास के विरुद्ध होशंग के पक्ष में लड़ने का वर्णन इतिहास-विरुद्ध है। उन्हीं के शब्दों में—

"The style of the composition is much uncouth and archaic enough to corroborate the above statement but the correctness of the account is much distorted by political exaggerations and fiction; like when the poet describes the army of the Patishaha of Malwa as being assisted by an array led by the emperor of Dilli in person—his name Alim Ghori(!) and engrossed by contingents from many Rajput states."[1]

फर्जी नामों की भर्ती का कुछ ऐसा ही आरोप डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने भी लगाया है,[2] जिसका डॉ० दशरथ शर्मा ने सयुक्ति खंडन किया है।[3]

विद्वद्वर डॉ० टैसीटरी ने 'आलमगोरी' के दिल्ली का बादशाह होने तथा उसके अचलदास के विरुद्ध होशंग की मदद पर आने की बात किस आधार

1. A Descriptive Catalogue Of Bardic And Historical MSS; Section II; Part-II; Page 41; Dr. L. P. Tessitori.
2. शोधपत्रिका–विशेषांक; वर्ष 17, अंक 1–2, डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
3. विश्वंभरा; वर्ष 9, अंक 3–4, डॉ० दशरथ शर्मा।

पर कही—यह हम नहीं जानते । कारण, 'वचनिका' में कहीं भी 'आलम', 'आलमसाह' अथवा 'गोरी राव' के दिल्ली का बादशाह होने का उल्लेख नहीं है और न ही उसके होशंग की सेना में सम्मिलित होने का वर्णन है। स्पष्ट ही, यह डॉ॰ टैसीटरी की अपनी प्रकल्पना है। अत: वचनिकाकार पर इसके आधार पर लगाया गया अनैतिहासिकता का आरोप सर्वथा निर्मूल है।

प्रश्न है, फिर 'वचनिका' में प्रयुक्त 'आलम' या 'आलमसाहि' आदि शब्दों का क्या अर्थ है ? अचलदास के प्रतिपक्षी मालवा के सुल्तान का नाम तो 'अलपखाँ गोरी' उर्फ होशंगशाह था, न कि 'आलम' या 'आलमसाहि'।

डॉ॰ टैसीटरी के उपर्युक्त आरोप पर टिप्पणी करते हुए विद्वद्वर डॉ॰ दशरथ शर्मा ने पहले इसे अलपखाँ गोरी का दुष्पठित रूप मानकर समाधान किया था। उन्हीं के शब्दों में—

"वास्तव में 'आलमगोरी' या तो 'अलपगोरी' का दुष्पठित रूप है या स्वयं शिवदास ने अलप को 'आलम' में परिवर्तित कर दिया है। 'अलप' का 'अलम' या 'आलम' के रूप में पठित या परिवर्तित होना बड़ी बात नहीं है। प्राय: लोग 'अलप' नाम से अपरिचित और 'आलम' से परिचित हैं।"[1]

परन्तु बाद में ललितपुर (झांसी) में संवत् 1481 का एक अतीव महत्वपूर्ण शिलालेख मिलने पर उन्होंने अपनी उक्त धारणा में परिवर्तन कर लिया, जिसके अनुसार 'आलम' या 'आलमसाहि' शब्द न दिल्ली के किसी सुल्तान विशेष का वाचक है, जैसाकि डॉ॰ टैसीटरी ने समझ लिया है और न ही यह 'अलप' का दुष्पठित रूप है जैसाकि डॉ॰ दशरथ शर्मा ने पूर्व प्रतिपादित किया था। **तद्विपरीत, वचनिका में प्रयुक्त यह 'आलम' या 'आलमसाहि' शब्द उपाधि-रूप में होशंगशाह या अलपखाँ गोरी के लिए ही प्रयुक्त हुआ है, जैसाकि वि॰ सं॰ 1481 के उक्त अभिलेख से ज्ञापित होता है।** यह लेख 'जैन-लेख-संग्रह', भाग 3, पृ॰ 464 में भी प्रकाशित हुआ है। लेख का सम्बद्ध अंश है—

"श्रीमान् **मालवपालकें शकनृपे-गोरीकुलोद्योतके** निः वान्ते विजयाय मण्डपपुराच्छी**साहिआलम्मके**।"[2]

---

1. वचनिका, सं॰ दीनानाथ खत्री, पृ॰ 5–6; ऐतिहासिक परीक्षण डॉ॰ दशरथ शर्मा।
2. विश्वंभरा, वर्ष 9; अंक 3–4, पृ॰ 46, डॉ॰ दशरथ शर्मा तथा राजस्थान के ऐतिहासिक शोध-लेख, पृ॰ 123, ले॰ रामवल्लभ सोमानी से साभार उद्धृत।

इससे यह स्पष्टतया प्रमाणित है कि यह होशंगशाह का ही उपाधिसूचक नाम है।

जहाँ तक 'गोरी राव' के प्रयोग का प्रश्न है, इसका अर्थ स्पष्ट है। मालवा-सल्तनत का संस्थापक दिलावरखाँ, 'गोरी' वंश का था। अतः उसके वंश-नाम से उसका पुत्र अलपखाँ भी 'गोरी' कहलाया। 'गोरी राव' होशंग के लिए प्रयुक्त एक ऐसा ही वंशाभिधान सूचक शब्द है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सुल्तान या बादशाह के लिए 'आलम' या 'आलमसाहि' उपाधि के प्रयोग की एक व्यापक परम्परा रही है। इस शब्द के अर्थ पर व्याख्या-खण्ड में शब्दार्थ-विवेचन के अन्तर्गत हमने सविस्तार प्रकाश डाला है। जैसाकि हमने आगे बताया है, 'आलम' या 'आलमसाहि' वस्तुतः सुल्तान या बादशाह के लिए प्रयुक्त एक सामान्य उपाधि है, जिसका डिंगल-काव्यों में प्रचुर प्रयोग हुआ है। यह व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं है। बादशाह प्रायः अपने गौरव-ज्ञापनार्थ या प्रभुत्व-सूचनार्थ यह उपाधि धारण कर लिया करते थे। अतः उन्हें इस उपाधि से सम्बोधित किए जाने की एक परिपाटी-सी चल पड़ी। यही कारण है कि डिंगल-काव्यों में बादशाह या सुल्तान के लिए 'आलमसाह' शब्द सामान्य रूप से व्यवहृत हुआ है (आलमसाह—संसार का स्वामी), जिसके प्रयोग के उदाहरण हमने शब्दार्थ-विवेचन के अन्तर्गत यथाप्रसंग आगे दिए हैं, जिनसे इसकी अर्थगत प्रामाणिकता निर्भ्रान्त रूप से सिद्ध होजाती है। यहाँ इस आशय के एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

बादशाह जहाँगीर को एक डिंगल-गीत में 'साह आलम' कहकर सम्बोधित किया गया है—

> **साह आलम मूकै सहि जादो,**[1]
> **रायजादो थाप लियो राण।**

'छंद राउ जइतसी रउ' में हुमायू के भाई कामरान के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है—

> **खेतसी सामहा……खान**[2]
> **परठिया साहि आलमि प्रधान।**

---

1. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 59, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
2. छंद राउ जइतसी रउ (163), पृ० 38, सं० डॉ० टैसीटरी।

कामरान तो दिल्ली का बादशाह नहीं था, फिर भी उसके लिए 'साहि आलम' के प्रयोग से यह स्पष्ट होजाता है कि यह एक महज औपचारिक एवं प्रभुत्वसूचक उपाधि मात्र थी। इसी भाँति, बादशाह अलाउद्दीन के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है—

आलिमसाहि करइ आलोच, लसकर माहि हूउ संकोच।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भलीभाँति स्पष्ट होजाएगा कि वचनिकाकार ने भी होशंग गोरी के लिए ही 'आलम' एवं 'साहि आलम' शब्दों का प्रयोग किया है, जैसीकि सुल्तान या बादशाह के लिए उपाधिसूचक अर्थ में इसके प्रयोग की एक सामान्य परिपाटी थी।

यही नहीं, एक डिंगल-कवि ने तो अपने मन की मौज में भगवान् शिव के लिए भी 'आलम साह' का प्रयोग कर दिया है—

आलिमसाह पारवती ओपै, रुषमणी रांणी पासि रहै।[2]
ओ गंगसांम विराजै आछौ, देखै जिहांरा दळिद्र दहै॥

अतः इसे लेकर 'वचनिका' पर लगाए गए अनैतिहासिकता के आरोप का कोई औचित्य नहीं है। होशंगशाह की उपाधि से अपरिचय तथा डिंगल-काव्य परम्परा के संदर्भ में इन शब्दों का ठीक मर्म न समझने के कारण ही यह अर्थ-भ्रांति हुई है।

इसी भाँति, डॉ० टैसीटरी एवं डॉ० मोतीलाल मेनारिया का यह आरोप भी कि शिवदास द्वारा होशंग की सेना में अचलदास के विरुद्ध अनेक हिन्दू राजाओं के सम्मिलित होने का उल्लेख अनैतिहासिक है—तथ्याश्रित नहीं है, जिसकी चर्चा हम यथा प्रसंग कर चुके हैं तथा 'वचनिका के ऐतिहासिक विवेचन' के अन्तर्गत आगे करेंगे।

12. वचनिका का कथासार—

'वचनिका' के साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्व का विवेचन करने से पहले 'वचनिका' का कथासार दे देना समीचीन होगा ताकि कृति के मर्म को हृदयंगम करने में सुगमता हो।

---

1. गोरा-बादिल-चरित्र, पृ० 27, कवि हेमरतन, सं० मुनि श्री जिनविजयजी।
2. पीरदान लालस-ग्रन्थावली, पृ० 103, सं० अगरचन्द नाहटा।

कथासार—

प्रारम्भ में कवि काव्य-परम्परानुसार मंगलाचरण में महिषासुरमर्दिनी देवी तथा वीणापाणि शारदा की स्तुति करता है ताकि वह अपने चरित्रनायक वीर अचलदास की गौरव-गाथा को काव्यबद्ध कर सके। अचलदास जैसे शूरवीर को शिवदास जैसा प्रतिभाशाली कवि मिला, इसे कवि सोने में सुगंध मानता है।

ऐसे वीर अचलदास पर माँडू (मालवा) का सुल्तान होशंगशाह (अलपखाँ गोरी) अपने विशाल सैन्यदल के साथ चढ़ आया। उसके प्रचण्ड प्रताप के आगे सब हिन्दू नरेश नमित होगए। घर-घर में हा-हाकार मच गया। चतुर्दिक बड़े-बड़े गढ़पतियों में हलचल मच गई। उस विशाल यावनी सेना के पदाघात से पृथ्वी कम्पित होगई तथा उससे उड़ी धूल के कारण आकाश धुँधला होगया। यों, वह गोरी राजा, बानवे-लाख मालव-वासियों का चक्रवर्ती सम्राट, तिरानवे लाख मालवा की सेना ले अचलदास पर चढ़ आया। उसकी सेना में उसमानखाँ, फतेहखाँ, गजनीखाँ, हैबतखाँ जैसे उद्‌भट योद्धा तथा मलिक मुगीस जैसे खान थे। हिन्दू राजाओं में नरसिंह जैसा प्रतापी व रणशूर नरेश था, जिसने सिंह के समान कभी गलबंधन स्वीकार नहीं किया। और भी अनेक नगर-प्रांतों के हिन्दू नरेश उसमें सम्मिलित थे।

होशंग की इस विशाल वाहिनी को देख लोग सोचने लगे—आज किस पर यह विपद् टूट पड़ी है? कौन बादशाह का कोपभाजन हुआ है? आज सातल, सोम, हमीर और कान्हड़दे भी नहीं हैं। फिर यह सैन्य अभियान किस पर हुआ है? यह सुल्तान तो दूसरा अलाउद्दीन है। ऐसे इस प्रचण्ड सुल्तान से टक्कर लेने की सामर्थ्य सिवा राजा अचलेश्वर के और किसमें है? निश्चय ही राजा अचलेश्वर धन्य है, जिसने बादशाह के विरुद्ध खड्ग धारण किया, अपना कुल-धर्म नहीं छोड़ा। यह सैन्यदल आज उसी पर टूट पड़ा है।

सुल्तान की उस विशाल सेना में हाथी, घोड़ों और पदातिकों का कोई पार नहीं है। उस सैन्यअभियान से वन-प्रान्तरों का घास निश्शेष होगया, जलाशयों का जल सूख गया। दुर्गम पर्वतों पर मार्ग बनने से वे सपाट होगए तथा गर्द उड़ने से सूर्य ओझल होगया। यों बादशाह का वह अपार सैन्य-दल सवेग बढ़ता हुआ चार कोस की सीमा में ही आ पहुँचा। युद्ध के जुझारू ढोल बजने लगे तथा बादशाही सेना के डेरे-तम्बू दिखाई पड़ने लगे।

सुल्तान होशंग की उस विशाल सेना को निपट समीप ही पड़ाव डाले देख दुर्ग के सब बाल-वृद्ध भयभीत हुए गढ़पति के पास आ एकत्र हुए। अचलदास ने उन्हें वीरोचित प्रबोधन देते हुए कहा कि "सब वीर-व्रत धारण करो। हम जीते जी दुर्ग नहीं सौंपेंगे।"

इस बीच गोरी सुल्तान ने अचलदास को कहलाया—"यदि बैर बाँधना चाहते हो तो युद्ध करो अन्यथा गढ़ छोड़कर (अपने श्वसुर) राणा मोकल के पास चले जाओ। या फिर तँवरों या कछवाहों के यहाँ चले जाओ परन्तु मुझसे भिड़कर अपना सर्वनाश न करो।"

अचलदास के सामन्तों ने उसे (संधि की) समयोचित रणनीति का अवलम्बन करने हेतु बहुत समझाया परन्तु मानधनी अचलदास टस से मस नहीं हुआ। उसने कहा—"आज तक कोई चौहान जीते जी दुर्ग शत्रु को सौंप कर नहीं गया। चाहे सिंधु (या काली सिंध) अपनी मर्यादा छोड़ दे, किन्तु खीची कदापि अपने कुल-धर्म से च्युत नहीं होगा"। अचलदास की सभी रानियों ने अपने स्वामी के इस वीरोचित संकल्प का स्वागत किया। राणा मोकल की पुत्री पुष्पावती ने कहा—"स्वामी! जब आप शत्रु को धारासार बाणवर्षा में प्रवेश करेंगे तो मैं भी (जौहर कर) अपने तीनों कुलों को उज्ज्वल करूँगी।" कछवाही रानी बोली—"नाथ! जब दुर्ग पर शत्रु की प्रचण्ड बाण-वर्षा होगी तो मैं आपके आगे आकर उसे अपने सीने पर झेलूँगी।" उसकी वागुडणी एवं तँवरानी रानी ने भी ऐसे ही उद्‌बोधक वचन कहे। गढपति के इस वीरोचित संकल्प का उसके छत्तीसवंशीय सुभट-सामन्तों तथा प्रजाजनों ने भी मुक्तकंठ से समर्थन किया।

अब युद्ध की तैयारी होने लगी। गाँव-गाँव से उसके गर्वीले, मरणोद्यत एवं रणशूर सामन्त युद्ध के लिए आ एकत्र हुए। तदनन्तर उन सुभट-सामन्तों ने अपने स्वामी से भेंट कर युद्ध-पूर्व की मंत्रणा की। इनमें सभी छत्तीय वंशीय क्षत्रिय—कछवाहा, हाडा, सोलंकी, राठौड़, डोड आदि मौजूद थे तथा अन्य वर्गों—ब्राह्मणों, वणिकों, चारणों, भाटों आदि के योद्धा भी सम्मिलित थे।

इधर यह वीर युद्ध की तैयारी कर रहे थे, उधर दुर्ग की चालीस सहस्र ललनाएँ 'जौहर' के लिए सज्जित होरही थीं। कैसी थीं वे? भोली-भाली बालाएँ, किशोरियाँ, षोडशियाँ, प्रौढ़ाएँ और वृद्धाएँ। रानियाँ और रवतानियाँ—

सभी अपने सतीत्व की रक्षार्थ अग्नि स्नान करने हेतु लालायित थीं। इनमें राजमाता सफलादे (भोज की सहधर्मिणी, अचलदास की माँ), कुलवधू पुष्पावती—राणा मोकल की सुपुत्री तथा अचलदास की पुत्री (या बहिन) बाई ऊदी भी सम्मिलित थीं।

अहा ! उस समय के गढ़ गागरोण की शोभा का क्या कहना ! उसकी छटा अवर्णनीय थी। नाना ध्वजा-पताकाओं से सज्जित तथा स्वर्ण-कलशों से मंडित वह राजप्रासाद देखने ही योग्य था। उसमें चँवरों से व्यजित सिंहासनारूढ़ राजा अचलदास सातल, सोम और हमीर-सा शोभायमान हो रहा था।

उधर दुर्ग के बाहर लक्षाधिक पदातिकों, मदोन्मत्त हाथियों तथा सहस्रों की संख्या में अश्वसेना से युक्त सुल्तान गोरी ने चतुर्दिक अभेद्य व्यूह-रचना कर रखी थी। वह सुल्तान बलवाना के कंधमूल का उच्छेदन करने वाला, सबलों का मान-मर्दक और निर्बलों का सहायक था। वह रणाङ्गण में विजय-स्तंभ-सा अविचल था। अचूक धनुर्धरों तथा पदातिकों से रक्षित उसकी गजसेना पद-पद, पोलि-पोलि पर डटी हुई थी। रणवाद्यों के भीषण निनाद से धरती-आकाश गुंजित होरहे थे। इधर सुल्तान गोरी अपने शक्तिमद में गढ़ लेने पर तुला हुआ था, उधर राजा अचलदास गढ़ की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाए था।

अब युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से भीषण बाण-वर्षा होने लगी। तलवारों से तलवारें टकराने लगीं। देखते-देखते धरती रक्त से रंजित होगई। शिर-विहीन धड़ नाचने लगे। पैरों में अन्तड़ियाँ उलझने लगीं। दिन-रात का भेद जाता रहा। नींद और भूख प्यास सब भूल गए। यों अलपखां और अचलदास की सेनाएँ भिड़ पड़ीं। दोनों ओर से भीषण संहार होरहा था किन्तु सब पद-पद पर डटे हुए थे। एक कदम भी कोई पीछे नहीं हट रहा था।

यों, दोनों सेनाओं के बीच घमासान युद्ध होते तथा परस्पर मारते-काटते महाष्टमी से दूसरी अष्टमी होगई। सर्वत्र श्मशान का-सा दृश्य उपस्थित होगया। यत्र-तत्र अस्थिपंजरों के ढेर लग गए, जिन पर गृद्धों के दल मँडराने लगे। दोनों ओर की आधी-आधी सेना नष्ट होगई। इस भंयकर मारकाट से इतना रक्त बहा कि रुधिर का प्रवाह नदी में जा मिला।

युद्ध की परिस्थिति विषम होती देख राजा अचलदास ने राजा जौणसी से पूछा—"आप सबमें सयाने, समझदार और बुजुर्ग हैं। बताइए अब करणीय क्या है ?" राजा जौणसी ने कहा—"यद्यपि हम आयु में बड़े हैं, तथापि आपके ही सेवक हैं। यह तो महाभीषण संग्राम ठन गया है। नदी का जल दूषित हो गया है। अब तो मरण-पर्व ही आया समझें।" बाला के पुत्र पाल्हणसी ने प्रस्ताव किया कि अब तो जौहर कर, वीतराग अवधूत के समान प्राणों का मोह त्याग, शत्रु-सेना पर टूट पड़ना चाहिए तथा मरते-मरते रणभूमि में रक्तपिंड दे असि-धारा से खंड-खंड होजाना चाहिए। इसी भाँति, नाथू डोड, डूँगर बागड़ो आदि ने भी अपने-अपने वीरोचित प्रस्ताव रखे। उन्होंने कहा—"ठाकुरो ! ऐसा नहीं, अब तो मरने-मारने के अटल संकल्प की सूचक शालिग्राम-मूर्ति और तुलसी-मंजरी गले में धारण कर भंयकर मारकाट मचाते हुए गोरी सुल्तान के तंबुओं पर धावा बोल देना चाहिए। इससे पद-पद पर अश्वमेध-यज्ञ का पुण्यार्जन करते हुए सूर्यमण्डल का भेदन करेंगे।"

अपने शूरवीर सामन्तों के ये वीरोचित वचन सुन अचलदास ने कहा-"भाई ! यह तो सब चलती बात हुई (दूरदर्शिता की नहीं)। यदि मरना ही है तो यहाँ-वहाँ कैसे भी मरो। मेरे मन की बात तुमने नहीं कही (वंश-रक्षा का क्या उपाय किया जाए - इसकी)।"

इतने में जौहर का अनुष्ठान करने हेतु अचलदास की माँ सफलादे, रानी पुष्पावती, बाई ऊदी आदि सहित चालीस सहस्र ललनाओं का समुदाय वहाँ आ उपस्थित हुआ। उन्होंने कहा–"दादुर की भाँति स्वार्थी पुरुष केवल अपने ही पुरुषार्थ की रट लगाते हैं। परन्तु वीरता और त्याग में आप हमें जीत नहीं सकते। शिव और शक्ति में शक्ति जीती है, शिव हारे हैं। भला, इसमें क्या बड़ाई है कि हम मरों के पीछे मरें ? हमारा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हम पुरुषों के जीते जी ही जौहर कर अपने तीनों कुलों को उज्ज्वल करें। आपका तप-तेज और पराक्रम देखते हमें दस-बीस दिन होगए हैं। अब आप हमारा तप-तेज और पराक्रम देखें।"

रानियों के ये वीरोद्गार सुन राजा ने कहा–"अरे ! तुम बावली हो; तुम्हारे इस अद्भुत दृश्य को तो तेंतीस करोड़ देवताओं सहित स्वयं जगत-स्रष्टा भगवान् देखेंगे। परन्तु मैं इस समय चिन्ताग्रस्त हूँ। क्या कहूँ ? तुमने जौहर

की ठान ही ली है तो ऐसा जौहर करो जैसा सीहोर में रोलू और रणथंभोर में राव हमीर ने किया था। उसमें जो कमी रह गई हो, उसे तुम पूरी कर दिखाओ। परन्तु मैं तो चिन्ता के कारण खिन्न हूँ। तुम इसका अहित न मानो।"

राजा के ये वचन सुन रानियाँ हँस पड़ी। बोली—"आप मरने चले हैं, फिर कैसी चिन्ता? मंगल-अमंगल का क्या विचार?"

राजा ने किसी पुराने चारण द्वारा कथित दूहा सुनाते हुए कहा—"चिन्ता यही है कि एक पृष्ठरक्षक के बिना गागरोण सरीखा राजदुर्ग फूस के झोंपड़े की तरह नष्ट होजाएगा। अतः वंश-रक्षा के लिए यदि कोई योग्य और समर्थ पुरुष जीवित रह जाए तो यह बच जाए। मेरा दुर्ग से पलायन करना प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। चाँदा से गजसेना का घेरा टूट नहीं पाएगा। धीरा था, सो राणा मोकल के पास गया है। न जाने वह वहीं रह गया है या लौटते हुए किसी ने बीच में ही मार गिराया है। धीरा यदि वहाँ बच जाए और यहाँ पाल्हणसी समझाने से समझ जाए (वंश-रक्षार्थ पलायन करने हेतु सहमत हो जाए) तो हे भाई! मुझे थोड़ी सान्त्वना मिले, अन्यथा मेरा तो धैर्य जाता रहा।"

राजा के ये वचन सुन रनिवास की रानियाँ उदास होगईं। सबने पाल्हणसी को समझाया परन्तु मूर्ख पाल्हणसी समझाए समझता नहीं। उन्होंने कहा—"पाल्हणसी रे! कणों में सुकण ही रखा जाता है। अच्छी फसल के लिए अच्छा ही बीज बोया जाता है। तू पीछे रहेगा तो गढ़ का पुनरुद्धार होगा। परन्तु तू तो कायर और मन का कच्चा निकला। तू गढ़ के पुनरुद्धार का दायित्व उठाना नहीं चाहता इसीलिए तू दुर्ग से न निकलने पर अड़ा हुआ है।"

सबके यों प्रबोधन देने पर आखिर पाल्हणसी गढ़ से बाहर निकलने हेतु सहमत होगया। उसने बड़े-बूढ़े लोगों से अपने करणीय-कर्त्तव्य की बात सुनी। राजा ने अपने आँसू पोंछ कर उसे गले लगाया तथा आशीर्वाद देते हुए विदा दी—"बेटा! विजयस्तंभ बागड़ी के समान इस अखिल भूमण्डल पर अपने प्रभुत्व के तेज से शासन करना। यह गढ़ शत्रु से पुनः अधिकृत करना। सुल्तान से हमारे बैर का बदला लेना।"

इस प्रकार पाल्हणसी (अचलदासोत) तो भावी उत्तरदायित्व निभाने हेतु पृथ्वी पर रह गया, शेष सबने स्वर्ग की तैयारी की। उस अवसर पर राजा शोक-विह्वल हो रो पड़ा। उधर उसका पृष्ठरक्षक पाल्हणसी बालावत भी शत्रु की गजसेना का दलन करता हुआ तथा अपने मुष्टि-प्रहार से पाखरों सहित उनका हनन-मर्दन करता हुआ घेरा तोड़ कर निकल गया।

कवि कहता है कि उस दुरन्त और प्रचण्ड पाल्हणसी को रोकने की सामर्थ्य भला किसमें थी? वज्र को कौन झेल सकता है? पड़ते आकाश को भुजाओं पर कौन उठा सकता है? समुद्र को कौन लाँघ सकता है? ऐसे ही, निष्क्रमण करते पाल्हणसी (बालावत) को कौन रोक सकता है?

पाल्हणसी (अचलदासोत) के पलायन करते ही अब पिछली चिन्ता जाती रही, अगली चिन्ता लग गई।

तदनन्तर राजा ने आदेश दिया कि अब जौहर की तैयारी करो। कल प्रातः ही हमें युद्ध में वीरगति प्राप्त कर बैकुण्ठ के लिए प्रस्थान करना है। कल हम ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखलाएँगे कि सभी छत्तीसवंशीय क्षत्रियों सहित हमारे सगे-सम्बन्धी—डूँगरसी, राणा मोकल, रावल गेपा तथा वीरजी आदि हमारी वीरता का बखान करेंगे।

यों कह राजा अचलदास अपने घर-बार से विरक्त हो वहाँ आया, जहाँ जौहर के लिए अनल-कुण्ड प्रज्ज्वलित हो रहा था। कवि कहता है कि राजा अचलदास की रानियों ने जैसा जौहर किया, उसके आगे पिछले सारे जौहर फीके पड़ गए। उस समय सुन्दर वस्त्राभूषणों से सज्जित एवं उल्लसित उन ललनाओं को देख ऐसा लगता था मानों आज किसी विवाहोत्सव के उपलक्ष्य में खींची राजकुल की वधुएँ वहाँ एकत्र हुई हों। अपने शूरवीर पतियों का मन ही मन स्मरण करती हुई, मंद-मस्त गति से अग्नि-कुण्ड में प्रवेश करती उन सतियों के मुखमण्डल दिव्य तेज से दमक रहे थे, जैसे सूर्योदय होने पर कमल खिल उठे हों। वे चन्द्रमुखी ललनाएँ मुख से 'शिव-शिव' का जप करती हुई अग्नि में प्रवेश कर रही थीं। सबसे पहले अचलदास की पटरानी वेग से चिता पर जा चढ़ी। यों, वे सभी ललनाएँ अहमहमिका से 'हरि-हरि' एवं 'विष्णु-विष्णु' का उच्चार करती हुई अनल-कुण्ड में प्रविष्ट होगईं। उस समय चतुर्दिक गाँवों के अपार लोकसमुदाय सहित तेंतीस करोड़ देवता एवं सूर्य उस अद्भुत दृश्य को देख रहे थे।

तदनन्तर वीर अचलदास अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करने हेतु अपने बंधु-बाँधवों सहित लौह बजाता हुआ गढ़ से तलहटी में उतर आया। अब तो मरणांतक युद्ध छिड़ गया। वे शूरवीर घुटनों तक रक्त से लथपथ होरहे थे। पाँचा के वीर वंशज ने अनेक गजों को अपने प्रचण्ड मुष्टि-प्रहार से धराशायी कर दिया। यद्यपि उसकी अंतड़ियाँ पैरों में उलझ रही थीं, तथापि इसी अवस्था में लड़ता हुआ वह काम आया। वीर धीरा ने भी अन्तिम क्षण तक अपने एक-एक शस्त्र से लड़ते हुए धारातीर्थ में स्नान किया। अन्त में, अनेक यवनों का संहार कर स्वयं राजा अचलदास ने भी वीरगति प्राप्त की। परन्तु जीते जी उस जायलराय ने अपना दुर्ग शत्रु को नहीं सौंपा। भोज के उस वीर पुत्र अचलदास के मरने पर ही गढ़ सुल्तान गोरी के हाथ लगा।

यों, उस मानधनी अचलदास ने सातल, सोम और हमीर के समान जौहर कर अपने कुलमार्ग को उज्ज्वल कर दिया। इस प्रकार उस शूराग्रणी अचलदास ने अपने अद्भुत शौर्य और पराक्रम से इस संसार में अपना नाम तथा स्वर्ग में अपनी आत्मा—दोनों को अमर कर दिया।

संक्षेप में, यही 'वचनिका' की कथा है।

13. वचनिका का साहित्यिक महत्व

अचलदास खीची-री-वचनिका मूलत: एक काव्यकृति है, डिंगल का एक प्राचीन ऐतिहासिक प्रबन्ध, जिसका चरित्रनायक एवं तत्सम्बद्ध आख्यान इतिहास-सम्मत है। तथापि, कृति का मूल स्वरूप साहित्यिक ही है। इसीलिए कवि मंगलाचरण में वाणी की अधिष्ठात्री देवी शारदा का स्तवन करता है ताकि वह अचलदास की गौरवगाथा को अशेष वाग्वैदग्ध्य के साथ काव्यबद्ध कर सके। यहाँ हम 'वचनिका' के साहित्य-सौष्ठव पर प्रकाश डालेंगे।

वचनिका के साहित्यिक मूल्यांकन के अन्तर्गत इसकी कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, रस, वर्णन-कौशल, भाषा एवं छंद-अलंकारादि का विवेचन उद्दिष्ट है। सबसे पहले कथावस्तु को लें।

कथावस्तु—

जैसाकि कह आए हैं, वचनिका गद्य-पद्य-मिश्रित वह काव्य-विधा है, जिसमें चरित्रनायक की किसी युद्ध विशेष में प्रदर्शित वीरता, शौर्य या पराक्रम का गुणगान किया जाता है। अचलदास खीची-री-वचनिका में गागरोण के

शासक अचलदास के अपने दुर्ग की रक्षार्थ वीरतापूर्वक लड़ते हुए उत्सर्ग होने का आख्यान वर्णित है। इस दृष्टि से 'वचनिका' एक प्रबन्ध-काव्य है। प्रबन्ध के दो भेदों—महाकाव्य एवं खण्डकाव्य में हम इसे खण्डकाव्य की कोटि में रखेंगे क्योंकि इसमें अचलदास के जीवन की केवल एक घटना—होशंग और उस के बीच हुए भीषण एवं निर्णायक युद्ध का ही वर्णन है। उसकी रानियों द्वारा किया गया जौहर तो इसी युद्ध की एक अनिवार्य परिणति है। अतः स्वाभाविक है कि कवि की दृष्टि इतर वर्णन-प्रसंगों पर न जाकर केवल उक्त युद्ध-व्यापार पर ही केन्द्रित रही है। फलतः 'वचनिका' की कथा में एक लक्ष्यगत एकोन्मुखता है, जिसके फलस्वरूप यह उस वर्णन-बहुलता से मुक्त है, जो इस कोटि की परवर्ती डिंगल-रचनाओं—'वचनिका: राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत-री', 'राजरूपक', 'सूरजप्रकास' आदि में देखने में आती है।

लगता है, अपने चरित्रनायक का वह अपूर्व पराक्रम, उसका स्वाभिमान–प्रेरित आत्म-बलिदान तथा उसकी रानियों का वह अनूठा जौहर-अनुष्ठान उसकी चेतना को कुछ ऐसा अभिभूत किए रहता है कि अवांतर वर्णनों पर उसकी दृष्टि जाती ही नहीं। वह तो मात्र उस युद्ध-व्यापार को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करना चाहता है, जिसमें अनम्र एवं मानधनी अचलदास ने एक मदगर्वित एवं महत्वाकांक्षी शत्रु के सामने नतशिर हो आत्मसंमर्पण करने की अपेक्षा तिल-तिल असिधारा से खंडित हो मृत्यु का आलिंगन करना स्वीकार किया तथा उसकी कुलांगनाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि-शिखाओं से अपने सुहाग का अन्तिम शृंगार किया! इस रोमांचक घटना के होते भला कवि को अन्य किस प्रासंगिक घटना की अपेक्षा होती तथा उसके ओजस्वी वर्णन से बढ़कर उसकी वाणी का वर्चस्व अन्य किस कथोपजीव्य का आधार खोजता? इसीलिए 'वचनिका' की कथा में न कहीं बन्ध-शैथिल्य है, न वर्णन-बोझिलता। तद्विपरीत, वह तो आरम्भ से अन्त तक किसी लघु शलाका पर जलती फूलझड़ी के समान वीर अचलदास के शौर्य और स्वाभिमान के स्फुलिंग विकीर्ण करती हुई तथा उसकी अक्षय कीर्ति को प्रलोकित करती हुई उसके आत्मोत्सर्ग के अन्तिम उद्भास के साथ ही पर्यवसित होगई है—

"संसारि नाव आतम सरगि, 'अचल' बेवि कीधा अचल।"

चरित्र-चित्रण—

जैसाकि रचना के नामकरण से ही स्पष्ट है, 'वचनिका' का चरित्रनायक वीर अचलदास खीची है, जो शौर्य, स्वाभिमान, वीर-दर्प, प्रजापालन, धर्मरक्षण

आदि क्षत्रियोचित गुणों सें विभूषित था। वह वीराग्रणी, शत्रुओं एवं आक्रांताओं के लिए वज्र-कपाट था। कवि उसकें इन्हीं चारित्रिक गुणों पर मुग्ध हो उसकी प्रशंसा करते हुए कहता है—

"अचलेसर तउ किसउ ? किरि उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्छिम कउ भड़-किमाड़। आइन्या अजइपाल। अहंकारि रावण। दूसरउ धारू। तीसरउ सींघण। छइ दरसण, छयाणवइ पाखंड कउ आधार। बालउ चकरवति। धन-धन हो राजा अचलेसर। थारउ जियउ, जिणि हइ पातिसाह सऊँ खंडउ लियउ।"[1]

अचलदास अपने नामानुरूप अपने कुलधर्म के पालन में अचल था। उसका व्यक्तित्व अप्रमेय शौर्य, अदम्य स्वाभिमान एवं उत्कट स्वातंत्र्य-प्रेम का जीवन्त प्रतिरूप है। होशंग के सदल-बल आक्रमण की खबर सुन वह किंचित् मात्र भी विचलित नहीं होता एवं प्रजाजनों को आश्वस्त करते हुए जीते जी शत्रु को दुर्ग न सौंपने के अपने अटल संकल्प का यों दृढ़कंठ उद्घोष करता है—

"नमे न खींची नीम, गढपति गढ मेल्ही करी।[2]
उवह हुवै उपराविठउ, सींध जाइ तजि सीम॥"

और वस्तुतः अचलदास ने अपनी इस प्रतिज्ञा को अक्षरशः चरितार्थ कर दिखाया। उसने प्राण रहते अपना दुर्ग शत्रु को नहीं सौपा। इस सम्बन्ध में, हमें स्मरण रखना चाहिए कि युद्ध उस काल में राजाओं के जीवन का एक अभिन्न, अनिवार्य एवं अपरिहार्य अंग था। फलतः हाथी, घोड़ों, सेना आदि अन्यान्य युद्ध-साधनों के साथ दुर्गों का भी उस युग में अत्यधिक महत्व था क्योंकि जय-पराजय बहुत कुछ इन्हीं पर अवलम्बित थी। दुर्ग की रक्षा राज्य के अस्तित्व से जुड़ी हुई थी एवं दुर्ग का पतन राज्य के विनाश का ही पर्याय था। इसीलिए दुर्ग की रक्षार्थ प्राणों की बाजी लगादी जाती थी। ये दुर्ग मध्ययुगीन क्षत्रिय नरेशों के लिए शक्ति, स्वातंत्र्य एवं स्वाभिमान के प्रतीक थे। यही कारण है कि दुर्ग की रक्षा हेतु वे तिल-तिल कट मरते थे। इन मध्ययुगीन क्षत्रिय नरेशों द्वारा अपने दुर्गों की रक्षा के लिए प्रदर्शित अप्रतिम वीरता पर पाश्चात्य इतिहासकार भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सके हैं। उदाहरणतः

---

1. वचनिका : (9) वात
2. वचनिका, 14(2)

फिट्जक्लेरेंस ने भारतीय नरेशों की एतदर्थ मुक्तकंठ प्रशंसा करते हुए लिखा है—

"The Indians in the defence of their forts behave with the greatest gallantary and courage and in this differ from the Europeans, who often fancy that when a practicable breach has been made in their walls, surrender becomes justifiable.

But here, all feel desirous of fighting man to man, and look upon the contest in the breach as the fittest occasion for meeting their enemies with sword and dagger."[1]

राव हमीर चौहान ने रणथम्भोर में, राव कान्हडदे सोनगरा ने जालोर में, सातल-सोम ने सिवाणा में तथा वीर जयमल और पत्ता ने चित्तौड़ में इसी गौरवमयी परम्परा का निर्वाह किया था। हठ के धनी राव हमीर ने गढ़ रणथम्भोर को संबोधन करते हुए जो वीरोचित उद्गार व्यक्त किए थे—

"तइ गढ़ पूठि ज दीध मूँ, हऊँ तुझ पूठि न देसि।"[2]

उनकी प्रतिध्वनि हमें गढ गागरोण को सम्बोधित अचलदास के इन वीर-वचनों में भी सुनाई देती है—

"काय धूजै गढ़ गागुरण, सिर धूजंतै सेस।[3]
अचल चलेवा आखड़ी, माथै उदक महेस।।"

फलतः वह होशंग द्वारा दूत के साथ भेजे गए दुर्ग-समर्पण के प्रस्ताव को ठुकरा देता है तथा अपने शूरवीर एवं स्वामिभक्त सामंतों से मंत्रणा कर युद्ध की तैयारी करता है। उसकी वीर रानियाँ भी उसे युद्धार्थ प्रोत्साहित करती हैं। कवि ने अचलदास एवं उसकी रानियों के चरित्र में इस वीरोचित उत्साह का अत्यन्त प्रभविष्णु चित्रण किया है, जो किसी भी स्थिति में झुकना नहीं जानता। यह उत्साह ही वीरत्व का मूल है, जो वीरों को अपने स्वातंत्र्य और

1. Fitzclarences' Journal Quoted By William Irvine. The Army Of The Indian Moghuls; Page 273.
2. हम्मीरायण : 241, सं० भंवरलाल नाहटा।
3. वचनिका : पाठान्तर 21 (वात)

स्वाभिमान की रक्षा के लिए उत्सर्ग होकर अक्षय कीर्ति का भागी होने की प्रेरणा देता है। यह कीर्ति ही वीरों की चरम प्राप्य एवं परम काम्य है। जैसाकि पृथ्वीराजरासो के रचयिता चंद ने कहा है—इस कीर्ति के लिए ही भीष्म ने मृत्यु की कामना की, दधीचि ने अस्थिदान दिया, दुर्योधन ने हठ ठाना, राम ने वनवास स्वीकार किया तथा राजा दिलीप, गौ के बदले सिंह को अपना मांस देने को उद्यत हुए—

"जा कित्ती कारनह, अत मंग्यो भीषम नर।[1]
जा कित्ती कारनह, अस्थि दद्धीच देव बर।
जा कित्ती कारनह, देव दुर्योधन मानी।
जा कित्ती कारनह, राम वनवास प्रमानी।

कारन्न कित्ती दिलीप नृप, सिंघ मंस गोदान दिय।
मम मुक्कि कित्त हथ्थह रतन, सत्त बरख जीवै न जिय।।

इसी प्रकार, राव हमीर चौहान भी अलाउद्दीन के दूत मोल्हा भाट द्वारा यह पूछे जाने पर कि हे राजा! बता, कीर्ति और लक्ष्मी, इन दोनों में तू किसे वरना चाहता है, एक क्षण भी विलम्ब किए बिना उत्तर देता है—

"कीरति मोल्हा! वरि जि मइ, लाछी तू ले जाइ।"[2]

ठीक इसी भाँति, मानधनी अचलदास भी अक्षय कीर्ति की ही कामना करता है :—

"वड पह मूझ वखाणिस्यै, सुणियां वंस छतीस।"[3]

कवि उसके इस अनम्र व्यक्तित्व एवं साहस की मुग्ध-भाव से प्रशंसा करते हुए कहता है—

"पिण धन-धन हो राजा अचलेस्वर। थारउ
जियउ जिण पातिसाह सूं खांडउ लियउ। जिण
पातसाहि आयां सांतरि सत छांडउ नहीं, खत्र खांडइ
नहीं; दीण न भाखइ, पगार लंघित न होयइ। ते राजा
अचलेसर सारिखा अचल नइ अचलेस ही होयइ।"[4]

---

1. पृथ्वीराजरासो : सं० कविराव मोहनसिंह।
2. हम्मीरायण : पृ० 28, सं० भँवरलाल नाहटा।
3. वचनिका : 26 (5)
4. वचनिका, 9—वात;

यहाँ हमें तनिक गहराई से इन मध्ययुगीन वीरों के चरित्र का मूल्यांकन करना चाहिए। आज जब धन और पद के लिए बिकने के एक से बढ़कर एक कुत्सित कीर्तिमान देखने में आ रहे हैं तथा सत्तालोलुपता की अन्ध प्रतिस्पर्द्धा में उच्चादर्शों की प्रतिपल बलि चढ़ाई जा रही है, राव हमीर एवं अचलदास प्रभृति वीरों का वह त्याग अपने आप में कितना अनूठा और गौरवमय प्रतीत होता है, जिन्होंने मात्र जीवनमूल्यों के निर्वाह और रक्षार्थ अपनी राज्यलक्ष्मी को सदा-सदा के लिए ठुकरा दिया! वह रुष्ट राज्यलक्ष्मी आज इन दुर्गों के भग्नावशेषों के रूप में बिखरी पड़ी है, जिनका कण-कण ही तीर्थ-सा पवित्र है। उन पर चरण धरते हुए भी हम सहम जाते हैं। एक पुरातत्त्ववेत्ता हमारे इन खण्डहरों की इसी पावन विभूति को देख भावविव्हल हो कह उठा था—

"इन भग्नावशेषों के ढेर के बीच में खड़े होकर किसका मन भारी (दुःखी) न हो जायगा? इन गहरे हरे पत्थरों में, जिन पर तुम चल रहे हो, उन टूटी-फूटी चट्टानों के टुकड़ों में, जिन पर घनी जंगली बेलें फैल गई हैं, और जहाँ कभी झण्डा फहराया करता था, कितने गौरवपूर्ण इतिहास छुपे पड़े हैं? ये अनावृत छत-विहीन-प्रासाद, जिनमें से आज हम विनीत किन्तु आशापूर्ण होकर निकलते हैं, हमारी विचारशील दृष्टि के लिए कितने उत्कृष्ट विषय एवं विचारों के लिए कितने पवित्र आधार उपस्थित कर देते हैं?"[1]

कौन अनुमान कर सकता है कि इन भग्नावशेषों में कभी कितना गौरव, कितना वैभव विलसता था?

रणथम्भोर और गागरोण का वह विगत वैभव फिर कभी नहीं लौटा! अतीत के वे सुदिन अब ये दुर्ग फिर कभी नहीं देखेंगे परन्तु इनके ध्वस्त खण्डहरों में जीवन के शाश्वत मूल्यों का जो इतिहास बिखरा पड़ा है, वह उन वीरों की कीर्ति को सदा अक्षुण्ण रखेगा, जिसके लिए वे हँसते-हँसते उत्सर्ग होगए थे। अचलदास का चरित्र जीवन के इन्हीं उदात्त मूल्यों से प्रेरित वीरत्व का ज्वलन्त प्रतीक है। अपने स्वत्व, स्वाभिमान, स्वातंत्र्य एवं सम्मान आदि उच्च जीवनादर्शों के लिए सर्वस्व समर्पण के इसी संदर्भ में हमें उसके चरित्र का मूल्यांकन करना चाहिए।

---

1. पश्चिमी भारत की यात्रा : कर्नल टॉड, पृ० 97-98, अनु० पं० गोपालनारायण बहुरा।

इस संबंध में हमें, धर्म और संस्कृति की रक्षार्थ मध्ययुगीन राजस्थान के इन राजपूत राजाओं द्वारा किए गए अनुपम त्याग और बलिदान के लिए उनका अतिशय कृतज्ञ होना चाहिए, जिनके एतद्विषयक अपूर्व योगदान का मूल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध विद्वान् एवं पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी ने सर्वथा उपयुक्त ही कहा है—

"सारा भारत जब निःसत्व और निवीर्य होकर अपनी अस्मत्ता खो बैठा था और उन विधर्मी और घातक बादशाहों के क्रूर दमन के नीचे दलित होकर दुःखों से कराह रहा था, तब राजस्थान के ये मुट्ठी भर राजपूत-राज्य दिन-रात इन विधर्मी दुष्टों के कुकृत्यों का सामना करते रहे थे और उन्होंने अपने देश और धर्म की रक्षा करते हुए भारत के अस्तित्व को बचाए रखा था।"[1]

ठीक ऐसा ही भाव कर्नल टॉड ने भी व्यक्त किया है—

"Rajasthan exhibits the sole example in the history of mankind, of a people withstanding every outrage barbarity can inflict, or human nature sustain, from a foe, whose religion commands annihilation, and bent to the earth, yet rising buoyant from the pressure, and making calamity a a whet stone to courage."[2]

हमारा चरित्रनायक भी धर्म और संस्कृति के रक्षक उन्हीं राजपूत राजाओं की श्रेणी में गौरवमय स्थान का अधिकारी है !

कवि, अचलदास के शौर्य-दीप्त व्यक्तित्व के बीच उसकी मानव-सुलभ संवेदनाओं का चित्रण करना भी नहीं भूला है। पाल्हणसी को वंशरक्षार्थ दुर्ग के घेरे से बाहर निकालने हेतु उसे गले लगाकर विदा देते समय धीर और वीर अचलदास की आँखें भी भर आती हैं। उसके हृदय में पितृसुलभ प्यार उमड़ पड़ता है। पिता-पुत्र के अन्तिम मिलन का यह दृश्य अतीव मार्मिक है, जिसमें वात्सल्य का ऐसा सहज एवं करुणा-भरा स्पर्श हैं, जो हमें द्रवित किए बिना नहीं रहता। अवरुद्ध कंठ से पुत्र को दिए गए इस अंतिम आशीर्वाद में उसके अन्तस की मर्मव्यथा ही फूट पड़ी है—

---

1. गोरा बादिल चरित्र : पृ० 44, सं० मुनि श्री जिनविजयजी।
2. Annals And Antiquities Of Rajasthan; Vol. I; Page 210; M. N. Pub.; New Delhi.

"वीजइ थंभ वागडी की नांई सकल ही प्रिथमी प्रतपिज्यउ। यउ गढ लीजउ। हमारउ वइर सुरिताण गौरी राजा सउं कीज्यउ।"[1]

पाल्हणसी के दुर्ग से निष्क्रमण कर जाने पर अचलदास के चिंता-बोझिल मन को थोड़ी सांत्वना मिलती है। इस बीच उसकी रानियाँ भी जौहर का अनुष्ठान कर मृत्यु का आलिंगन कर लेती हैं। अब अचलदास सब ओर से निश्चिंत हो किसी वीतराग योगेन्द्र के समान प्राणों का मोह त्याग शत्रुदल पर टूट पड़ता है एवं अगणित शत्रुओं का संहार कर वीरगति प्राप्त करता है। यद्यपि दुर्ग का पतन होगया, तथापि वीर अचलदास ने जीते-जी उस पर शत्रु का अधिकार न होने देने की अपनी प्रतिज्ञा को अक्षरश: पूरा किया। कवि के शब्दों में—

"आपण दुरंग न अप्पियउ, जीवतइ जाइल राइ।"[2]

इस प्रकार अचलदास का चरित्र एक आदर्श मध्ययुगीन क्षत्रिय नरेश का प्रतिनिधित्व करता है, जो शौर्य, साहस, स्वाभिमान एवं स्वातंत्र्य-प्रेम आदि वीरोचित गुणों की समष्टि है।

प्रासंगिक रूप से, यहाँ अचलदास के व्यक्तित्व के एक और पक्ष की चर्चा कर देना असंगत न होगा, और वह है उसका शृंगारिक (Romantic) पक्ष, जो 'लालाँ मेवाडी री बात' में अचलदास और उमा साँखली के प्रणय-प्रसंग के रूप में प्रस्फुटित हुआ है तथा जो लोक और काव्य-परम्परा दोनों से अनुमोदित है। परन्तु 'वचनिका', जो हमारी विवेचना की आधारभूत कृति है, इस पक्ष पर सर्वथा मौन है। इसका कारण भी है, क्योंकि 'वचनिका' एक वीररसमूलक रचना है, जिसमें मात्र युद्ध-घटना का वर्णन करना ही कवि का उद्दिष्ट है, जिसका अंत भी दुर्ग के पतन तथा चरित्रनायक की मृत्यु में होता है। अत: इस दुखद प्रसंग में उसके चरित्र के शृंगारिक पक्ष के चित्रण का न कहीं अवकाश है, न कोई औचित्य। तथापि, इतिहास, अनुश्रुति एवं अन्य स्रोतों के आधार पर हमें यह अविश्वसनीय नहीं लगता कि अचलदास रण-रसिक होने के साथ साथ प्रणय-रसिक भी रहा हो। कारण, मध्ययुगीन

---

1. वचनिका 21 (16)
2. वचनिका 26 (26)

क्षत्रिय नरेशों के लिए भोग और विलास भी जीवन का उतना ही अभिन्न अंग था, जितना युद्ध। हमारा चरित्रनायक भी कदाचित् इसका अपवाद नहीं था।

'वचनिका' में अचलदास के साथ जिन अन्य पात्रों का चरित्रांकन हुआ है, उनमें उसका प्रतिस्पर्द्धी होशंगशाह तथा अचलदास की रानियाँ एवं उसका पुत्र पाल्हणसी उल्लेख्य हैं। कवि ने मांडू (मालवा) के सुल्तान होशंगशाह के बल-विक्रम तथा तप-तेज का भी उतना ही ओजस्वी वर्णन किया है, जितना अचलदास का, जो कहीं-कहीं अतिरंजित भी होगया है, जैसे उसके अधीन 13 लाख मालव-सेना होना तथा उसके आतंक से चतुर्दिक पृथ्वी का भयकंपित हो जाना आदि :—

"इसी परित्या खउंदालम गौरी राजा। बाणूं लाख मालवा रउ चक्रवति। तइ रइ तेवाणूं लाख मालवा का कटकबंध।"[1]

वस्तुतः अचलदास के शौर्य और साहस की महत्ता के द्योतन हेतु शत्रु की शक्ति का उत्कर्ष बताना जरूरी था क्योंकि निर्बल शत्रु से लोहा लेने में भला क्या वीरता होती? अतः कवि ने होशंगशाह को एक दुर्दम्य, महत्वाकांक्षी एवं प्रचण्ड शक्तिशाली आक्रान्ता के रूप में चित्रित किया है। परन्तु उसका उद्देश्य तो उस शक्ति से लोहा लेने वाले अचलदास का गौरवगान करना था। अतः उसकी दृष्टि आद्यन्त अपने चरित्रनायक अचलदास पर ही केन्द्रित रही है।

इसी भाँति, 'वचनिका' में हमें अचलदास की रानियों के वीर चरित्र की भी अल्प, किन्तु ओजस्वी झलक देखने को मिल जाती है, जब पहले वे अपने स्वामी को युद्धार्थ प्रोत्साहित करती हुई स्वयं भी उसके साथ युद्ध में सहभागिनी होने का प्रस्ताव करती हैं तथा बाद में वीरों के केसरिया करने से पूर्व ही जौहर के अनुष्ठान का आग्रह करती हैं। यहाँ हमें अन्य प्रबन्ध-काव्यों की तुलना में 'वचनिका' में चित्रित रानियों के व्यक्तित्व में एक विशेषता दिखाई देती है और वह यह कि वीरतापूर्ण उद्गारों की व्यंजना में वे अपने शूरवीर स्वामी एवं सामन्तों से कुछ कम मुखर और प्रगल्भ नहीं हैं, जिसके फलस्वरूप वे अपने निर्भीक और तेजस्वी व्यक्तित्व की एक अलग पहचान कराती हैं। युद्ध में अपने पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने की यह उमंग और हौसला

---

1. वचनिका 6 (वात)

जैसा वचनिकाकार ने अचलदास की इन रानियों में दिखाया है, वैसा राजस्थानी के शायद ही किसी अन्य ऐतिहासिक प्रबन्ध में देखने को मिले।

पाल्हणसी का चरित्र दो परस्पर विरोधी कर्त्तव्यों के निर्वाह को लेकर उत्पन्न आत्मसंघर्ष का मार्मिक उदाहरण है। एक ओर उसका निजी वीरधर्म है, तो दूसरी ओर पितृनिर्देशित राजधर्म। पहले के अनुसार पाल्हणसी इस संकट की घड़ी में अपने पिता तथा अन्य कुलबान्धवों के साथ ही दुर्ग की रक्षार्थ लड़ता हुआ वीरगति प्राप्त करना चाहता है तो दूसरी ओर पिता की आज्ञा है कि वंश तथा राज्य को सर्वनाश से बचाने के लिए वह दुर्ग से निष्क्रमण करे। पाल्हणसी के लिए यह एक धर्मसंकट की स्थिति है क्योंकि युद्ध से पलायन जहाँ क्षात्रधर्म के विरुद्ध है ('युद्धे चाप्यपलायनम्')[1] वहाँ पित्राज्ञा का उल्लंघन पुत्रधर्म के साथ ही, इससे वह वंश और राज्य के प्रति अपने भावी दायित्व का निर्वाह न करने का भी दोषी होता है। ऐसी विषम स्थिति में पाल्हणसी क्या करे? वह एक वीर क्षत्रिय-पुत्र है। अतः लाख समझाने पर भी वह युद्ध से पलायन के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है परन्तु जब अचलदास उसे वंशरक्षा के दायित्व से बचने के कारण उस पर भीरुता का आरोप लगाते हुए उसे 'कायर और कापुरूष' कहता है तो वह मर्माहत हो उठता है। यह लांछन तो उसके लिए असह्य है, क्योंकि इसी कारण तो उसने पलायन के प्रस्ताव को ठुकराया है। परन्तु अब पिता द्वारा यही लांछन लगाए जाने पर उसका सर्वाङ्ग इस चुनौती को स्वीकार करने हेतु वीरोचित अमर्ष से भर उठता है एवं वह दुर्ग से निष्क्रमण करने हेतु सहमत होजाता है।

जो कार्य अनुनय, विनय, आग्रह और आदेश से न हो सका वह इस मनोवैज्ञानिक उपाय ने कर दिखाया। बोली का घाव बड़ा गहरा होता है। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को युद्ध में प्रयोजित करने हेतु कुछ ऐसा ही कड़ुवा बोल कहा था—'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।'[2] पाल्हणसी का त्याग एक प्रकार से अचलदास से भी बढ़कर है, क्योंकि उसने अपनी वैयक्तिक प्रतिष्ठा के मोल पर राज्य और वंशरक्षा का गुरुतर भार वहन किया, जिसके लिए वह निश्चय ही, अपने पिता के समान ही, अक्षय कीर्ति का भागी है।

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता 18 (43)
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2 (3)

यों, वचनिका में वर्णित सारे ही पात्र इसके चरित्रनायक से सीधे सम्बद्ध हैं और कथाविकास में सहायक होकर आए हैं। कवि ने अपने इस लघु खण्डकाव्य की सीमाओं में प्रायः सभी पात्रों के वीर चरित्र की एक झलक प्रस्तुत करदी है, जो विद्युत-कौंध के समान अपनी क्षणिक प्रभा से उन्हें प्रलोकित एवं हमें चमत्कृत कर जाती है।

रस—

'वचनिका' एक वीररस-प्रधान काव्य है। दूसरे शब्दों में, इसका अंगी रस वीर है, जिसका स्थायी भाव उत्साह है। यह वीर का वह मूल प्रेरक भाव है, जो युयुत्सा-जन्य युद्ध-व्यापार की सृष्टि करता हुआ वीररस को संपुष्ट करता है। 'वचनिका' में निरूपित रस का विवेचन करने से पहले हमें वीररस के स्वरूप तथा राजस्थानी कवियों की वीर-पूजा-भावना पर विचार कर लेना उचित होगा।

वस्तुतः वीरता मूलक उत्साह का यह भाव मानव के अस्तित्व जितना ही पुराना है। सृष्टि में जीवनधारण करने के साथ ही आदि मानव को विविध प्राकृतिक शक्तियों, हिंस्र जन्तुओं एवं अपने ही जैसे बर्बर नृवर्ग के साथ जो विकट संघर्ष करना पड़ा था, वीरता के अंकुर उसी में निहित थे। उसका उत्साह-प्रेरित कर्म-व्यापार तब केवल अपनी ही अस्तित्व-रक्षा तथा आवश्यकता पूर्ति तक सीमित था। परन्तु कालान्तर में सभ्यता के विकास के साथ-साथ उसमें ज्यों-ज्यों सामाजिक चेतना का उदय हुआ तथा उसका सांस्कृतिक बोध जागा, उसका दैहिक पुरुषार्थ भी मात्र आत्मरक्षा एवं आत्महित के क्षुद्र दायरे से ऊपर उठ समाजोन्मुख होता गया। व्यष्टि के पौरुष ने तब समष्टि या लोकहित से जुड़कर उन उच्चतर जीवन-मूल्यों को जन्म दिया, जिन्हें हम स्वातंत्र्य-प्रेम, देशभक्ति व राष्ट्रप्रेम आदि नामों से अभिहित करते हैं। यों, उच्च जीवनादर्शों से प्रेरित हो व्यक्ति का पराक्रम वीरत्व के रूप में प्रतिष्ठित हुआ तथा समाज, राष्ट्र या लोक के व्यापक हित में प्रयोजित होने के फलस्वरूप उसे एक नया गौरव और गरिमा मिली। इस प्रकार मानव की शौर्यगाथा वस्तुतः उसकी इसी अनादि जिजीविषा से प्रारम्भ हुई उसकी लोकहितमूलक विजिगीषा तक की जययात्रा का ही उज्ज्वल आलेख है, जो चिरकाल से काव्य की प्रेरणा एवं इतिहास का उपजीव्य रही है।

इन उच्चादर्शों एवं उच्चतम जीवनमूल्यों से संपृक्त होने पर वीरत्व को जो सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, उसकी अनिवार्य परिणति वीरपूजा-भावना में हुई और इसी वीर-पूजा-भावना ने वीर-काव्यों को जन्म दिया। अपने वीर चरित्रनायकों के शौर्य पर मुग्ध हो कवियों ने उनका प्रशस्ति-गान किया। हमारे ऐतिहासिक प्रबन्ध इसी वीर-पूजा-भावना के काव्यमय उद्‌गार हैं।

जीवन में उत्साह का कितना महत्त्व है, इसका निरूपण करते हुए वाल्मीकि-रामायण में कहा गया है—

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात् परं बलम्।[1]
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम्॥

जैसाकि कह आए हैं, वीरता का प्रेरक यह उत्साह सदा सात्विक कर्ममूलक होना चाहिए। अर्थात्, किसी उच्च जीवनमूल्य या जीवनादर्श के पूर्त्यर्थ होना चाहिए। तभी वह उत्साह-प्रेरित कर्म-व्यापार लोकदृष्टि में पूज्य और सम्मानित होता है। श्री बटेकृष्ण के शब्दों में—"उत्साह सदैव सात्विक पक्ष को लेकर चलने वाला भाव है और सात्विकता सदैव लोकसम्मत ही होती है।"[2] आश्रय-पक्ष में किसी उदात्त जीवनमूल्य से जुड़ा यह उत्साह ही नायक को 'लोक-नायक' की महिमा से मंडित करता है और तभी वह लोक में प्रशंसित और पूजित होता है।

हमारे ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यों के नायकों, यथा कान्हडदेप्रबन्ध के कान्हडदे, हम्मीरायण के हमीर, तथा 'वचनिका' के अचलदास आदि को हमारे इन प्रबन्धकाव्यों के रचयिताओं ने इसी प्रशंसा-मिश्रित पूज्यभाव से देखा है तथा अपने काव्यों में उनका कीर्तिगान करने को एक पवित्र कार्य समझा है। यहाँ तक कि उन्होंने उनकी यशोगाथा को काव्यबद्ध करने का तीर्थयात्रा जैसा ही माहात्म्य माना है। इसीलिए कान्हडदेप्रबन्ध का रचयिता अपने चरित्रनायक की प्रशंसा करते हुए लिखता है—

"कान्हड चरिय जिको नर भणइ[3],
एक चित्ति जिको नर सुणइ।

1. वाल्मीकि रामायण, 1 (121-122)
2. वीररस का शास्त्रीय विवेचन, पृ० 44-45, श्री बटेकृष्ण।
3. कान्हडदेप्रबंध, पृ० 233, सं० कांतिलाल ब० व्यास।

तीरथ–फल बोल्युं जेतलूं ।
पामइ पुण्य सवे तेतलूं ।।"

ठीक ऐसा ही भाव हम्मीरायण के रचयिता व्यास भाँडा ने भी व्यक्त किया है। अपने वीर चरित्रनायक राव हमीर पर रचित अपने काव्य 'हम्मीरायण' को वह रामायण और महाभारत के समकक्ष मानता हुआ इसके पठन-पाठन को गंगास्नान के समान ही पुण्य फलदायी समझता है—

"रामायण महाभारत जिसउ, हम्मीरायण तीजउ तिसउ ।[1]
पढ़ई गुणइ संभलइ पुराण, तियां पुरषां हुइ गंग सनान ।"

उपर्युक्त विवेचन से वीर रस के स्वरूप तथा इन ऐतिहासिक प्रबन्धों के मूल में निहित वीरपूजा-भावना विषयक हमारे कवियों की अवधारणा को समझने में सहायता मिलेंगी ।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि 'वचनिका' के चरित्रनायक अचलदास (आश्रय) का उत्साह सर्वथा सात्विक है क्योंकि उसने एक विधर्मी आक्रान्ता-होशंग गौरी (आलम्बन) के विरुद्ध अपने स्वत्व, स्वाभिमान, स्वधर्म एवं स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए शस्त्र धारण किया है, जो अपनी अनुचित एवं दुर्निवार महत्वाकांक्षा के वशीभूत हो इनका हनन करने हेतु चढ़ आया है। अतः अचलदास द्वारा लड़ा गया युद्ध सैद्धान्तिक स्तर पर अनीति और अत्याचार के विरुद्ध कर्त्तव्य और न्याय का ही संघर्ष है। दूसरे शब्दों में, यह जीवन के उच्चतम मूल्यों और आदर्शों से प्रेरित धर्मयुद्ध है, जिससे विमुख होना कर्त्तव्य और यश से च्युत होना ही नहीं, पाप का भी भागी होना है, जैसाकि भगवान् कृष्ण ने महाभारत-युद्ध में विरक्त हुए अर्जुन को प्रबोधित करते हुए कहा है—

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मंकीर्तिं च, हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।

'अर्थात् यदि तू इस धर्मयुद्ध को न लड़ेगा तो तू अपने कर्त्तव्य और यश से च्युत हो रहा होगा और तू पाप का भागी बनेगा ।'[2]

और फिर अचलदास पर तो यह युद्ध आरोपित है, जिसका सक्रिय प्रतिरोध न केवल नैतिक एवं वैयक्तिक हित की दृष्टि से ही, अपितु लोकहित की

---

1. हम्मीरायण, पृ० 27, सं० भँवरलाल नाहटा ।
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2 (33) डॉ० राधाकृष्णन, पृ० 118, अनु० श्री विराज ।

दृष्टि से भी सर्वथा विहित और वांछ्य है, क्योंकि उस युद्ध के साथ उसके असंख्य प्रजाजनों का भाग्य भी जुड़ा हुआ है। इसीलिए होशंग के आक्रमण का समाचार सुनते ही आर्त और भयत्रस्त प्रजाजन राजा अचलदास की शरण में आ जाते हैं, जिन्हें आश्वस्त कर वीर अचलदास अपने इस अटल संकल्प का उद्घोष करता है—हम मरने पर ही शत्रु को अपना दुर्ग सौंपेंगे ('मरण हुवइ गढ़ मेल्हियइ')।

उत्साह का यह वही सात्विक रूप है, जो जीवन के उदात्त मूल्यों एवं लोकहित से जुड़ा होने के कारण आश्रय (अचलदास) के वीरत्व को अशेष गरिमा और महिमा से मंडित कर देता है; उसे लोक में प्रशंस्य और पूज्य बना देता है। यही कारण है कि कान्हडदेप्रबन्ध और हम्मीरायण के रचयिताओं के समान कवि शिवदास भी अपने वीर चरित्रनायक के गौरवगान से गद्गद् हुआ कहता है—

सोनउ नइ सुवास। अेक अचल नै कथइ सिवदास।[1]

अचलदास में यह वीरोचित उत्साह आद्यन्त देखने में आता है। यह जानते हुए भी कि उसका मुकाबला होशंग जैसे प्रबल और दुर्दान्त शत्रु से है, जो अखिल मालवा का एकच्छत्र अधिपति है तथा जिसके अधीन अनेक हिन्दू राजाओं एवं अमीर-उमरावां से सज्जित एक विशाल सैन्यदल है, अचलदास रंचमात्र भी विचलित नहीं होता। युद्ध की दुरंत विभीषिका एवं उसके सर्वनाशी परिणाम से भलीभाँति अवगत होते हुए भी उसका स्वाभिमान, सुमेरु-सा अचल और अभेद्य बना रहता है तथा अपने अदम्य वीरोत्साह से उच्छ्वसित हो वह कहता है—

"नमै न खीची नीम, गढपति गढ मेल्ही करी।[2]
उवह हुवै उपराविठउ, सींध जाइ तजि सीम॥"

यह उत्साह ही अचलदास को अपने स्वातंत्र्य और स्वाभिमान की रक्षा के लिए उत्सर्ग होने की प्रेरणा देता है एवं इसके फलस्वरूप अक्षय कीर्ति अर्जित करने तथा अपने सम्बन्धी समकालीन राजाओं द्वारा प्रशंसित होने का गौरव, वह उद्दीपन विभाव है, जो इसकी वीररस में परिणति का विधान करता है—

---

1. वचनिका 4 (1)
2. वही, 14 (2)

"राउळ गइपउ राउ, वळि वीरजी वखाणिसी ।[1]
मइं कीधउ जेहडउ मरण, जंपइ भोजा-जाउ ।।"

वचनिका में वीर का प्रेरक यह उत्साह-भाव इसके चरित्रनायक अचलदास में ही नहीं, उसकी रानियों तथा उसके सुभट-सामन्तों में भी कूट-कूट कर भरा हुआ है। उसका सारा ही परिग्रह जैसे वीरत्व से ओतप्रोत है, जैसाकि उसके वीर सामन्तों के एक से बढ़कर एक वीरतापूर्ण उद्‌गारों से ज्ञापित है। उदाहरणत: नाथू डोड और डूँगर वागड़ी कहते हैं—

"इसउ कीजइ—गळइ साळिग्राम तुलसी की माळा घातिजइ, राजा अचळेसर का आवास-थइ लोहड़उ करतां-करतां गोरी राजा का गूडरइ जाइजइ। जितरा-जितरा पग दीजइ, तितरा-तितरा अस्वमेध ज्याग का फळ लीजइ। इण विध जीव निवेदिजइ, तउ सूरिजमंडळ भेदिजइ।"[2]

उत्साह से उद्वेलित वीरत्व की कैसी पावन वाग्धारा है! वस्तुत: इसका उत्स हमारी उन धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्पराओं में है, जिनके अनुसार युद्ध में वीरगति-प्राप्त योद्धा सूर्यमण्डल का भेदन करता है तथा स्वर्ग में दिव्य सुखों का शाश्वत उपभोग करता है। महाभारत का वचन है—

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र! सूर्यमण्डल भेदिनौ ।[3]
परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।।

कवि ने यह उत्साह-वृत्ति केवल नायक-पक्ष के योद्धाओं में ही दिखाई हो, ऐसा नहीं। प्राय: 'वचनिका' का हर पात्र ही इससे अनुप्राणित है। यहाँ तक कि कवि ने अचलदास के प्रतिस्पर्द्धी पात्र-होशंगशाह तथा उसके अधीनस्थ सामन्त खेरला के नरसिंह आदि में भी उत्साह का अन्यतम उत्कर्ष दिखाया है, जो चरित्रनायक के शौर्य और पराक्रम को वांछित महत्व प्रदान करने की दृष्टि से सर्वथा अपेक्षित था। कसौटी पर कसी जाकर ही कांचन-रेखा चमकती है। होशंग का अतुल बल-पराक्रम ही अचलदास के वीरत्व की वह कसौटी है, जिस पर खरा उतरकर वह कांचन-सा दमक उठता है।

---

1. वचनिका 26 (3).
2. वचनिका 22 (5)
3. महाभारत, उद्योगपर्व 32, 65

इसी भाँति, अचलदास की रानियाँ भी वीरोल्लास से उल्लसित हुई न केवल अपने स्वामी को ही धारातीर्थ में स्नान करने हेतु प्रेरित करती हैं, अपितु स्वयं भी शत्रु की धारासार बाण वर्षा में प्रविष्ट हो अपने तीनों कुलों को उज्ज्वल करने का संकल्प करती हैं।[1] कवि ने उनके तथा अन्य कुलांगनाओं के इस अपूर्व वीरोल्लास का अतीव मार्मिक एवं प्रभविष्णु चित्रण किया है, जब वे जौहर करते समय अपने पति से स्वर्गिक मिलन के मोद में डूबी हुई अहमहमिका से अनल-कुण्ड में कूद पड़ती हैं। पातिव्रत्य की प्रतिमा एवं शील व सतीत्व की प्रतिमूर्ति भारतीय नारी के सिवा ज्वालमाला में स्नान करने की ऐसी दिव्य और अनूठी उमंग और किसे हो सकती है—

> जउहर मइं जळिवाह, इसइ छोह पइसइ अनळ ।[2]
> पहिली थी, रहि पाछिली, पग अेकि पड़खइ नाह ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'वचनिका' का समूचा परिवेश ही वीररस से आप्लावित है, जिसका पूर्ण परिपाक काव्यान्त में राजललनाओं के जौहर तथा अचलदास के वीरगति प्राप्त करने में होता है। और तभी वीर अचलदास तथा उसकी रानियों के इस अप्रतिम शौर्य, अद्भुत त्याग एवं अनुपम उत्सर्ग से रोमांचित हुए हम कवि का यह कालजयी उद्घोष सुनते हैं—

> आपण दुरंग न अप्पियउ, जीवतइ जाइलराइ ।[3]

जिसे सुन, हमारे श्रद्धाभिभूत हृदय से उनके प्रति दो अश्रु-अर्घ्य चुपचाप ढुलक पड़ते हैं!

वीर के साथ 'वचनिका' में आनुषंगिक रूप से करुण, वात्सल्य एवं वीभत्स की भी झलक मिलती है, परन्तु ये वीर के संपोषक होकर ही नियोजित हुए हैं। उदाहरणतः राजांगनाओं के सती होते समय का दृश्य वीरत्व से मंडित होने पर भी हमारे हृदय में एक करुणा-भाव जगाए बिना नहीं रहता। इसी भाँति, पाल्हणसी के दुर्ग से प्रयाण करते समय अचलदास का भाव-विह्वल हो अपने आँसू पोंछते हुए उसे गले लगाकर विदा देने तथा उत्तराधिकार का भावी दायित्व सौंपने का दृश्य भी अत्यन्त मार्मिक है, जिसमें वात्सल्य का एक

---

1. वचनिका, 14 (3–8)
2. वचनिका, 26 (15)
3. वचनिका, 26 (26)

ऐसा सहज और अनूठा स्पर्श है, जो हमें द्रवित किए बिना नहीं रहता। यह मानो वीर रस द्वारा वात्सल्य का अश्रुमय अभिषेक है! युद्ध-वर्णन के प्रसंग में कहीं-कहीं वीभत्स की भी झलक मिल जाती है, जो वीर का सहवर्ती है। यथा—

अंत्रावलि, आळूझती, भेळउ हुइ भाराथि।

परन्तु 'वचनिका' में वीररस ही प्रधान है, जिसका ओजस्वी चित्रण करना ही कवि का अभीप्सित है।

वर्णन-कौशल—

'वचनिका' मुख्यत: एक चरित्रप्रधान काव्य है, जिसमें युद्ध-घटना के माध्यम से अचलदास के वीर चरित्र का चित्रण करना ही कवि का उद्देश्य रहा है। घटना का कवि ने उतना ही उपयोग किया है, जितना उसे अपने चरित्र-नायक के चरित्रोत्कर्ष का द्योतन करने हेतु अपेक्षित एवं आवश्यक प्रतीत हुआ। फलत: इसमें इतिवृत्त से अधिक चारित्रिक व्यंजना ही कवि को अधिक उद्दिष्ट रही है। तथापि, ये वर्णन अपनी लघुता में भी काव्योचित सरसता से युक्त हैं।

इन वर्णनों में होशंगशाह की सेना, उसके योद्धाओं तथा अभियान का वर्णन, अचलदास के प्रभुत्व और पराक्रम का वर्णन, अचलदास की रानियों तथा उसके सामन्तों के वीर चरित्र का वर्णन, युद्ध-वर्णन, जौहर-वर्णन आदि उल्लेखनीय हैं। ये सारे ही वर्णन संश्लिष्ट रूप में मूल कथा के अंग बनकर आए हैं तथा चरित्र-चित्रण एवं कथाविकास में प्रत्यक्ष योग देते हैं।

वस्तुत: 'वचनिका' का कवित्व इसकी विशिष्ट वर्णन-शैली में है, जो मौलिक एवं निराली है। यह आश्चर्य की बात है कि डॉ० टैसीटरी ने 'वचनिका' की जिस वर्णन शैली पर टिप्पणी करते हुए इसे अपरिष्कृत बताया है—

"The style of the composition is uncouth and archaic ...."[2]

उसी में तो उसका मौलिक वैशिष्ट्य निहित है। कारण, इसमें वर्णन की उस प्राचीन पद्धति का मूल रूप सुरक्षित है, जो परवर्ती डिंगल-रचनाओं में

---

1. वचनिका 26 (24)
2. A Descriptive Catalogue Of Bardic & Historical MSS.; Section II, Part I, Page 41.

अप्राप्य है । साथ ही, यह वर्णन-शैली कवि के निराले व्यक्तित्व की भी ज्ञापक है, जिसमें एक अनूठी सरसता और भाव प्रवणता है । हम एक उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट करेंगे । शिवदास एक आत्मविश्वासी कवि है । वह अपने चरित्रनायक के गौरव तथा अपनी काव्य-प्रतिभा से परिचित है । यदि वह इस बात को केवल तथ्यात्मक ढंग से कहता कि अचलदास जैसे वीर का मुझ जैसे प्रतिभाशाली कवि ने गुणगान किया है तो उसमें कोई काव्योचित सरसता न होती । बल्कि उसकी यह आत्म-प्रशस्ति हमें एक दर्पोक्ति मात्र प्रतीत होती । परन्तु इसी बात को कवि अपनी अनूठी वर्णन-शैली में यों कहता है—

"अेक सीह नइ पाखर्यउ । सूर नै सिहाइति आवर्यउ । पंचाम्रत नै अमी परगर्यउ । महादान आछइ घड़इ । दूध मांहि साकर पड़इ । सोनउ नइ सुवास । एक अचल नइ कथइ सिवदास ।"[1]

ध्यातव्य है कि द्विगुणित वैशिष्ट्य-वर्द्धन का द्योतन करने हेतु इस प्रकार की शैली हमारे मध्ययुगीन काव्यों में अतिशय लोकप्रिय रही है, जैसा कि सभा-शृंगार में दिए गए उदाहरणों से प्रकट है ।[2] स्पष्ट है कि इससे कवि की व्यंजना में एक विदग्धता आगई है, जिससे उसकी आत्मविज्ञप्ति एक गर्वोक्ति न रहकर कवि-जनोचित रसोक्ति के रूप में हमें अनुरंजित करती है ।

डॉ० टैसीटरी ने 'वचनिका' के वर्णनों में अतिरंजना का भी आरोप लगाया है । जहाँ तक अतिरंजना का प्रश्न है, 'वचनिका' में काव्योचित अतिरंजना या अत्युक्ति के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, जो न्यूनाधिक रूप में सभी काव्यों में देखी जा सकती है । इस अत्युक्ति के भी हम दो भेद कर सकते हैं– तथ्यगत एवं उपमागत । जहाँ तक तथ्यगत अत्युक्ति या तथ्यात्मक अतिरंजना का प्रश्न है, कवि ने ऐसा बहुत कम किया है । यथा – माँडू के सुल्तान होशंगशाह की सेना में पदातिकों आदि की संख्या वह लाखों में बताता है, जो स्पष्ट ही अत्युक्ति है—

बारह लक्ख त छइ वड पइदळ ।

परन्तु कवि की अधिकांश अत्युक्तियाँ उपमागत हैं, जिनका प्रयोग प्रायः सभी कवि परम्परा से करते आए हैं । अतः कवि परम्परानुमोदित होने से यह

1. वचनिका 4 (वात)
2. सभाशृंगार, पृ० 267 : सं० अगरचन्द नाहटा ।

अतिरंजना सर्वथा काव्योचित है। उदाहरणतः पाल्हणसो (बालावत) के दुर्ग से प्रस्थान करते समय कवि का यह कहना कि 'जाते हुए यमराज को कौन रोकें'?

'पाल्हउ कवणइ पड़इ, कउण जम जातउ वारइ।'

स्पष्ट ही वर्णन की एक काव्योचित एवं आलंकारिक शैली है, जिसे हम अतिरंजना नहीं कहेंगे। ऐसा वर्णन तो कवि-परम्परा में चिरकाल से होता आया है। तथ्यगत अत्युक्ति के सम्बन्ध में डॉ० टैसीटरी का यह आरोप कि कवि ने दिल्ली के किसी 'आलिमगोरी' नामक बादशाह का होशंग की मदद पर आना लिख दिया है, सर्वथा निराधार है, जिसकी चर्चा हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं। वस्तुतः यहाँ 'आलम' शब्द का ठीक अर्थ न जानने के कारण ही यह भ्रांति हुई है। जैसाकि हम कह आए हैं, यह होशंगशाह के लिए उपाधि रूप में प्रयुक्त शब्द है, जिसके बादशाह के अर्थ में प्रयोग की डिंगल-काव्यों में एक सामान्य परम्परा रही है। डिंगल की इस विशिष्टार्थक प्रयोग-परम्परा का परिचय न होने के कारण ही विद्वद्वर डॉ० टैसीटरी ने कवि पर अत्युक्तिपूर्ण वर्णन-शैली का आरोप लगा दिया है, जो संगत नहीं है। अतः 'वचनिका' की भाषा-शैली पर विचार करते समय हमें डॉ० टैसीटरी के अभिमत से पूर्वाग्रह-ग्रस्त नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में डॉ० दशरथ शर्मा ने भी उचित ही लिखा है—"उसके (शिवदास के) काव्य में कविजनानुमत अत्युक्ति है किन्तु इतनी नहीं, जितनी तैस्सितोरी महोदय मान बैठे हैं।"[1]

सुल्तान होशंग की सेना में सम्मिलित योद्धाओं के परिचय-प्रसंग में कवि ने प्रश्नोत्तर शैली का अवलम्बन किया है, जो पाठकों को रसान्वित करती हुई उनका औत्सुक्य-वर्द्धन करती है। इससे पाठक के समक्ष एक-एक कर प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व मूर्त होता चलता है तथा उसे काव्य-पठन से अधिक किसी दूरदर्शन पर देखे गए वृत्तचित्र के समान उसके अस्तित्व की प्रत्यक्ष प्रतीति होती रहती है। यथा—

(1) "हींदू राजा तउ कवण कवण? सकल ही सकबंधी, सकल कला संपूरण राजा नरसिंघ सारीखा।....दूसरउ विकमाईत।"[2]

---

1. वचनिका, पृ० 3, सं० दीनानाथ खत्री।
2. वचनिका, 6 (वात)

(2) "अचलेसर तउ किसउ ? किरि उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम कउ भड़-किमाड़ । आइन्या अजइपाल । अहंकारि रावण ।"[1]

पाठक देखेंगे कि इस परिचय में पात्र विशेष का केवल नामोल्लेख ही नहीं, गुणोल्लेख भी है, जो डिंगल काव्यों में प्रचलित प्रशस्ति-वर्णन की परम्परा के अनुरूप है।

इसी भाँति, कवि ने होशंग की सेना में सम्मिलित होने वाले राजाओं के विभिन्न राज्यों या संस्थानों के सूचन के लिए भी इसी प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया है। यथा—

"देस तउ कवण-कवण ?"[2]

लगता है, यह प्रश्नोत्तर-शैली कवि को बहुत प्रिय है। इसीलिए उसने अपने वर्णनों में, चाहे वह किसी व्यक्ति का हो अथवा स्थान का, प्रायः इसी का अवलम्बन किया है। सुल्तान होशंगशाह के प्रचण्ड प्रताप का वर्णन करते हुए तो कवि प्रश्नों की झड़ी लगा कर मानो पाठकों को अभिभूत हो कर देना चाहता है।[3] डॉ० दशरथ शर्मा ने कवि की इस शैली पर टिप्पणी करते हुए लिखा है— "इसे पढ़कर अशोक के अभिलेखों तक की याद आती है। जिस तरह अशोक स्वयं अनेक बार प्रश्न करता है, "हकं तं इच्छामि किंति", "अथ पजाये इच्छामि किंति", "समवायो एव साधु किंति" और स्वयं उनका उत्तर देता है, उसी तरह वचनिका भी "अचलेसर तउ किसउ?". "देस तउ कउण-कउण" आदि प्रश्न करती हुई उनका उत्तर देती है।"[4]

पात्रों के इस प्रशस्ति-वर्णन में कवि ने परम्परागत रूढ़ियों (Motifs) का भी यदा-कदा प्रयोग किया है। जैसे सुल्तान होशंगशाह को कवि 'दूसरा अलाउदीन' और नरसिंह को 'दूसरा विक्रमाईत' कहकर ज्ञापित करता है, जो डिंगल-काव्यों में प्रशस्ति-वर्णन की एक प्रचलित रूढ़ि है।

रूढ़ियों का प्रयोग सैन्य-अभियान के वर्णन में भी हुआ है। उदाहरणतः किसी विशाल सेना के प्रयाण करने पर मार्गस्थ जलाशयों का सूख जाना,

---

1. वचनिका, 9 (वात)
2. वचनिका, 9 (वात)
3. वचनिका, वात (9)
4. वचनिका, पृ० 11, ऐतिहासिक परीक्षण : डॉ० दशरथ शर्मा, सं० दीनानाथ खत्री।

घास-फूस का समाप्त हो जाना, जल की जगह कीचड़ हो जाना आदि वर्णन तथ्यपरक न होकर बहुत कुछ पारम्परिक एवं रूढ़ ही हैं, जिनका अन्य काव्यों में भी प्रचुर प्रयोग हुआ है। व्याख्यान्तर्गत हमने इनके प्रयोग के यथास्थान उदाहरण दिए हैं।

इसी भाँति, युद्ध वर्णन के अन्तर्गत भी कवि ने डिंगल की प्रचलित काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग किया है। यथा—तेंतीस करोड़ देवताओं सहित सूर्य का युद्ध-व्यापार को देखना[1], मरणोत्तर योद्धा का बैकुण्ठ पद प्राप्त करना,[2] युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले योद्धा का सूर्यमंडल-भेदन करना[3] आदि वर्णन इसी कोटि के हैं, जो डिंगल-काव्यों में प्रचलित काव्य-रूढ़ियों पर आधारित हैं। निश्चय ही इस कोटि के वर्णन रूढ़िपरक एवं पारम्परिक होने से चाहे मौलिक न कहे जाएँ परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि ये मध्यकालीन योद्धाओं के अटल विश्वास और आस्था से जुड़े हुए हैं। इनके रूप में प्रकारान्तर से कवि ने अपनी युगीन धारणाओं एवं मान्यताओं को ही अभिव्यक्ति दी है, जो हमारी धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिन्तना का अभिन्न अंग बनकर चिरकाल से जनमानस में प्रतिष्ठित हैं। इनकी उपेक्षा करने से कवि का युद्ध-वर्णन स्थूल दृष्टि से चाहे यथार्थ और स्वाभाविक होजाता परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से वह निपट अधूरा ही रहता। अतः हमारी युग-युगीन सांस्कृतिक चेतना के अंगीभूत विश्वासों पर आधारित होने के कारण ये युद्ध-वर्णन अलौकिक होने पर भी अस्वाभाविक एवं काल्पनिक होने पर भी अयथार्थ नहीं हैं। कारण, इनमें काव्य के उस भावगत सत्य की प्रतिष्ठा हुई है, जो इतिहास के स्थूल सत्य से कहीं महान् है। इनकी विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे।

'वचनिका' में इनकी सर्वाधिक सुष्ठु एवं मार्मिक व्यंजना अचलदास के सुभट-सामन्तों द्वारा युद्ध-मंत्रणा के प्रसंग में व्यक्त वीरतापूर्ण उद्‌गारों में हुई है। 'वचनिका' के ये युद्ध-मंत्रणा विषयक वर्णन, जो गद्य में हैं, निश्चय ही अत्यन्त सजीव और ओजस्वी बन पड़े हैं, जिनमें वीररस मूर्तिमान हो उठा है।[4]

---

1. वचनिका, 26 (18)
2. वचनिका, 26 (1)
3. वचनिका, 21 (5)
4. वचनिका, 21 (3, 4, 5)

पर वस्तुतः कवि के मौलिक वर्णन-कौशल के स्थल वे हैं, जहाँ उसने अनुभूति के स्तर पर मनोगत गूढ़-गम्भीर भावनाओं को वाणी दी है। अर्थात् स्थूल वस्तु-वर्णन से ऊपर उठ मानवीय संवेदनाओं को चित्रांकित करने का प्रयास किया है। ऐसे स्थल मुख्यतः दो ही हैं—

(i) पाल्हणसी को अन्तिम विदा देते समय का, तथा (ii) राजललनाओं के जौहर करते समय का, जिसमें कवि ने अंतस से उमड़ती व्यथा को वाणी देते हुए शोक और विषाद के वातावरण को ही मूर्त्त कर दिया है।

पाल्हणसी (अचलदासोत) के दुर्ग से निष्क्रमण करते समय समस्त राजकुल में व्याप्त शोक को कवि ने कितनी सशक्तता से रूपायित कर दिया है—

> पाल्हणसी पुहविहि रह्यउ, अंनि समह्या सरग्गि।[1]
> तिणि वेळा हीया भरी, राइ-राइ रोवण लग्गि।।

तदनन्तर शत्रु-सेना को चीरते हुए वीर पाल्हणसी (बालावत) के दुर्ग से निष्क्रमण करने का कवि ने ऐसा फड़कता हुआ वर्णन किया है, मानो वह युद्ध से पलायन न होकर किसी अप्रतिघ वीर का विजय-अभियान हो—

> पाल्हउ कवणइ पड़इ, कउण जम जातइ वारइ?[2]
> कवण वज्र झेलियइ, कउण सिरि वीज सहारइ?
> अंबरि किणि आंगिये, आभ कुण ऊंडल आणइ?
> उवहि कवण उलंघइ, कउण जल-संख्या जाणइ?
> अेतरी बात कुण आंगमइ, कउण जम्म सरिसउ जुड़इ?
> बालाउत बड़ दल विकल, कउण आणि बळि ऊहड़इ?।।

पाल्हणसी (बालावत) के अदम्य साहस और उसके दुर्निवार पराक्रम का कैसा जीवन्त चित्रण है, जो कवि के उत्कृष्ट वर्णन-कौशल का ज्ञापक है। इसी भाँति, अचलदास की रानियों तथा अन्य राजललनाओं द्वारा किए गए जौहर का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक, भावपूर्ण एवं हृदयग्राही है। इस जौहर-वर्णन में करुणा और वीर का अद्भुत समन्वय हुआ है। जौहर की ज्वाला में प्रवेश करते समय उन कुलवधुओं के मुखमण्डल सतीत्व के दिव्य तेज से दीप्त

---

1. वचनिका, 23 (दूहा)
2. वचनिका, 25 (कवित्त)

हो उठे थे। एक अनूठी आभा उन पर विलस गई थी, मानो सूर्य का उदय होने पर कमल-कुसुम खिल उठे हों—

कुल वहुवां दीसइ कँवल, ऊगाँ किरि आदीत।[1]

इसमें सतियों के केवल बाह्य सौन्दर्य का ही वर्णन नहीं है अपितु उनके अन्तस्थ मनोल्लास की भी व्यंजना है। कमल तो वैसे ही सुन्दर होता है परन्तु सूर्य को देखकर जैसे वह उत्फुल्ल हो उठता है, उसी भाँति, उन राजांगनाओं के मुख-मण्डल भी सतीत्व की दिव्य उमंग में खिल उठे थे।

अन्त में, जब वे 'शिव-शिव', 'हरि-हरि' एवं 'विष्णु-विष्णु' के महोच्चार के साथ चिता में प्रवेश करती हैं तो एक गहन विषाद का वातावरण गहरा जाता है। सूर्य सहित तेंतीस कोटि देवता एवं अखिल लोकसमुदाय श्रद्धाभिभूत हुआ उन देवियों के दिव्य दाह के दृश्य को एकटक देखने लगता है। कवि की सशक्त तूलिका ने उस समय के करुण-गम्भीर दृश्य को मानो मूर्त कर दिया है—

ते चाली तिणि ठाइ, आइसि अचलेसर तणइ।[2]
ससिवयणी सिव-सिव करइ, पइसइ पावक माइ॥

यों, उन सतियों ने अपने शील और सतीत्व की रक्षा के लिए ज्वाला से शृंगार किया ताकि शत्रु की मलिन छाया भी उन्हें स्पर्श न कर सके। मुनि श्री जिन-विजयजी ने चित्तौड़ में रानी पद्मिनी द्वारा किए गए जौहर के संदर्भ में जो उद्गार उसके प्रति व्यक्त किए हैं, वे अचलदास की इन राजललनाओं पर भी पूर्णतः घटित होते हैं—

"वह तो, उस दुष्ट दानव के पापी पैरों के कलुषित स्पर्श द्वारा अपने तीर्थभूत दुर्ग की पुण्य भूमि अपवित्र बने, उसके पहले ही माता ज्वालमालिनी की गोद में बैठकर अपनी देवांशी देह को भस्म स्वरूप बनाकर, भगवान शिव के भूतिमय ललाट पर जा विराजी थी।"[3]

अचलदास की रानियों ने भी यही गौरव प्राप्त किया।

---

1. वचनिका (26, 12)
2. वचनिका (26, 13)
3. गोरा-बादिल-चरित्र, पृ० 63, सं० मुनि जिनविजयजी।

तदनन्तर कवि ने अचलदास के अन्तिम युद्ध का मार्मिक वर्णन किया है, जो सब ओर से निश्चिन्त होकर किसी वीतराग अवधूत के समान प्राणों का मोह त्याग, अपने भाई-भतीजों सहित गढ़ से तलहटी में उतर आया तथा अनेक शत्रुओं को तलवार के घाट उतार कर स्वयं भी तिल-तिल असिधारा का आलिंगन करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। अन्य राजाओं के समान उसने अपने गढ़ को उजाड़ कर तथा स्वयं उससे पलायन कर शत्रु को नहीं सौंपा। वरन् वीर अचलदास भोजावत के मरने पर ही सुल्तान गौरी गढ़ को अपने अधिकार में ले सका। कवि ने कितने गर्वित भाव से अपने चरित्रनायक के इस वीरव्रत पालन का उल्लेख किया है—

> अनि पह जिम गढ ऊठि, ऊजड़ करि आप्यउ नहीं।
> लइ गोरी-राउ गागुरणि, पड्या भोजावत पूठि॥[1]

यों, उस वीर ने इस लोक में सुयश और परलोक में अमर-पद प्राप्त किया।

कवि की भाव-व्यंजना एवं वर्णन-कौशल का परिचय देने हेतु ये उदाहरण पर्याप्त होंगे।

भाषा—

'वचनिका' की भाषा डिंगल है, जो मध्ययुगीन मारवाड़ी का परिनिष्ठित साहित्यिक रूप है। इसे डॉ० टैसीटरी ने 'पुरानी पश्चिमी-राजस्थानी' के नाम से अभिहित किया है तो डिंगल के प्रसिद्ध लक्षण-ग्रन्थ 'रघुनाथ रूपक गीतां रौ' के रचयिता ने इसे 'मरूभूम भाषा'[2] एवं महाकवि सूर्यमल्ल ने 'मरूबानी'[3] की संज्ञा दी है। प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में—

"पुरानी मारवाड़ी भाषा, जो कि मारवाड़ी और गुजराती दोनों की ही मां थी, उसमें साहित्य-सर्जना होने लगी। फिर मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर 'पिंगल' की प्रतिस्पर्द्धी साहित्यिक भाषा 'डिंगल' प्रकट हुई।"[4]

---

1. वचनिका 27 (27)
2. रघुनाथ रूपक गीतां रौ, पृ० 283, सं० महताबचंद्र खारैड़।
3. वंशभास्कर, पृ० 147, महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण।
4. राजस्थानी भाषा, पृ० 58, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या।

डॉ० टैसीटरी ने भाषा विकास की दृष्टि से डिंगल के प्राचीन और अर्वाचीन—ये दो भेद किए हैं। प्राचीन डिंगल का काल वे 13 वीं से 16 वीं शताब्दी तक मानते हैं एवं अर्वाचीन या परवर्ती डिंगल का 17 वीं शताब्दी से अब तक। उनकी धारणा है कि प्राचीन डिंगल में प्रयुक्त 'अइ' और 'अउ' के स्थान पर अर्वाचीन डिंगल में क्रमशः 'ऐ' और 'औ' होगया है।[1] जैसा कि डॉ० मोतीलाल मेनारिया[2] और डॉ० हीरालाल माहेश्वरी का मत है,[3] उक्त आधार पर डिंगल का यह वर्गीकरण तात्त्विक नहीं ठहरता क्योंकि 'अचलदास खीचो री वचनिका' में ही उपर्युक्त दोनों रूप देखने को मिल जाते हैं। तथापि डॉ० टैसीटरी द्वारा सुझाए गए कालविभाजन की दृष्टि से प्राचीन डिंगल-रचनाओं का अर्वाचीन डिंगल रचनाओं से पार्थक्य-सूचन हेतु यह वर्गीकरण स्वीकार किया जा सकता है।

इस दृष्टि से 'अचलदास खीची री वचनिका' प्राचीन डिंगल की रचना कही जा सकती है क्योंकि इसमें प्रयुक्त शब्दावली एवं भाषास्वरूप परवर्ती डिंगल-रचनाओं से स्पष्ट ही भिन्न है, जो इसके अपभ्रंश से डिंगल के विकास-क्रम में, अपेक्षाकृत प्राचीनतर होने का परिचायक है।

वस्तुतः अपभ्रंश से डिंगल की विकास-प्रक्रिया में विवेच्य 'वचनिका' एक अन्यतम महत्व की रचना है। इसमें हमें एक ओर अपभ्रंश के गर्भ से जन्म लेकर अपना स्वतन्त्र स्वरूप निर्दिष्ट करती डिंगल की प्राथमिक अवस्था का परिचय मिलता है, वहाँ दूसरी ओर मुस्लिम सम्पर्क के फलस्वरूप शनैः शनैः अरबी-फारसी शब्दों के समावेश की प्रवृत्ति का भी सूचन होता है।

इस प्रकार प्रस्तुत 'वचनिका' अपभ्रंश से डिंगल के उद्भव-काल की एक प्रतिनिधि रचना के रूप में हमें तत्कालीन भाषा-स्थिति का ज्ञान कराती है।

इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की तुलना में डिंगल तथा अपभ्रंश प्रभावित तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। साथ ही, इसमें कुछ विदेशी भाषाओं—अरबी-फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री; भूमिका, पृ० IV-V; सं० डॉ० टेसीटरी।
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 29-31, डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
3. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० 18, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी।

कि अपनी जननी अपभ्रंश के शब्द-भण्डार से अपना पोषण ग्रहण करते हुए भी डिंगल अब अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास के लिए अन्य भाषा-भण्डारों से भी वांछित शब्द-संभार संग्रह कर अपनी शक्ति एवं समृद्धि-संवर्द्धन करने लगी थी। 'वचनिका' में प्रयुक्त इस शब्दावली के सामान्य परिचय हेतु प्रत्येक वर्ग के शब्दों के कुछ उदाहरण अवलोक्य हैं :—

1. **तत्सम शब्द**—

आरंभ, असुर, नाद, गुण, ग्रंथ, सुवास, मरण, उदक, कनक, पावक, मध्यम, तिलक, देवता, पुर, पारावार, वज्र, सभा, सकल आदि।

2. **तद्भव शब्द**—

उछाह, कवियण, निबल, कउतिग, कवड्डो, कादम, कोडि, चिहुर, साकर, गइवर, जुगति, दरसण, दणियर, धनखधर, धवलिहर, सुहड़, पुरखारथ, प्रव, मुगल, रुहिर, वेणा, सकति, ओळि, पख आदि।

3. **डिंगल के विशिष्ट शब्द**—

साहण, ताणि, उपरावठां, भड़, भांमणे, भावठि, आरंभ, आळि, विढण, खड़िया, निहसि, गळत्थियो, अड़साळ, ताळि, आडी, भड़िवाह, अवछडि, पाधरा, बापइता, साखैत, उलिगाणा, कळि, सारधू, सवासणी, पुणग, आवट्टइ, पिडि, पिसुण, राजलोक, ऊंडळ, मुणइ, पखइ, अंतेवर, मल्हपत्यइ, पड़खइ, गोडा आदि।

4. **विदेशी शब्द**—

खउंदालिम्म (खुदा-ए-आलम), सिकार (फा.), मीर (फा.), पातिसाहि (बादशाह, फा.), मुकाम (अ.) सुरिताण (सुल्तान, अ.), महलि (महल, अ.) तुरक्क, (तुर्क, तु.), कहरि (कहर, अ.) आदि।

'वचनिका' में कवि ने कहीं-कहीं मुहावरों का भी प्रयोग किया है, यथा 'कउण की माई वियाणी', 'कउण हइ दईव रूठउ', 'सोनउ नइ सुवास' आदि। एक स्थान पर कहावत का भी प्रयोग मिलता है—'मरण चाली अर सुकुर सामहउ'।

काव्य-रूढ़ियाँ—

काव्य में वर्णन की कुछ विशिष्ट शैलियाँ एक ही प्रकार के संदर्भ या वर्णन-प्रसंग में निरन्तर प्रयुक्त होते रहने के कारण रूढ़ होजाती हैं। इन्हें ही रूढ़ि या अभिप्राय कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हें 'मोटिफ' (Motif) की संज्ञा दीगई है। 'वचनिका' में भी अनेक काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है, जिनकी संक्षेप में चर्चा हम पहले कर आए हैं।

'वचनिका' में प्रयुक्त इन काव्य रूढ़ियों को सामान्यतः तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. युद्धवर्णन सम्बन्धी।
2. व्यक्ति वर्णन सम्बन्धी।
3. वैशिष्ट्य-वर्णन सम्बन्धी।

1. युद्धवर्णन सम्बन्धी

'वचनिका' में युद्ध की घटना ही प्रधान है; अतः इसमें युद्धवर्णन सम्बन्धी काव्य-रूढ़ियों का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। इन काव्य-रूढ़ियों में—विशाल सैन्य-अभियान के कारण पानी की जगह कीचड़ तथा कीचड़ की जगह खेह उड़ना,[1] तथा नदी-सरोवरादि का जल सूख जाना,[2] वीरत्व के उन्मेष में योद्धाओं का आकाश के जा अड़ना,[3] रण में जाते समय योद्धाओं द्वारा गले में मरण-संकल्प का सूचक शालिग्राम-विग्रह तथा तुलसीमाल धारण करना,[4] अप्रतिम शौर्य या उद्भट पराक्रम का प्रदर्शन करने पर सूर्य-सहित तेंतीस करोड़ देवताओं का युद्ध के दृश्य को विथकित होकर देखना,[5] युद्ध में वीरगति प्राप्त करने पर योद्धा का सूर्यमण्डल-भेदन करना,[6] आदि उल्लेखनीय हैं। वर्णन की ये शैलियाँ डिंगल-काव्यों में निरन्तर प्रयुक्त होते रहने से प्रायः रूढ़ हो गई हैं एवं इनकी अनथक पुनरावृत्तियाँ कभी-कभी पाठक को उबा भी देती हैं।

---

1. वचनिका, 6
2. वचनिका, 9
3. वचनिका, 14 (16)
4. वचनिका, 21 (5)
5. वचनिका, 26 (18)
6. वचनिका, 21 (5)

2. व्यक्ति-वर्णन सम्बन्धी—

व्यक्ति के प्रशस्ति-वर्णन की भी कुछ शैलियाँ काव्य में रूढ़ हो गई हैं। प्रायः हर कवि अपने चरित्रनायक के गुणगान या उसकी प्रशंसा करने के प्रसंग में इन काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग करते देखा जाता है। काव्य में प्रशस्ति-वर्णन की ये शैलियाँ इतनी पारम्परिक हो गई हैं कि अनेक बार कवियों ने इनके प्रयोग द्वारा अपने चरित्रनायकों पर उन गुणों एवं विशेषताओं का भी आरोपण कर दिया है, जिनसे वे साधारणतः शून्य हैं। उदाहरणतः किसी भी राजा के प्रशस्ति-वर्णन के प्रसंग में कवि अन्यान्य गुणों के साथ-साथ उसे निरपवाद रूप से 'षट्भाषा प्रवीण' कहकर भी प्रशंसित करते आए हैं। स्पष्ट है कि यह वर्णन मात्र औपचारिक एवं रूढ़ है।[1]

विवेच्य 'वचनिका' में भी कवि ने अपने चरित्रनायक के प्रशस्ति वर्णन में बहुत कुछ इन रूढ़ियों का अवलम्बन किया है। यथा—अचलदास की प्रशंसा करते हुए वह कहता है—

"आइन्या अजइपाल। अहंकारि रावण। दूसरउ धारू। तीसरउ सींधण। छइ दरसण, छयाणवइ पाखंड कउ अधार। बालउ चकरवति।"[2]

स्पष्ट ही, यह वर्णन पारम्परिक एवं रूढ़ है। इस कोटि का वर्णन अन्य काव्यों में भी मिलता है। यथा—

छः दरसण पाखंड छन्नवइ।[3]
दानि मानि माँगण रंजवइ॥

इसी भाँति, होशंगशाह की प्रशंसा में भी कवि ने यत्र-तत्र प्रचलित काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग किया है। यथा—'वह निर्बलों का उत्थापक और सबलों का उत्पाटक है' आदि।[4]

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी—महेसदासोत री, पृ० 85, सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।
2. वचनिका : अचलदास खीची री, पृ० 9
3. सदयवत्सवीरप्रबन्ध, पृ० 51, सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार।
4. वचनिका, 17

3. वैशिष्ट्य-वर्णन सम्बन्धी—

वैशिष्ट्य-वर्णन की कुछ शैलियाँ भी डिंगल-काव्यों में प्रायः रूढ़ हो गई हैं। उदाहरणतः द्विगुणित वैशिष्ट्य-वर्द्धन के प्रसंग में 'वचनिका' में जिन काव्य-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है, उनमें प्रमुख हैं—'एक सिंह है और फिर कवचित,' 'दूध है और उसमें शक्कर मिली हुई', 'सोना है और फिर सुगन्ध' आदि।[1]

इस सम्बन्ध में, ध्यातव्य है कि कोई भी कवि अपनी पूर्व काव्य-परम्परा से न्यूनाधिक रूप में प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अतः उसके लिए इन परम्परागत वर्णन-शैलियों का अपने काव्य में प्रयोग कोई अनोखी बात नहीं है। दूसरे, इनसे भावाभिव्यंजना में भी एक अनूठा सौष्ठव एवं चमत्कार आ जाता है।

छंद—

'वचनिका' एक गद्य-पद्य-मिश्रित काव्यविधा होने से इसमें पद्य एवं गद्य—दोनों के ही छंदों का प्रयोग हुआ है।

पद्य-छंदों में दूहा, सोरठा, कुण्डलिया, गाथा, गाहा, रसावला और कवित्त (छप्पय) का प्रयोग हुआ है, जिनमें अंतमेल दूहों की संख्या अधिक है। गद्य-छंदों में 'वात' और 'बिड़द' उल्लेखनीय हैं। 'वात' के अन्तर्गत तुकान्त और अतुकान्त—दोनों ही प्रकार के गद्य का प्रयोग हुआ है परन्तु अधिकांश में गद्य अतुकान्त है।

अलंकार—

'वचनिका' के कवि का अलंकारों के प्रति कोई मोह नहीं है। फलतः इसमें अलंकारों की अनावश्यक भरमार हमें दिखाई नहीं देती। जो भी आए हैं, वे प्रयत्न-प्रसूत न होकर सहज-स्वाभाविक रूप से भावाभिव्यंजना में सहायक होकर ही आए हैं; वर्णन को कृत्रिम एवं बोझिल बनाकर नहीं।

'वचनिका' में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों-- दोनों का ही प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में डिंगल के सर्वाधिक प्रसिद्ध अलंकार—वैणसगाई का इसमें भी प्रयोग हुआ है परन्तु कवि उसका सर्वत्र निर्वाह करने हेतु सचेष्ट नहीं है। वैणसगाई अलंकार के प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

1. वचनिका 4 (वात)

वैणसगाई— 1. गीत नाद गुण गाह
2. साइ सारदा मन संवरि
3. दक्खिण उत्तर देस
4. नमिया सकल नरेस
5. तंइ पतिसाहि तरणेह
6. कलि पाळट करणोक

कवि ने अन्य शब्दालंकार—अनुप्रास का भी प्रयोग किया है। यथा—

अनुप्रास— 1. आलम अचलेसर अड्यां, ए ही एक अववक
2. गोरी राउ गिरि आसनउ, गउ गढ गंजणहार
3. ठांह ठांह ठाठरी
4. विढतउ वीरति वाट

'वचनिका' में अर्थालंकारों का कम ही प्रयोग हुआ है। केवल उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व अनन्वय आदि कुछ ही अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

उपमा — ससि वयणी सिव सिव करइ, पइसइ पावक माह।
कलि पाळट करणोक, सातल सोम हमीर जिम।

रूपक — सर-पुणग सलल्लो

उत्प्रेक्षा — 1. सींधणहरि हुइ सांधुली वहुवां ति किरि विवाहि।
2. किरि भो कणैगिरि रावण मंडलीक पुनरेपि अवतर्यउ।
3. कुल वहुवां दीसै कवल, ऊगां किरि आदीत।

अनन्वय — 1. ते राजा अचलेसर सारिखा अचल नइ अचलेस ही होयइ।

इस प्रकार प्रस्तुत 'वचनिका' में कवि ने अलंकार-भार से अपने काव्य को आक्रान्त न कर सहज, स्वाभाविक ओजपूर्ण शैली में अपने चरित्रनायक का यशोगान किया है।

14. वचनिका का ऐतिहासिक विवेचन—

अचलदास खीची री वचनिका एक ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य है, जिसका नायक तथा उससे सम्बद्ध युद्ध-घटना इतिहास पर आधारित है। यह युद्ध आज से लगभग 560 वर्ष पूर्व (सन् 1423 में) हुआ था। जैसा कि कह आए हैं, उक्त युद्ध का सिवा फारसी तवारीखों के, हमारे अन्य किसी इतिहास-ग्रन्थ में इतना विशद और विस्तृत वर्णन नहीं मिलता, जितना विवेच्य वचनिका में।

फारसी तवारीखों में भी जो विवरण प्राप्य है, वह अत्यन्त संक्षेप में और पूर्वाग्रहपूर्ण है। यहाँ तक कि उनमें अचलदास का नामोल्लेख तक नहीं है।

ऐसी स्थिति में, गागरोण के उक्त युद्ध व तत्सम्बन्धी घटनाओं के बारे में हमारी जानकारी का प्रमुख स्रोत प्रस्तुत वचनिका ही रह जाती है और यही कारण है कि काव्यगत वैशिष्ट्य के साथ-साथ यह ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गई है। इसके साहित्यिक कलेवर में इतिहास की जो प्रभूत सामग्री गर्भित है, उससे विवेच्य युद्ध-घटना पर तो प्रकाश पड़ता ही है, आनुषंगिक रूप से उससे जुड़े अनेक ज्ञात-अज्ञात पात्रों व स्थानों के नामों की भी जानकारी मिलती है, जो शोधानुसंधान की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

इस सम्बन्ध में, 'वचनिका' में हुए कुछ उल्लेखों के आधार पर डॉ० टैसीटरी ने इस पर अतिरंजना और अनैतिहासिकता के जो आरोप लगाए हैं, उनकी चर्चा हम पूर्व पृष्ठों में कर चुके हैं। उससे यह निर्भ्रान्त रूप से सिद्ध हो जाता है कि डॉ० टैसीटरी द्वारा 'वचनिका' पर लगाया गया अनैतिहासिकता का आरोप निराधार है। यहाँ हम 'वचनिका' में प्राप्य वर्णनों व व्यक्ति-स्थानादि विषयक उल्लेखों का परीक्षण करते हुए इसके ऐतिहासिक महत्व का द्योतन करेंगे।

परन्तु इससे पहले हमें इन ऐतिहासिक प्रबन्धों के मूल में निहित हमारे कवियों की रचना-दृष्टि तथा उनकी इतिहास विषयक अवधारणा (Concept) को समझ लेना जरूरी है क्योंकि इसे समझे बिना हम इनका सही मूल्यांकन नहीं कर पाएँगे। यही नहीं, वरन् इनमें मात्र इतिहास की सामग्री तलाशने की दुराशा से भ्रमित हो हम इन्हें इनके काव्योचित महत्व से भी वंचित कर देंगे। हिन्दी का मूर्धन्य महाकाव्य पृथ्वीराजरासो इसका ज्वलन्त उदाहरण है, जो ऐतिहासिकता की ऊहापोह के कारण अपने वांछित गौरव से वंचित हो आज भी साहित्य की सर्वोच्च पीठिका पर प्रतिष्ठित किये जाने की प्रतीक्षा कर रहा है। अतः पहले हमें इन प्रबन्धकाव्यों में निरूपित ऐतिहासिकता की सीमाओं को जान लेना चाहिए।

इस विषय में, ध्यातव्य है कि हमारे यहाँ विशुद्ध इतिहास-लेखन की परम्परा कभी नहीं रही। इतिहास हमारे यहाँ काव्यबद्ध होकर ही वर्णित हुआ है। फलतः हमारे इन ऐतिहासिक प्रबन्धों में कवियो का उद्देश्य मूलतः अपने चरित्रनायकों का यशोगान करना ही रहा है, मात्र इतिहास लिखना नहीं। यही

कारण है कि इन ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में इतिहास और कल्पना का अविच्छेद्य गुंफन हुआ है, जिसके फलस्वरूप हम अपने इन ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों को न विशुद्ध इतिहास की कसौटी पर कस सकते हैं और न ही इन्ही इतिहास से विलग कर देख सकते हैं। इनमें तथ्य और कल्पना अविच्छिन्न रूप से एकीभूत हो गए हैं। यहाँ इतिहास ने काव्य को उपजीव्य दिया है तो काव्य ने इतिहास को अमरत्व ! यों, तथ्य और कल्पना के ताने-बाने से बुने हमारे इन ऐतिहासिक प्रबन्धों की स्थिति को लक्ष्य कर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है—

"वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक बनाने की प्रवृत्ति रही है।..........जायसी के रतनसेन, रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और कल्पना का, फैक्ट्स और फिक्शन का अद्भुत योग हुआ है.......यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का भी चरित्र लिखा जाने लगा तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक वे रचनाएँ काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं।"[1]

तात्पर्य यह कि हमारे इन प्रबन्ध-काव्यों की ऐतिहासिकता की अपनी एक सीमा है। अतः इन्हें सर्वांशतः इतिहास की कसौटी पर कसना इनके साथ अन्याय करना है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये निरे काल्पनिक और मनगढंत हैं। तद्विपरीत, तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री को संरक्षित रखने की दृष्टि से इनका योगदान अमूल्य है। जैसा कि कह आए हैं, क्रमबद्ध इतिहास-लेखन के अभाव में हमारे प्राचीन और मध्ययुगीन इतिहास का बहुत कुछ अंश अद्यावधि अज्ञात एवं अन्धकाराच्छन्न है। ऐसी स्थिति में, अतीत के उस धुँधले युग के विविध घटना-प्रसंगों पर प्रकाश डालने वाले तथा उसके विषय में यत्किंचित् जानकारी देने वाले हमारे ये ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य ही रह जाते हैं। वस्तुतः हमारे इन प्रबन्ध-रचयिताओं ने अपने यशस्वी चरित्रनायकों की जीवनगाथा को काव्यबद्ध कर इतिहास-लेखन के अभाव की बहुत कुछ अंश में पूर्ति की है, जिसके फलस्वरूप प्राचीन इतिहास की दुर्लभ सम्पदा विस्मृति के गर्भ में विलीन होने से बच गई है, जिसके लिए हमें इन कवियों का कृतज्ञ होना चाहिये। काव्योचित अतिरंजना के उपरान्त भी इनमें इतिहास की अमूल्य सामग्री सुरक्षित है, जिसका शोधपरक

1, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 77 : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

दृष्टि से मूल्यांकन होना अभी शेष है। यह ठीक है कि ये प्रबन्ध इतिहास की कसौटी पर पूर्णतः खरे नहीं उतरते। कारण ये काव्य हैं, इतिहास नहीं, और न ही इनके रचयिताओं को इन्हें मात्र इतिहास बनाना उद्दिष्ट है। उनका उद्देश्य तो ऐतिहासिक घटना के आधार पर अपने चरित्र नायक का गुणगान करना है। इसीलिए उन्होंने ऐतिहासिकता का यथासम्भव निर्वाह करते हुए तथा सभी ज्ञात-अज्ञात स्रोतों एवं अनुश्रुतियों का उपयोग करते हुए इतिहास के कंकाल में कालजयी प्राणों की सृष्टि की है

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम इनमें निहित दुर्लभ ऐतिहासिक सामग्री तथा इनमें गर्भित ऐतिहासिक संदर्भों की पूरी छानबीन कर उसका उपयोग करें, न कि उन्हें एकदम मिथ्या और निराधार मानकर अपने विवेचन-क्षेत्र से ही बहिर्गत कर दें। इन प्रबन्ध-काव्यों के रचयिता प्रायः ऐतिहासिक घटनाचक्र के प्रत्यक्ष द्रष्टा एवं अपने चरित्रनायक के समकालीन होने के कारण इनमें हमें अनेक बार ऐसी महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिल जाती हैं, जो अन्यत्र अप्राप्य हैं।

साथ ही, यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अपने प्राचीन इतिहास के बारे में अभी हम 'इदमित्थम्' कहने की स्थिति में नहीं हैं। अतः इन प्रबन्ध-काव्यों में वर्णित ऐसे अनेक स्थानों व पात्रादि के नामों को, जिनके विषय में हमारी कोई जानकारी नहीं है, काल्पनिक या मनगढंत मान लेना प्रकारान्तर से अपने अज्ञान या अल्पज्ञान का ही कृति पर आरोपण करना है, जैसा कि कुछ विदेशी विद्वानों ने किया है, जिसे लक्ष्यकर डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है—

"European scholars are sometimes unduly critical of the poor bards, who have done so much to preserve the history of India. They call their accounts legendary, accuse them of shameless mendacity and propose interpretations, which are perhaps even more far-fetched and fantastic than the versions of the poor, illiterate and highly imaginative annalists of Rajputana and other Indian Provinces. And all this is unfortunately done without examining the evidence available to painstaking scholars."[1]

---

1. Rajasthan Through The Ages; Page 681-682, Dr. Dashrath Sharma.

यह ठीक है कि कवित्वमय होने के कारण उनकी विवृति में कल्पना का भी पुट है परन्तु वह कल्पना ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर चली है। वह वायवी न होकर इतिहास के धरातल से उड़ान भरती है। उनके काव्य का कल्पतरु यद्यपि कल्पना के मुक्त आकाश में कुसुमित हो अपने चरित्र नायक की यशोसुरभि विकीर्ण करता है, तथापि उसकी जड़ें इतिहास के आलबाल में ही प्रतिष्ठित हैं। इतिहास उसका रस-स्रोत है तो काव्य उसकी रस-सृष्टि ! हमारे प्रबन्ध काव्यों में इतिहास अपने इसी आधार रूप में गृहीत हुआ है। वह काव्य की प्रेरणा बनकर आया है, परिमिति नहीं।

उपर्युक्त सन्दर्भ में विवेच्य 'वचनिका' पर विचार करने पर हम देखते हैं कि काव्योचित अतिरंजना के उपरान्त भी इसके वर्णन इतिहास की दृष्टि से साधार और तथ्यपरक हैं। इतिहास के अधिकारो विद्वान् डॉ० दशरथ शर्मा ने श्री दीनानाथ खत्री द्वारा सम्पादित 'वचनिका' के संस्करण में प्रकाशित अपने 'इतिहास की दृष्टि से परीक्षण' शीर्षक विद्वत्तापूर्ण लेख में पहली बार विवेच्य 'वचनिका' को इतिहास की कसौटी पर कसते हुए तथा तथ्यातथ्यों की जाँच करते हुए इसकी ऐतिहासिकता का सप्रमाण निदर्शन किया है। उन्होंने इसमें प्रयुक्त अनेक नामों की पहचान करते हुए यह अभिमत दिया है—

"उसे (शिवदास को) तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की पूर्ण जानकारी थी। उसने कहीं कल्पित नामों की भर्ती नहीं की है। उसके काव्य में कविजनानुमत अत्युक्ति है, किन्तु उतनी अधिक नहीं, जितनी तैस्सितोरी महोदय मान बैठे हैं।"[1]

डॉ० दशरथ शर्मा के मत का हम पूर्णतः समर्थन करते हैं।

अब हम संक्षेप में 'वचनिका' के ऐतिहासिक महत्व की चर्चा करेंगे। विवेच्य 'वचनिका' की ऐतिहासिकता पर सामान्यतः तीन बिन्दुओं से विचार किया जा सकता है—1. तथ्य या घटना, 2. पात्र व उनसे सम्बद्ध संस्थान, एवं 3. तिथि।

1. तथ्य या घटना—

जैसाकि हम कह आए हैं, 'वचनिका' में वर्णित युद्ध-घटना, जो इसका प्रतिपाद्य विषय है, इतिहास-सम्मत है। हम यह भी कह आए हैं कि फारसी

---

1. अचलदास खींची री वचनिका, पृ० 3, सं० दीनानाथ खत्री।

तवारीखों, जैसे तबकाते-अकबरी, तबकाते-फरिश्ता आदि में यद्यपि इस युद्ध का उल्लेख हुआ है, तथापि वह अत्यन्त संक्षेप में है, जिससे उक्त युद्ध एवं तत्सम्बन्धी घटनाओं के बारे में हमें कोई विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती। अतः 'वचनिका' का सर्वाधिक ऐतिहासिक महत्व तो इसी बात में है कि गागरोण के उक्त साके को लेकर लिखी गई यही एक मात्र स्वतन्त्र रचना है, जो उस पर विशद एवं प्रामाणिक प्रकाश डालती है। विवेच्य रचना का महत्व तब और भी बढ़ जाता है जब काव्य-परम्परा और अनुश्रुति इसके रचयिता को उस युद्ध-घटना के प्रत्यक्षद्रष्टा के रूप में स्वीकार करती हैं। गढ़रोध के समय कवि की उपस्थिति अथवा अचलदास से उसकी समकालीनता के प्रश्न को हम निर्विवाद न भी माने तो भी डॉ० दशरथ शर्मा के शब्दों में यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि "उसके (कवि के) और अचलदास के समय में विशेष अन्तर नहीं है और उसे तत्कालीन राजनैतिक स्थिति की पूर्ण जानकारी थी।"[1] कवि के वृत्त की प्रामाणिकता और उसकी विश्वसनीयता के लिए क्या यह पात्रता पर्याप्त नहीं है? विशेषतः उस स्थिति में, जब हमारी जानकारी का अन्य कोई हिन्दू स्रोत हमें उपलब्ध नहीं है।

रही फारसी तवारीखों की बात, सो इस सम्बन्ध में हमें स्मरण रखना चाहिए कि मुस्लिम इतिहासकारों द्वारा लिखित ये तवारीखें प्रायः हमें वस्तु स्थिति का तटस्थ और निष्पक्ष ज्ञान नहीं करातीं। विधर्मी हिन्दू राजाओं के प्रति धार्मिक एवं राजनीतिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने के कारण इनमें उन प्रतिपक्षी हिन्दू राजाओं की सेना तथा उसमें भाग लेने वाले योद्धादि के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है क्योंकि उनकी दृष्टि तो मुख्यतः अपने आश्रयदाता बादशाह या सुल्तान की उपलब्धियों पर ही केन्द्रित रही है, जिसे उन्होंने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया है। उदाहरणतः गागरोण-युद्ध को ही लीजिए। निजामुद्दीन और फरिश्ता ने होशंग के प्रतिस्पर्द्धी राजा अचलदास की वीरता और उसके सैन्यबलादि का यथातथ्य वर्णन करना तो दूर उन्होंने अचलदास का नामोल्लेख तक नहीं किया है। ऐसी स्थिति में फारसी तवारीखों से उक्त युद्ध विषयक हमें क्या प्रामाणिक जानकारी मिल सकती है? तद्विपरीत, वचनिकाकार ने युद्ध-पूर्व, होशंग के आक्रमण के फलस्वरूप चतुर्दिक

1. वचनिका : ऐतिहासिक परीक्षण, पृ० 3; सं० दीनानाथ खत्री।

व्याप्त आतंक के चित्रण से लेकर जौहर के अनुष्ठान, अचलदास के अन्तिम युद्ध तथा दुर्ग के पतन तक का ब्योरा दिया है, जिससे हमें दुर्ग के बाहर और भीतर की अंतरंग स्थिति का पता चल जाता है। यह ब्योरा संक्षिप्त होते हुए भी क्रमबद्ध और तथ्यपरक है, जिसमें कुछ भी अनैतिहासिक नहीं है। उदाहरणतः होशंग के प्रचण्ड बल-पराक्रम के आगे सभी हिन्दू राजाओं का नमित होजाना, होशंग की सेना में खेरला के शासक नरसिंह-सहित अनेक हिन्दू राजा-सामन्तों का सम्मिलित होना, होशंग का अचलदास के पास दूत भेजकर उसे गढ़ छोड़ अपने सगे-सम्बन्धियों—राणा मोकल, (ग्वालियर के) तंवरों या (आंबेर के) कछवाहों के पास चले जाने हेतु कहलाना, अचलदास के सुभट-सामन्तों द्वारा उसे समयोचित परामर्श देना एवं राजा का जीतेजी अपना दुर्ग शत्रु को न सौंपने का अटल संकल्प प्रकट करना, उसकी रानियों द्वारा तदर्थ अपने स्वामी को वीर-वचनों से प्रोत्साहित करना, अचलदास का सहायतार्थ अपने पुत्र धीरा को राणा मोकल के पास भेजना, राजा का वंश के सर्वनाश की आशंका से चिन्तित होना एवं पाल्हणसी को दुर्ग से निष्क्रमण करने हेतु प्रेरित करना तथा अन्त में रानियों का जौहर व अचलदास का गढ़ की तलहटी में उतर कर अपने जीवन का अन्तिम युद्ध करना आदि वर्णन पूर्णतया ऐतिहासिक नहीं तो और क्या हैं? सिवा 'वचनिका' के उक्त युद्ध का इतना सटीक, साधार और सर्वांगीण विवरण हमें अन्य किस स्रोत से उपलब्ध होता है?

'वचनिका' को इसी विश्वसंनीयता के कारण मालव-इतिहास के अधिकारी विद्वानों ने भी उक्त युद्ध-विवरण हेतु इसे ही अपने आधार-ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। उदाहरणतः श्री यू० एन० डे लिखित 'मध्यकालीन मालवा' पुस्तक में दिया गया गागरोण-युद्ध का वर्णन पूर्णतः वचनिका पर ही आधारित है।[1]

ये वर्णन, कहीं-कहीं निश्चय ही अत्युक्तिपूर्ण हैं, जैसाकि डॉ० टैसीटरी ने आरोप लगाया है। यथा—होशंग को बारह लाख मालवा का चक्रवर्ती बताना, उसके अधीन तेरह लाख सेना होना, उसे उत्तर-दक्षिण व पूर्व पश्चिम का विजेता कहना आदि उल्लेख निरे अतिरंजनापूर्ण ही हैं। यह ठीक है कि

---

1. Mediaeval Malwa; U. N. Dey.

उसने उड़ीसा तक धावा बोलकर वहाँ के राजा सहित अनेक हिन्दू राजाओं को पराभूत किया था तथा गुजरात और बहमनी सुल्तानों तक से लोहा लिया था परन्तु उनसे उसे अनेक बार मुँह की खानी पड़ी थी। अतः उसे दिग्विजेता लिखना निराधार ही है। तथापि ये अतिशयोक्तियाँ काव्योचित होने से क्षम्य हैं।

इस सम्बन्ध में, डॉ० टैसीटरी ने 'वचनिका' में प्रयुक्त 'आलिम गोरी' शब्द का ठीक अर्थ न समझने के कारण इस पर जो अनैतिहासिकता का आरोप लगाया है, वह निर्मूल है, यह हम पूर्व पृष्ठों में सिद्ध कर चुके हैं। इस प्रकार 'वचनिका' में वर्णित तथ्यों एवं घटनाओं पर समग्रता में विचार करने पर हम उनकी ऐतिहासिकता को अमान्य नहीं कर सकते।

2. पात्र व तत्सम्बद्ध संस्थान—

'वचनिका' की ऐतिहासिक विवेचना का दूसरा प्रमुख बिन्दु है—इसमें उल्लिखित पात्र तथा उनसे सम्बद्ध संस्थान। वस्तुतः 'वचनिका' में उपलब्ध यह सामग्री, इसमें गर्भित ऐतिहासिक संदर्भों के कारण अत्यधिक महत्व की एवं मूल्यवान है। कारण, 'वचनिका' में जिन अनेक ज्ञात-अज्ञात पात्रों एवं स्थानों का नामोल्लेख हुआ है, उससे हमें न केवल विवेच्य युद्ध में भाग लेने वाले योद्धाओं के बारे में ही सुनिश्चित जानकारी मिलती है, अपितु तत्कालीन राजनीतिक स्थिति एवं परिवेश की भी एक व्यापक झलक देखने को मिल जाती है। मध्ययुगीन मालव-इतिहास के विद्वानों के लिए 'वचनिका' में प्राप्य योद्धाओं तथा उनके संस्थानों के परिचायक ये उल्लेख निश्चय ही शोधानुसंधान की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे।

हमने पुस्तकान्त में दी गई टिप्पणियों में इनमें से कुछ प्रमुख पात्रों व स्थानों पर ऐतिहासिकता की दृष्टि से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इन प्रमुख पात्रों में उस्मानखां, फतेहखां, गजनीखां, उमरखां, हैबतखां, मलिक मुगीस, खेरला का शासक नरसिंह, रावल गेपा, अचलदास की रानी पुष्पावती व उसके पुत्र पाल्हणसी, धीरा आदि उल्लेखनीय हैं। ये सब पात्र ज्ञात और इतिहास सम्मत हैं। अतः इनकी ऐतिहासिकता को लेकर कोई विवाद नहीं है।

परन्तु इनके अतिरिक्त 'वचनिका' में और भी अनेक पात्रों का नामोल्लेख हुआ है, जैसे मातापुरी (या मातंगपुरी) का लखमराव, नरसिंह के पुत्र

चांदजी-खेमजी, पउली का देवसिंह, देवड़ा समरसिंह, बूंदी का संग्रामसिंह (?) आदि, जो अचलदास के विरुद्ध होशंग की मालव-सेना में सम्मिलित हुए थे। इसी भाँति, इसमें अचलदास के पक्ष में लड़ने वाले उसके अनेक सुभट-सामन्तों का भी नामोल्लेख हुआ है, जैसे बाला का पुत्र पाल्हणसी, भोजदेव का पोमा, महिराज और भीमा, परम यशस्वी राजा जूणसी, धीरा, बाहड़ और कल्याणसिंह, जोतिपुरा का करमसिंह, गोदों में राजधर, सोलंकियों में सत्रसाल, हाडाओं में बींझा-ऊधरण, नाथू डोड, डूंगरबागड़ी आदि-आदि। साथ ही, कवि ने अचलदास के अपने निजी परिग्रह के योद्धाओं का भी उनकी जाति सहित नामोल्लेख किया है, जो उसकी उक्त युद्ध विषयक सूक्ष्म एवं अंतरंग जानकारी का ही प्रमाण है।

इस दृष्टि से, हम वचनिकाकार के गहन एवं व्यापक इतिहास-बोध की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते, जिसने न केवल अपने चरित्र नायक के पक्ष के ही सुभट-सामन्तों की विस्तृत नामावली दी है, बल्कि उसके प्रतिपक्षी सुल्तान होशंग के पक्ष के अमीर-उमरावों तथा हिन्दू राजाओं का भी उतनी ही विशदता से नामोल्लेख किया है, जिसके फलस्वरूप हमें उस युद्ध में भाग लेने वाले उभयपक्षीय योद्धाओं के बारे में इतनी स्पष्ट और सुनिश्चित जानकारी मिल जाती है, जो अन्यत्र अप्राप्य है।

अब, इस सम्बन्ध में यह शंका उठाई जा सकती है कि इनकी ऐतिहासिकता का क्या प्रमाण है? डॉ० टैसीटरी ने इसमें आए एक शब्द 'आलिम गोरी' के आधार पर 'वचनिका' पर काल्पनिक नामों की भर्ती का आरोप भी लगाया है, जिसका हम सप्रमाण निराकरण कर चुके हैं। तथापि, ज्ञात इतिहास या अन्य विश्वस्त स्रोत से पुष्टि हुए बिना यह प्रश्न तो अनुत्तरित ही रहेगा। परन्तु इस विषय में हमारा प्रतिप्रश्न यह है कि कवि के इन उल्लेखों को हमें अकारण असत्य और निराधार मानने का भी क्या अधिकार है? यह तो वैसा ही हुआ कि जब तक कोई व्यक्ति अपने को निर्दोष सिद्ध न कर दे, उसे अनिवार्यत: अपराधी मान लिया जाए? यह ठीक है कि हम कवि द्वारा उल्लिखित इन नामों की सही पहचान नहीं कर पा रहे हैं परन्तु इसमें दोष किसका है? हमारे तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक अज्ञान का या कवि का, जिसने अपने इतिहास-ज्ञान का भरपूर उपयोग करते हुए अपने रचना-दायित्व का निर्वाह किया है? वस्तुत: इसके लिए तो उलटे

हमें कवि का कृतज्ञ होना चाहिए, जिसने इन महत्वपूर्ण सूचनाओं को अपनी कृति में निबद्ध कर अपनी स्तुत्य ऐतिहासिक जागरूकता का परिचय दिया है, अन्यथा हम इनसे सदा के लिए वंचित रह जाते।

यह ठीक है कि कवि अपने वर्णनों में कहीं-कहीं अत्युक्तियों एवं अतिरंजनाओं का दोषी है परन्तु जहाँ तक व्यक्तिगत नामों के उल्लेख का प्रश्न है, उन्हें काल्पनिक या मनगढ़ंत मानने का कोई कारण नहीं। भला कवि काल्पनिक नामों की भर्ती क्यों करेगा? इससे उसका कौनसा प्रयोजन सिद्ध होगा? भूल या प्रमाद से किसी नामोल्लेख में स्खलन हो जाना एक बात है परन्तु रचनाकार पर सचेष्ट असत्य-लेखन का आरोप लगाना तो उसके प्रति सरासर अन्याय ही होगा। अतः बजाय इसके कि हम कवि द्वारा उल्लिखित इन नामों को एकदम असत्य करार दें, हमें चाहिए कि हम धैर्य एवं सहृदयता-पूर्वक तथ्यातथ्य की जाँच करें तथा इनकी ऐतिहासिकता की शोधपरक दृष्टि से छानबीन करके ही अपना निर्णय दें। परन्तु जब तक किन्हीं पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर इनका निर्भ्रान्त रूप से खण्डन नहीं कर दिया जाता, हमें इन्हें प्रामाणिक न सही, संभाव्य सत्य के रूप में तो स्वीकार करना ही होगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अपने प्राचीन एवं मध्ययुगीन इतिहास की पूर्ण, अधिकृत एवं तलस्पर्शी जानकारी हमें अभी नहीं है। अतः अपने ऐतिहासिक ज्ञान की इन सीमाओं से भी हमें अनवगत नहीं रहना चाहिए।

व्यक्ति एवं स्थानों की नामावली के बारे में संशय और अनैश्चित्य का एक कारण प्रामाणिक पाठ-निर्णय की समस्या भी है, जिसके फलस्वरूप विविध प्रतियों में उपलब्ध पाठ-पाठान्तरों में प्राप्त प्रक्षेप के अम्बार से मूलपाठ को खोज निकालना बहुत कठिन होजाता है। साथ ही, डिंगल की प्राचीन शब्दावली तथा उसके कुछ रूढ़ प्रयोगों का अर्थ ठीक से न समझने के कारण भी कभी-कभी नामों की सही पहचान करने में बड़ी भूल होजाती है। उदाहरणतः 'वचनिका' में प्रयुक्त 'दूसरउ विकमाईत' को डॉ० दशरथ शर्मा ने व्यक्तिवाचक संज्ञा समझ कर इसका अर्थ यों कर दिया है—"दूसरा प्रमुख राजा विक्रमादित्य है",[1] जबकि तथ्य यह है कि यह किसी व्यक्ति विशेष का वाचक न होकर

---

1. अचलदास खीची री वचनिका, पृ० 4 ; सं० दीनानाथ खत्री।

नरसिंह के लिए ही प्रयुक्त प्रशस्तिमूलक उपाधि है, जैसाकि व्याख्यान्तर्गत हम स्पष्ट कर आए हैं। कवि ने प्रशस्ति-वर्णन की इसी परम्परा में होशंग को भी 'दूसरउ अलावदोन' कहकर ज्ञापित किया है।[1] अतः इसे लेकर इतिहास में उसका अस्तित्व खोजने की आवश्यकता नहीं है।

'वचनिका' में इन पात्रों के साथ-साथ उनसे सम्बद्ध अनेक संस्थानों का भी उल्लेख हुआ है। ऐतिहासिकता की दृष्टि से इनकी भी प्रायः वही स्थिति है, जो पात्रों की है। 'वचनिका' में उल्लिखित इन स्थानों या संस्थानों में से अनेक ऐसे हैं, जिनकी पहचान हम नहीं कर पा रहे हैं। वस्तुतः इसके दो कारण हैं। पहला यह कि 'वचनिका' में वर्णित युद्ध-घटना को घटित हुए 560 वर्ष से भी अधिक हो गए। अतः समय के इस दीर्घ अन्तराल में हुए राजनीतिक एवं भौगोलिक परिवर्तनों के फलस्वरूप इनमें से अनेक संस्थानों का अस्तित्व लुप्त होजाना या इनके नामरूप में परिवर्तन होजाना कोई अनोखी बात नहीं है। दूसरा यह कि इन उल्लिखित नामों के आधार पर उनकी भौगोलिक पहचान करने की दिशा में कोई गम्भीर प्रयास भी अद्यावधि नहीं किया गया है, जो निश्चय ही एक कष्टसाध्य कार्य है। इन पंक्तियों का लेखक भी इस आरोप से अपने को मुक्त नहीं मानता। ऐसी स्थिति में, जब तक इन नामों की भौगोलिक स्थिति एवं उनकी ऐतिहासिकता की पूरी-पूरी जाँच न कर ली जाए, इनके अस्तित्व को संदिग्ध मानने का कोई औचित्य नहीं है।

3. तिथि—

जहाँ तक तिथिगत प्रामाणिकता का प्रश्न है 'वचनिका' में कवि ने केवल एक स्थान पर तिथि-निर्देश किया है, जो गागरोण के युद्ध की निश्चित अवधि का ज्ञान कराने की दृष्टि से अतीव महत्वपूर्ण है। फारसी तवारीखों से यद्यपि यह तो पता चल जाता है कि गागरोण पर होशंग ने हिजरी सन् 626 (ई० सन् 1423, वि० संवत् 1480) में आक्रमण किया था,[2] तथापि उनसे यह पता नहीं चलता कि उक्त युद्ध कितने दिन चला तथा दुर्ग का पतन कब

1. अचलदास खीची री वचनिका, पृ० 17(1) : सं० दीनानाथ खत्री।
2. तबकाते-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद), 3, पृ० 208-208, 479 एवं तवकाते-फरिश्ता (ब्रिग्स-कृत अंग्रेजी अनुवाद), 4, पृ० 23-25, 282-283

हुआ ? प्रकारान्तर से, दुर्ग के पतन की तिथि ही अचलदास के वीरगति प्राप्त करने की भी तिथि है। उपर्युक्त सूचना हमें हमारी विवेच्य वचनिका से मिल जाती है, जिससे युद्धावधि का सुनिश्चित ज्ञापन होजाता है। 'वचनिका' में कवि का युद्ध विषयक उल्लेख निम्नांकित है—

"इसी परि त्यां लड़तां-लागतां, मरतां-मारतां, जिण महाअष्टमी जुध मातउ थउ, दूसरी अष्टमी आणि संप्रापति हुयी।"[1]

कवि का महाष्टमी से आशय आश्विन शुक्ल 8 से है तथा दूसरी अष्टमी का कार्तिक कृष्णा 8 से। यह महाष्टमी सोमवार, 13 सितम्बर, 1423 को पड़ी थी तथा कार्तिक कृ० 8 सोमवार, ता० 27 सितम्बर सन् 1423 को। इस प्रकार गागरोण का यह युद्ध कुल 15 दिन चला था। तदनुसार अचलदास की मृत्यु-तिथि कार्तिक कृ० 8, संवत् 1480 अर्थात् 27 सितम्बर, सन् 1423 निश्चित हो जाती है।

'वचनिका' का यह साक्ष्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे न केवल गागरोण-युद्ध की अवधि ही, अपितु अचलदास की मृत्यु-तिथि भी सुनिश्चित होजाती है। साथ ही, इससे उक्त युद्ध की तिथि विषयक कुछ विद्वानों की भ्रान्त स्थापनाओं का भी निराकरण होजाता है।

निष्कर्षत: 'वचनिका' पर समग्र दृष्टि से विचार करने पर हम कह सकते हैं कि कवि ने इसमें, काव्योचित सीमाओं में, ऐतिहासिकता के निर्वाह के प्रति अपनी प्रशंसनीय सचेष्टता का परिचय दिया है। इससे अधिक की एक कवि से अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

अन्त में, अपने इन महाकाव्यों का मूल्यांकन करते समय हम यह क्यों भूल जाते हैं कि तथ्य और तिथियों के पैमाने से चाहे चिर अचल, निस्पन्द और एकरूप—इतिहास के सुमेरु-शिखर की ऊँचाई नापी जा सके, किन्तु अनन्त भावोर्मियों से उद्वेलित एवं कल्पनाओं से कल्लोलित काव्य के अगाध रस-सिन्धु की थाह उससे नहीं ली जा सकती !

उपसंहार—

पूर्व विवेचन से यह स्पष्ट होजाता है कि गाडण शिवदास-कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' प्राचीन डिंगल-वाङ्मय की एक महत्वपूर्ण कृति

---

1. वचनिका; 21 (1)

है। इसका यह महत्व अनेकरूपेण है। काव्यरूप की दृष्टि से, 'वचनिका'-संज्ञक विधा में, इसे राजस्थानी साहित्य की आदि वचनिका होने का गौरव प्राप्त है। इतिहास की दृष्टि से, अपने तथ्याश्रित विवरणों तथा इसमें वर्णित युद्ध-घटना पर प्रकाश डालने वाली प्राचीनतम एवं एकमात्र उपलब्ध राजस्थानी काव्य-रचना होने के कारण यह इतिहासकारों के लिए एक प्रथम कोटि के प्रामाणिक एवं आधार-ग्रन्थ के रूप में समादृत हुई है। साथ ही, इसका साहित्यिक महत्व तो सुविदित है ही। वीर अचलदास के अप्रतिम शौर्य तथा उसकी रानियों के अनुपम त्याग के आख्यान द्वारा जहाँ इसमें वीरत्व की विदग्धतम व्यंजना हुई है, वहाँ भाषा की दृष्टि से यह प्राचीन डिंगल की एक प्रमुख एवं प्रतिनिधि रचना के रूप में मान्य हुई है। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से भी इसका महत्व अन्यतम है। कारण, इसमें डिंगल के अनेक ऐसे विशिष्टार्थक शब्द व्यवहृत हुए हैं, जिनकी प्रयोग-परम्परा आज प्रायः निश्शेष हो चुकी है। अतः तत्कालीन भाषा-स्थिति एवं भाषा-स्वरूप का परिचय कराने के साथ-साथ तद्युगीन डिंगल-शब्दावली के अर्थवैज्ञानिक अध्ययन (Semantic Study) का मार्ग प्रशस्त करने की दृष्टि से भी विवेच्य वचनिका का महत्व असंदिग्ध है।

इसके अतिरिक्त, 'वचनिका' में तत्कालीन सामन्ती परिवेश, परम्पराओं राजनीतिक स्थिति, युद्धविधि, युद्धोपकरणों आदि का भी जो आनुषंगिक रूप से चित्रण हुआ है, वह समाजशास्त्र के अध्येता के लिए शोधानुसंधान के नए आयाम प्रस्तुत करता है।

परन्तु, हमारे विचार से, विवेच्य 'वचनिका' के अध्ययन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है—इसके माध्यम से जीवन के उच्चतम आदर्शों एवं शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा। ये मूल्य हैं—शौर्य, स्वाभिमान, स्वातंत्र्य-प्रेम, स्वधर्म-रक्षा, स्वामिभक्ति (आज के सन्दर्भ में कृतज्ञता), वचन-पालन, निस्वार्थ त्याग आदि, जो किसी काल विशेष के लिए ही सार्थक न होकर सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। यह मूल्यधर्मिता ही वस्तुतः राजस्थानी काव्यों की मौलिक विशेषता है; सर्वोपरि सम्पदा है।

यही कारण है कि राजस्थानी काव्य, युग की करवटों के साथ विलीन होने वाला काव्य नहीं, यह तो कालातीत चेतना का चिरन्तन राग मुखरित करने वाला काव्य है, जिसकी संवेदना शाश्वत और सार्वकालिक है। यह मानव की उन महत्तम उपलब्धियों का अमिट आलेख है, जो जीवन की

नश्वरता का तिरस्कार करता हुआ उसे सदा अविनश्वर की प्राप्ति का सन्देश देता है। काल के क्रीड़ा-कन्दुक मानव को अपनी पार्थिव काया को फूँक कर यशोकाया के रूप में कालजयी होने की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत वचनिका सहित इन वीर-काव्यों में निबद्ध यह मूल्यधर्मिता निश्चय ही, इनके मूल्यांकन की एक प्रमुख कसौटी है, जिसकी उपेक्षा कर न हम इन काव्यों और न इनके चरित्रनायकों के प्रति ही न्याय कर सकेंगे, जिन्होंने इनकी रक्षा व निर्वाह हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था।

आज, जबकि अतीत की वे गौरवमयी परम्पराएँ विस्मृत होती जा रही हैं, शौर्य व पराक्रम के वे उज्ज्वल चित्र धुँधले पड़ते जा रहे हैं तथा स्वाभिमान और कर्त्तव्यनिष्ठा के वे प्राचीन मूल्य विघटित होते जारहे हैं, शिवदास गाडण की यह वचनिका हमारे उच्चतम सनातन सांस्कृतिक आदर्शों का उद्घोष करती हुई अपने उस वीर चरित्रनायक की याद दिला रही है, जो महाकाल की छाती पर वीरत्व का अमिट अभिलेख बन चिर निद्रा में सो गया है, तथापि जिसकी यशोगाथा समय-सिन्धु के बीच खड़े किसी अक्षय ज्योति-स्तम्भ सी युग के दुरन्त प्रवाह को आज भी चुनौती दे रही है!

डॉ० शंभुसिंह मनोहर

———

अचलदास खीची री वचनिका
गाडण सिवदास री कही

।। दूहा ।।

तउँ वीसहथि विरोळि, तइँ वीसहथि विरोळियइ ।
भावठि भामइ तू तणइ, हिज्यउँ सु काँई हिगोळि ।। 1 ।।

व्याख्या—

कवि मंगलाचरण में शक्ति की वन्दना करता हुआ कहता है—हे बीस भुजाओं वाली देवी ! तू ही [असुरों का] मर्दन करती है । तूने ही बीस हाथों वाले [रावण] का मर्दन किया था (अर्थात् तेरी ही अनुकम्पा से दुर्जेय रावण पराभूत हुआ था) । हे देवी ! हे हिंगुलाज ! तेरी इच्छा [के बिना] क्या होता है ? (अर्थात् तेरे कृपा-प्रसाद के बिना कुछ भी सम्भव नहीं) ।

'भावठ' को कष्ट या संकट के अर्थ में ग्रहण करने पर पंक्ति की व्याख्या यों भी की जा सकती है—हे हिंगुलाज ! तेरी कृपा होने पर भला क्या कष्ट या संकट हो सकता है ?

शब्दार्थ—

तऊँ=तू । **वीसहथि**=बीस भुजाओं वाली देवी ।

उदा०—हाथ नमो तु **वीसहथि**, जुधि जुधि कीधी जैत ।[1]

विरोळि=दलन या मर्दन करती है । उदा०—

मुरधरा **विरोळे** ले आयो महा भड,
सिव तणी नार सिणगार सूधी ।[2]

---

1. पीरदान लालस-ग्रन्थावली, पृ० 20, सं० अगरचन्द नाहटा ।
2. गीत रामसिंह खंगारोत सींगपुरी रौ ।

तइँ=तूने । **बीसहथि**=बीस भुजाओं वाले—रावण । उदा०

1. पुहँतो लंक **बीसधरपाणी,**
   वाग असोक सिया बहसाणी ।[1]
2. **वीसभुजा** दस सीस ज, बीसे खडग संमाहि ।[2]

भावठि=1 इच्छा, अभिलाषा । उदा०

1. **भावठि** छंडी भामिनी ! लक्ष्मी जमलि लिखावि ।[3]
2. कुण जांणे म्हे जोगी क भोगी
   कुण जांणे म्हे आप संजोगी ।
   कुण जांणे म्हे **भावठि** भोगी ।[4]

2. 'भावठ' या 'भावठि' का अर्थ कष्ट या संकट भी होता है, यथा—
   1. 'जेहो' भारहमल्ल रो, **भावठ** भंजणहार ।[5]
   2. थे तो भूखां नी **भावठ** भंजउ ।[6]
   3. सहियवि **भावठि** कम्म दोसि, जिम बंभ चकीसरि ।[7]
   4. तुम नामे सहु **भावेठ** भाजे, तुम नामे सुख संपति छाजे ।[8]

भामइ=भामा, सुन्दरी, देवी । **तू तणइ**=तेरी । **हिज्यउँ**=होता है; 'हूजइ' का रूपभेद । **काँई**=क्या । **हिंगोळि**=हिंगुळाज, देवी का नाम । विविध शक्तिपीठों की विविध नामधारिणी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं । तंत्रचूड़ामणि में इन शक्तिपीठों का सविस्तार वर्णन हुआ है । उनसे विविध भौगोलिक स्थलों का भी संकेत मिलता है । तदनुसार "सिन्धुदेश में हिंगुला नामक स्थान पर शक्ति के ब्रह्मरन्ध्र का पात हुआ था । वहाँ शक्ति के हिंगुला नाम का ही पूजन होता है । बाद में चारणों में अवतार लेने वाली एक देवी हिंगुलाज

---

1. रघुनाथरूपकगीतां रौ, पृ० 135; सं० महतावचन्द्र खारैड ।
2. रामायण : मेहोजी-कृत, पृ० 131, सं० डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ।
3. माधवानल–कामकंदला-प्रबन्ध ।
4. जाम्भोजी : विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य : भाग 1, पृ० 370, सं० डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ।
5. बांकीदास-ग्रन्थावली, भाग 3, पृ० 5, सं० महतावचन्द्र खारैड़ ।
6. विनयचन्द्र-कृति-कुसुमांजलि, पृ० 54, सं० भँवरलाल नाहटा ।
7. स्थूलिभद्रकाकादि : पृ० 15, सं० आत्माराम जाजोदिया ।
8. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृ० 216, सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ।

नाम से प्रसिद्ध हुई और वह आद्याशक्ति का रूप मानी गई। हिम अथवा सोमभाव को प्राप्त होने वाली देवी को हिंगुला कहते हैं—

हिमं गच्छतीति हिंगु।"[1]

हिंगुलाज का ही लघु रूप हिंगोळ डिंगल काव्यों में अति प्रचलित है—

1. हिंगोळ सकतिहर निमो नरेसर।[2]
2. हंसे हिंगोळा कंप सुर, थरहर धूजै थट्ट।[3]

पउढि म परहरियाह, आरँभ करि ऊपरि असुर।
देवि दुवार थियाह, वेनतियाइत बीसहथि॥ 2॥

व्याख्या

हे देवी! तू [योगनिद्रा के रूप में] शयन न कर तथा [निद्रा] त्याग कर असुरों (आसुरी शक्तियों) पर युद्धारम्भ कर। हे बीस भुजाओं वाली! मैं इसी विनती के साथ तेरे द्वार पर आया हूँ।

शब्दार्थ—

पउढि म=शयन न कर। मुद्रित संस्करणों में इसे एकात्मक मानकर अर्थ किया गया है, परन्तु हमारे विचार से यहाँ दुर्गासप्तशती में वर्णित भगवती योगनिद्रा के उस रूप का स्तवन है, जो भगवान् विष्णु की अभिन्न शक्ति—महामाया है तथा जिससे यह समस्त चराचर जगत विमोहित है। यह भगवान् विष्णु के नेत्रों में निवास करती है तथा इसके फलस्वरूप वे निद्राधीन रहते हैं। इसीलिए देवी के अनेक नामों में कालरात्रि और मोहरात्रि भी हैं—

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।[4]

तथा—

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता[5]

कहकर उसकी स्तुति भी की गई है।

---

1. शक्ति का स्वरूप और उसकी उपासना, पं० गोपालनारायण बहुरा : परम्परा, भाग 20।
2. पीरदान लालस-ग्रन्थावली, पृ० 21, सं० अगरचन्द नाहटा।
3. माताजी-री-वचनिका, पृ० 39, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
4. दुर्गासप्तशती, प्रथम अध्याय, 79।
5. वही, तंत्रोक्त देवीसूक्तम्, 9।

'पउढिम' को एकात्मक मानने पर अन्यार्थ यों भी किया जा सकता है—

हे देवी ! देवों ने अपने शौर्य का परित्याग कर दिया है। अर्थात् वे शौर्य व पराक्रम से हीन होगए हैं। अतः अब तू ही असुरों से युद्ध कर।

उक्तार्थ में 'पउढिम' के प्रयोग का उदाहरण—

पुरुसारथ **पउढिमपणउ.** जाणइ युगति विवेक ।[1]

परहरियाह=त्याग कर, छोड़कर। **आरंभ**=युद्धारंभ, युद्धोपक्रम।
डिंगल काव्यों में 'आरम्भ-पारंभ' शब्द प्रसंगानुसार युद्ध, युद्ध की तैयारी या चढ़ाई के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं; केवल शुरु करने के शाब्दिक अर्थ में नहीं। उदाहरण—

1. छिलै सेन साहण समँद कमँघ ऊपरि छत्राँ,
   ऊजला करै **आरंभ** अनिमंध ।[2]
2. रामचंद सिरि लंक कीध जांनै **आरंभह** ।[3]

थियाह=तेरे।

विशेष—

दुर्गासप्तशती में विष्णु की इस महाशक्ति योगनिद्रा के विषय में एक कथा आती है कि जब कल्पान्त में सम्पूर्ण जगत एकार्णव में लीन होरहा था और भगवान् विष्णु शेष-शय्या पर योगनिद्रा का आश्रय ले सो रहे थे, तब उनके कानों की मैल से मधु और कैटभ नामक दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो विष्णु के नाभिकमल पर आसीन ब्रह्मा का वध करने को उद्यत होगए। प्रजापति ने उन दुष्ट और भयानक असुरों को अपने समीप आया देख तथा भगवान् विष्णु को निद्राधीन देख उन्हें जगाने के लिए उनके नेत्रों में निवास करने वाली भगवती योगनिद्रा का स्तवन किया, जो इस विश्व की अधीश्वरी, जगत को धारण करने वाली तथा ज्योतिःस्वरूप भगवान् विष्णु की अनुपम शक्ति है—

---

1. मा० का० प्र० : राज० स० को०, तृ० खंड; प्र० जि० पृ० 2603; सं० सीताराम लाळस।
2. गीत महाराजा जसवन्तसिंह रौ : गजगुणरूपकबंध, परिशिष्ट, पृ० 281, सं० सीताराम लाळस।
3. वही, पृ० 187।

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।[1]
तुष्टाव योगनिद्रां नामेकाग्र हृदयस्थितः ।। 69 ।।

ब्रह्मा के स्तवन से तुष्ट हो भगवती योगनिद्रा विष्णु के सर्वांग से निकल कर ब्रह्मा के समक्ष खड़ी होगई। योगनिद्रा के प्रभाव से मुक्त होते ही भगवान् विष्णु शेष शय्या से जाग उठे तथा उन दुष्ट राक्षसों का वध किया। इस प्रकार जगत के स्रष्टा, पालक व संहारकर्ता भगवान् विष्णु भी जिस योगनिद्रा के अधीन हैं, उसकी महिमा व स्तुति का गायन कौन कर सकता है ?

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।[2]
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।। 84 ।।

यहाँ 'पउढि म' के द्वारा कवि उसी महामाया योगनिद्रा के जागरण का आह्वान करता है, जो असुरों के विनाश का हेतु है।

यों 'पउढिम' को एकात्मक मानने पर शौर्य अथवा पराक्रमवाची अर्थ भी संगत है।

महिषासुर जू माइ, मुर जण महिषासुर मरइ ।
सुर छूटइ सुरराइ, वार तुहाळी वीसहथि ।। 3 ।।

व्याख्या—

हे माँ ! जिस दुष्ट महिषासुर के अत्याचार से त्रिभुवनवासी मर रहे थे, वह महिषासुर, हे सुरेश्वरी ! हे बीस भुजाओं वाली ! तेरे ही प्रहार से मारा गया, जिससे देवों को भी त्राण मिला (अथवा, तेरे प्राकट्य से ही सुरराज इन्द्र सहित देवतादि संकट-मुक्त हुए)।

शब्दार्थ—

मुर जण=त्रिभुवनवासी (मुर=तीन)।

मुर-भवण सालि मेटियो अवस, रगतासुर पौढण धरण ।[3]

सुर छूटइ=देवता संकट-मुक्त हुए। **सुरराइ**=1. सुरेश्वरी। 2. सुरेश्वर, इन्द्र।

1. दुर्गासप्तशती : प्रथमोऽध्याय।
2. वही।
3. माताजी री वचनिका, पृ० 81, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

उदा०—वासर पंच सहस्सं, महिसासुर भारथ हणियं ।[1]
किय सुरपति सरस्सं, निरसंजोति निसिचर कियं ।
वार=1. प्रहार, 2. प्राकट्य या लीलावतरण से । तुहाळो=तेरे ।

विशेष—

देवी का महिषासुर-मर्दिनी के रूप में स्तवन करते हुए कहा गया है—
महिषासुर निर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः ।[2]

तथा :—
मोटे असुर तणां मद मोड़ै, तु मैषासुर भालि मरोड़ै ।[3]

जपइ तुहाळइ काळि, डहडहिया डमरू तणा ।
छाडे असुर सु आळि, तइ वा भारथि वीसहथि ।। 4 ।।

व्याख्या—

तेरे कालरूप डमरू की डिम्-डिम् ध्वनि सुनते ही सब [भय-त्रस्त हो] तेरी आराधना करने लगते हैं । हे बीस भुजाओं वाली ! युद्ध में तेरा सामना होते ही असुर लड़ना छोड़ भाग खड़े होते हैं ।

शब्दार्थ—

जपइ=स्तुति या आराधना करते । **तुहाळइ**=तुम्हारे । **काळि**=कालरूप । **डहडहिया**=डिम्-डिम् ध्वनि करते; ध्वन्युकरणात्मक शब्द । **छाडे**=छोड़ देते हैं, भाग खड़े होते हैं । **आळि**=युद्ध, लड़ाई ।
उदा०—**आळ** भयंकर कांन अलवै,
टाळै नहीं कांइ कंटाळ ।[4]
तइवा=तुझसे, तेरे साथ । **भारथि**=युद्ध में

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित संस्करण में निर्देशित B प्रति में दूहा नं० 4 और 5 के बीच में यह दूहा है—

कैरव कोड मिलेह विठ्ठो है वा पुल जही ।
पांचे ही पांडव केह, वांसै हुंती वीसहथ ।।

---

1. माताजी री वचनिका, पृ० 25, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
2. दुर्गासप्तशती (अर्गलास्तोत्रम्) 4
3. पीरदान लाळस-ग्रन्थावली, पृ० 19, सं० अगरचन्द नाहटा ।
4. गीत राव रायपाल् रौ : गजगुणरूपकबंध : परिशिष्ट, पृ० 246, सं० सीताराम लाळस ।

रामाइण ही राम, कीयउ जे हूँती कन्हइ।
सकति विहूणउ स्याम, विढण न होयइ वीसहथि ।। 5 ।।

राम ने [रावण से] जो भीषण युद्ध किया [तथा जिसमें वे विजयी हुए वह इसीलिए कि] उसमें तुम उनके समीप थी; उनकी पृष्ठपोषिका थी। अर्थात् तुम्हारी ही सहायता से राम ने उस दुर्धर्ष संग्राम में रावण पर विजय पाई। हे बीस भुजाओं वाली ! शक्ति से रहित श्याम (राम) युद्ध में सफल नहीं हो सके थे। अर्थात् हे महाशक्ति ! तुम्हारे ही सान्निध्य से राम युद्ध में रावण को पराभूत कर सके थे।

शब्दार्थ—

रामाइण=राम-रावण युद्ध, जो रूढ़ार्थ में भीषण या दुर्धर्ष संग्राम का वाचक होगया है। डिंगल-काव्यों में 'रामाइण', 'महाभारथ' आदि शब्द केवल राम-रावण-युद्ध या कौरव-पाण्डव-युद्ध का ही ज्ञापन न कर 'महाभीषण संग्राम' के अर्थ में रूढ़ होगए हैं, जैसाकि निम्नांकित कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होजाएगा—

1. बारहीउ गोल्हण आदरइ, ए राउत **रामायण** करइ।[1]
2. सवि भूझार खड्ग वावरइ, मारी म्लेछ **रामायण** करइ।[2]
3. ईडरवइ पण्डर वेस सरिसु, रणि **रामायण** रणमल्ल करइ।[3]

हूंती=थी। **कन्हइ**=पास, पृष्ठपोषिका या सहायिका के रूप में। **शक्ति**=देवी, शिव की अभिन्न सहचरी महाशक्ति से आशय है। **विहूणउ**=विहीन। **स्याम**=राम। **विढण**=युद्ध।

विशेष—

प्रसिद्ध है कि रावण पर विजय न पा सकने से निराश हुए राम ने जाम्बवान की सलाह पर शक्ति की आराधना कर उसे तुष्ट किया था, जिसके फलस्वरूप देवी ने आविर्भूत हो उन्हें विजयी होने का वरदान दिया। महाकवि निराला ने अपनी 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक कविता में इस प्रसंग का अत्यन्त ओजस्वी वर्णन किया है। प्रस्तुत दोहे में राम द्वारा शक्ति को प्रसन्न किए जाने के उसी प्रसंग की ओर संकेत है।

---

1. कान्हडदे-प्रबन्ध, पृ० 219, सं० कांतिलाल बलदेवराम व्यास।
2. वही, पृ० 223
3. रणमल्ल-छंद, श्रीधर-कृत, प्रा०रा०गी०, भाग 6, पृ० 51, सं० गोवर्द्धन शर्मा।

शिव और शक्ति की अनन्यता का प्रतिपादन करते हुए आद्य शंकराचार्य कहते हैं—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं[1]
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।

इसी भाँति, मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा है कि शक्ति से रहित शिव अपूर्ण हैं—

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्ति रहितः शिवः[2]

'सिद्धसिद्धान्त संग्रह' में भी ठीक यही बात कही गई है

शिवोऽपि शक्ति रहितः कर्तुं शक्तो न किंचन्[3]

जैन-वाङ्मय में भी इस मान्यता की अभिव्यक्ति हुई है । कवि बूचराज रचित 'चेतन पुद्गल धमाल' में उल्लेख है—

कहा सकति सिव बाहरी, सकति विन सिउ कांइ[4]

2. वात

इसी ताइ देवी । धणि, कणि, साहणि, पूत-परिवार, उदउ-उछाह री देवणहारि । तास गुण नमो चलणाइ ।

वैणा पुस्तक धारिणी, कासमीर कंदरि वसंति ।
गीत नाद गुण गाह, दीण देखि कवियण दियंति ।।

व्याख्या—

ऐसी वह देवी है । धन, धान्य, साधन (अश्व-गजादि वाहन) पुत्र-परिवार तथा उदय (उत्कर्ष) एवं उल्लास की दात्री । उसके [उपर्युक्त] गुणों का स्मरण करते हुए मैं उसके चरणों की वंदना करता हूँ ।

वह वीणा-पुस्तक धारिणी है । काश्मीर की कंदरा में निवास करती है । कविजनों की प्रार्थना पर उन्हें गीत (कवित्व) नाद (संगीत) गुण तथा यश (गाह=गाथ) की देने वाली है ।

---

1. आनन्द-लहरी, 1, शंकराचार्य । टीकाकार स्वामी शिवानन्द, पृ० 17
2. कौलज्ञाननिर्णय : मत्स्येन्द्रनाथ
3. सिद्धसिद्धान्तसंग्रह ।
4. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, पृ० 96, सं० डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ।

शब्दार्थ—

ताइ=वह। **धणि**=धन। **कणि**=धान्य।

उदाहरण—धण कण संचण सव्व वियूर।[1]

साहणि=साधन, अश्व-गजादि वाहन। डिंगल-काव्यों में 'साहण' शब्द एकान्ततः 'अश्व' के अर्थ में भी रूढ़ होगया है। यथा—

1. पयदल नह पार, संख्या नह **साहण**।[2]
2. साहणी आण **साहण** उजाळ।[3]

परन्तु यहाँ यह अपने व्यापक अर्थ अश्व, गज, रथादि वाहनों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण—कटक सनाहु हाथी, घोड़ा, **साहण** संष न पार।[4] इस शब्द पर डॉ॰ टैसीटरी की टिप्पणी द्रष्टव्य है—

"सद्धन' A Poetical form for 'साधन', the archetype, I believe, of Dingal साहण; a means of conveyance, vehicle, horse, elephant, camel, cart etc.'[5]

पूत=पुत्र। **उदउ**=उदय, उत्कर्ष। **उछाह**=उत्साह, उल्लास। **तास**= उसके। **चलणाइ**=चरणों की। मध्ययुगीन डिंगल काव्यों में 'र' की ध्वनि के कभी-कभी 'ल' में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति देखी जाती है। जैसे 'सरिता' के स्थान पर 'सलिता'। यथा—

लहरी भ्रमरी रस की **सलिता**।[6]

वैण=वीणा। **कंदरि**=कंदरा, गुहा। **गाह**=यश, गाथ।[7]
दीण=दीन, अभ्यर्थी। **कवियणां**=कविजनों को।

विशेष—

सरस्वती वन्दना के इस छन्द को मिलाइए—

1. अठदल कमल सरोवरु वासु,[8]
   कासमीरपुर लियो निकासु।

---

1. जिणदत्त-चरित, पृ॰ 15, सं॰ डॉ॰ मा॰ प्र॰ गुप्त एवं डॉ॰ कस्तूरचन्द कासलीवाल।
2. महाराणायशप्रकाश, पृ॰ 27, सं॰ ठा॰ भूरसिंह मलसीसर।
3. गजगुणरूपकबंध, पृ॰ 209, सं॰ सीताराम लाळस।
4. कान्हड़दे-प्रबन्ध, पृ॰ 38, सं॰ प्रो॰ कांतिलाल ब॰ व्यास।
5. छंद राउ जइतसी रउ : नोट्स, पृ॰ 98, सं॰ डॉ॰ टैसीटरी।
6. गुण-विजै-व्याह, पृ॰ 72, परम्परा, सं॰ डॉ॰ नारायणसिंह भाटी।
7. अवधानमाला।
8. प्रद्युम्न-चरित, पृ॰ 1, सं॰ पं॰ चैनसुखदास एवं डॉ॰ कस्तूरचन्द कासलीवाल।

2. कासमीर मुख मंडण देवी,[1]
वाएसरी पाल्हणु पणमेवी।

महाकवि बिल्हण ने भी कश्मीर को शारदा का देश कहकर अभिनंदित किया है —

सहोदराः कुंकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः।[2]
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।

गुजरात के सुल्तान महमूद बेगड़ा के संस्कृत शिलालेख में भी मंगलाचरण में 'काश्मीरवासिनी देवी' का उल्लेख हुआ है, जिस पर टिप्पणी करते हुए पं० गोपालनारायणजी बहुरा लिखते हैं—"सम्भवतः यह ब्राह्मी सरस्वती देवी है क्योंकि गुजरात के एक लेखक चन्द्रप्रभसूरि ने भी अपने 'प्रभावक चरित' में 'देवी काश्मीरवासिनी' का प्रयोग करते हुए बताया है कि हेमचन्द्र ने काश्मीरवासिनी ब्राह्मी देवी को प्रसन्न किया और सिद्धसारस्वत होगया।"[3]

3. दूहा

साइ सारदा मनि सँवरि, बाँधउँ ग्रंथ अपार।
सूरति राखउँ अचळ कउ, खउँदालिम्म सिकार।।

व्याख्या—

उसी शारदा का मन ही मन स्मरण कर मैं इस अतुल [कीर्तिशाली] ग्रंथ की रचना करता हूँ तथा [काव्य के चरित्रनायक] वीर अचलदास के स्वरूप को हृदय में धारण करता हूँ, जो बादशाह के आक्रमण का शिकार हुआ।

शब्दार्थ—

साइ=उसी (ऊपर जिसकी महिमा का वर्णन किया गया है)। **सँवरि**=स्मरण या ध्यान कर। **बाँधउ**=रचना करता हूँ, काव्यबद्ध करता हूँ। **सूरति**=सूरत स्वरूप। उदा०—मैं परणंती परखियो, **सूरति** पाक सनाह।[4]

---

1. नेमिनाथ-बारहमासा, पाल्हण-रचित, परम्परा, भाग 12, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
2. विक्रमांकदेवचरितम्, सर्ग 1, श्लोक 21, पृ० 17, पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज।
3. राजविनोदमहाकाव्यम्, पृ० 28, फुटनोट; सं० पं० गोपालनारायण बहुरा।
4. हालाँ-झालाँ री कुंडलिया (25), सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

खउँदालिम्म=बादशाह (खुदा-ए-आलम का अपभ्रंश)। यहाँ मालवे के सुल्तान होशंगशाह से अभिप्राय है। **सिकार**=शिकार, आक्रान्त।

4. वात

अेक सीह नइ पाखरचउ। सूर नै सिहाइति आवरचउ। पंचाम्रत नै अमी परगरचउ। महादान आछइ घड़इ। दूध माँहि साकर पड़इ। सोनउ नइ सुवास। अेक अचल नै कथइ सिवदास।

अब चारण कहइ—जी, अे बडी बडाई तउ आपणपाहइ पूछइ न हइ? सो अेतरइ हिजु कारणइ। आगिलउ राजा सभा सहित सुचित हुइ सुणाइ तउ सुकवि-कुकवि की पारिखा जणाइ ॥ 2 ॥

व्याख्या—

[ग्रन्थ-रचयिता शिवदास कहता है कि वीर अचलदास को यह कथा पहले ही विशिष्ट है और फिर मेरे द्वारा कथित होकर तो द्विगुणित विशिष्ट होगई है, वैसे ही जैसे—]

एक सिंह हो और फिर पाखर (कवच) से युक्त होजाए (अर्थात् सिंह पहले ही पराक्रमी होता है और फिर यदि कवचित होजाए तो उसके पराक्रम का कहना ही क्या?)। शूरवीर हो और फिर अपने सहायकों (?) से आवृत हो अथवा शस्त्रादि उपकरणों से सज्जित हो। (अर्थात् शूरवीर अपनी रक्षा तथा शत्रुओं का संहार करने में वैसे ही समर्थ होता है और यदि वह अपने सहायक योद्धा-दल से आवृत हो तो फिर उसका पराक्रम अमोघ होजाता है)। पंचामृत हो और अमृत से संयुक्त होजाए। महादान दिया जाए और वह भी शुभ घड़ी में। दूध हो और उसमें शक्कर मिल जाए। सोना हो और सुगंध से युक्त होजाए। इसी भाँति, वीराग्रणी अचलदास की यह शौर्य-गाथा और फिर शिवदास द्वारा कही जाए!

विशेष—

अन्तिम पंक्ति में कवि के आत्म गर्व का स्वर द्रष्टव्य है, जो निराधार नहीं। यह मिथ्या आत्मश्लाघा से प्रेरित दर्पोक्ति नहीं है, अपितु अपनी प्रतिभा से परिचित कवि के आत्मविश्वास का उद्घोष है, जो अभिनंद्य है। कवि की कृति उसके इस आत्मकथन की सत्यता की पुष्टि करती है।

वैसे भी, सत्कवि से ही राजा का यश फैलता है, जैसाकि महाकवि बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरित में कहा है—

लङ्कापते संकुचितं यशो यद् यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।[1]
स सर्व एवाऽऽदिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।।

अर्थात् "लंकेश्वर रावण की कीर्ति न फैल सकी, जबकी दशरथनंदन राम यश के भागी हुए। यह सब आदि कवि वाल्मीकि का ही प्रताप है। अतः राजाओं को कभी भी कवियों को कुपित नहीं करना चाहिए।

शब्दार्थ—

नइ=और। **पाखरचउ**=पाखर या लौह-कवच से युक्त, कवचित। द्विगुणित वैशिष्ट्य-वर्द्धन के दृष्टान्त-रूप में यह तथा इस प्रकार की उक्तियां मध्ययुगीन राजस्थानी काव्यों में प्रचुरता से मिलती हैं। यथा—

1. एक सीह अनइ पाखरीउ, भरहेसर नइं नइं परवरीउ ।[2]
2. पहिली ही सीह, वळे पाखरियउ ।[3]
3. एक हरि अनै पाखरचौ, एक सर्प अनै पंखाळो ।[4]

× × ×

एक खीर अनै साकर-कपूर। एक घेवर अनै प्रीस्या भरपूर।

4. आगइ पंचायण पाखरिउ, आगइ पन्नग पंखा वरिउ ।[5]

'पाखर', युद्ध में घोड़ों-हाथियों को उनकी रक्षार्थ पहनाई जाती थी—

कटक मांहि हाथी **पाखरिया**, पटा दंतसूलि घाल्या ।[6]

कान्हडदे-प्रबन्ध में ऐसी पंचवर्णी पाखरों का उल्लेख हुआ है।[7] लक्षणा से 'पाखर' शब्द 'घुड़सवार सेना' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है—

दुहु दिसि पाखर उठ्ठ मांझ संगाम भेट हो ।[8]

---

1. विक्रमांकदेवचरितम्, सर्ग 1/27; पृ० 22; सं० पं० विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज।
2. भरतेश्वर-बाहुबली-रास, शालिभद्र सूरि, आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, पृ० 43, सं० डॉ० हरीश।
3. महादेव-पारवती री वेलि, (339) सं० रावत सारस्वत।
4. सभा-शृंगार, पृ० 267, सं० अगरचन्द नाहटा।
5. सदयवत्सवीरप्रबंध; पृ० 7; सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार।
6. कान्हड़दे-प्रबन्ध, पृ० 17।
7. वही, पृ० 44-45।
8. कीर्तिलता, पृ० 288, सं. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।

सूर=शूरवीर; शूर की परिभाषा शुक्रनीति में यों की गई है—

समितौ स्वात्मकार्ये वा स्वामिकार्ये तथैव च।[1]
त्यक्त्वा प्राणभयं युध्येत्स शूरस्तवविशंकितः ।।32।।

अर्थात् जो निश्शंक होकर युद्ध में अपने या स्वामी के हित के लिए प्राण जाने के भय को त्याग कर युद्ध करता है, वही शूर कहलाता है। **सिहाइति**=सहायकों। 'सिहाइ' शब्द सहायक के अर्थ में डिंगल-काव्यों में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुआ है :—

सावतरी सीता सुर सामणि, साधूड़ां री हुवे **सिहाई**।[2]

भाव यह कि शूरवीर हो और फिर अपने सहायकों या शस्त्रादि उपकरणों से रक्षित हो तो और भी दुर्जेय होजाता है। मिलाइए—

अेक योद्धा अनइं शस्त्रे अजित ।[3]

आवरचउ=आवृत, धेरा हुआ, रक्षित। **पंचाम्रत**=देवपूजार्थ अर्पित किए जाने वाले पाँच मिष्ट पदार्थों—दुग्ध, शर्करा, घृत, दधि व मधु का सम्मिश्रण। **अमी**=अमृत। **परगरचउ**=पगा हुआ, संयुक्त (सं० परिगलित)। **महादान**=ग्रहण आदि पर्वों पर दिया जाने वाला दान, जिसका अत्यधिक माहात्म्य है तथा जो साधारण दशा में दिए गए दान से सहस्र गुना पुण्य-फलदायी है। पृथ्वीराज-रासो में महाराज सोमेश्वर द्वारा चन्द्रग्रहण के अवसर पर यमुना तट पर षोडश प्रकार का दान दिए जाने का उल्लेख है, जिसे कवि ने उनके लिए मोक्षमार्ग प्रशस्त होने का हेतु माना है। रासोकार ने इन निम्नांकित सोलह वस्तुओं को 'महादान' की संज्ञा दी है—[4]

कनक-तुला, हिमगर्भ, पुनित ब्रहमंड दान करि।
कल्पना-तरु, गउ सहस, कामधेनहि, कंचन धरि ।।

कनक अस्व, रथ कनक, पुनित हस्ती हल कंचन।
मेर सहित धर कनक, विश्व चक्के दे सुख संचन ।।

हीरन्यलता सर गिरि सहित, रत्न धेन महाभूत घट।
इय महादान सोमेस नृप, मुकत्ति पूरि दिय जमुन तट ।।

---

1. शुक्रनीति; पृ० 46; सं. पं. ब्रह्मशंकर मिश्र।
2. पीरदान लालस-ग्रन्थावली, पृ. 22, सं. अगरचन्द नाहटा।
3. सभाशृंगार, सं० वही।
4. पृथ्वीराजरासो, तृतीय भाग, छंद 31, पृ० 19, सं. कविराव मोहनसिंह।

अग्निपुराण[1] और आईने-अकबरी[2] में भी षोडश महादानों की यही नामावली दीगई है।

कान्हडदे-प्रबन्ध के रचयिता ने भी चन्द्र और सूर्यग्रहण के अवसर पर दिए गए दान को महादान की संज्ञा दी है—

सोम सूर कइ राहु गिलंतइ **महादान** को लीधां।[3]

इस पर डॉ॰ दशरथ शर्मा की टिप्पणी है—

"The Mahadans are—giving gold, horses, sesamum, elephants, maids, chariots, land, houses, brides and dark-brown cows in charity."[4]

आछइ=अच्छी, श्रेष्ठ, शुभ। **घड़इ**=घड़ी, मुहूर्त। यहाँ अभिप्राय यह है कि महादान हो और फिर श्रेष्ठ घड़ी या शुभ मुहूर्त्त में दिया जाए, ताकि द्विगुणित फलदायी हो। श्री दीनानाथ खत्री ने 'घड़इ' का अर्थ 'घड़े में' किया है, जो असंगत है। कारण, महादान के अन्तर्गत तो स्वर्ण-दान, गौ-दान, गज-दान आदि सभी आते हैं, जो घड़े में कैसे भरे जाएँगे? **सुवास**=सुगंध। **कथइ**=कहता है।

व्याख्या—

पुनः चारण (शिवदास) कहता है—[आप कहेंगे] जी, यह तो बड़ी बड़ाई (आत्म-प्रशंसा) है, तो क्या इसके बिना अपनी पूछ ही नहीं होगी?

सो इसका इतना ही कारण है (अर्थात् इस आत्मकथन का केवल इतना ही प्रयोजन है) कि आगे होने वाले (भावी) राजागण अपनी सभा-सहित इसे (प्रस्तुत ग्रन्थ को) सुचित्त होकर सुनें ताकि मेरे सुकवि या कुकवि होने की परीक्षा होजाए।

---

1. अग्निपुराणम् 210/1—4 पृ॰ 397।
2. आईने-अकबरी; भाग 1; पृ॰ 306—307।
3. कान्हडदे-प्रबंध; (166) पृ॰ 34; सं॰ प्रो॰ कांतिलाल ब॰ व्यास।
4. Rajasthan Through The Ages; P. 725; Dr. Dashrath Sharma.

शब्दार्थ—

अे=यह। **बडी बडाई**=बहुत शेखी भरी बात, आत्म-प्रशंसापूर्ण कथन। **आपणपाहइ**=अपनी अर्थात् स्वयं की। उदा०—

आपणपइ प्रभु होइयइ, कइ प्रभु कीजइ हत्थि।[1]

पूछइ=पूछ, मान-प्रतिष्ठा। **अेतरइ**=इतना। **हिज**=ही। **आगिलउ**=आगे होंने वाले, भावी। **सुचित**=दत्तचित्त, ध्यानपूर्वक। **पारिखा**=परीक्षा, महत्व का ज्ञान।

विशेष—

कवि की इस आत्म-प्रशंसा का मर्म समझने के लिए हमें अपनी कल्पना में किंचित् मध्ययुगीन सामन्ती दरबार का चित्र उभारना होगा, जब प्रायः राजसभाओं में काव्य का वाचन ही कवि-कृति के प्रकाशन का सर्वोत्तम माध्यम था एवं उस उपस्थित राजन्य-मंडली द्वारा (जो अनिवार्यतः विद्वद्मंडली नहीं होती थी!) उसकी मुक्तकंठ प्रशंसा ही उसके महत्वांकन का सर्वोपरि प्रमाण। आज की भाँति तब कवि अपनी रचना को न मुद्रित रूप में देख पाते थे न किसी सहृदय समीक्षक द्वारा उसके मूल्यांकन की सुविधा ही उन्हें प्राप्त थी। ऐसी स्थिति में, कवि अपने श्रोताओं की मुक्तकंठ प्रशंसा को ही अपने काव्य की उत्कृष्टता का प्रमाण-पत्र मानते थे। और ये श्रोता कौन होते थे? भृकुटि तक तनी मूछों वाले, अमर्ष की ज्वाला में अविराम जलते एवं सतत अमल या सुरा के नशे में छके शूरवीर सामन्त ही तो, जो काव्य-रसिक से अधिक रण-रसिक हुआ करते थे। अतः कवि द्वारा काव्य-पाठ करते समय यदि कदाचित् वे उस ओर ध्यान न दे, इधर-उधर की चर्चा करने लगें तो फिर कवि का सारा वाग्वैदग्ध्य और काव्य-कौशल क्या करेगा?

इसीलिए कवि अपनी इस आत्म-प्रशंसोक्ति द्वारा उन महानुभावों को सचेत करने हेतु विवश हुआ है ताकि वे उसके काव्य को जरा एकाग्रचित्त हो सुनने की कृपा करें ताकि उसका काव्य-वाचन अरण्य-रोदन न हो! उन रणरसिकों के सधैर्य श्रवण से प्राप्त प्रशस्ति ही तो उसका पुरस्कार था।

---

1. कुमारपालप्रबन्ध, हेमचन्द्राचार्य।

5. दूहा

दक्खिण उत्तर देस, पूरब नइ पच्छिम तणा.।
खड़िया खउँदाळिम कटक, नमिया सकळ नरेस ।। 1 ।।

व्याख्या—

बादशाह [होशंगशाह] की सेना के प्रयाण करने पर पूर्व और पश्चिम तथा उत्तर और दक्षिण के समस्त नरेश उसके आगे प्रणत होगए ।

शब्दार्थ—

नइ=और । **तणा**=के । **खड़िया**=प्रयाण किया जानकर या प्रयाण करने पर । **नमिया**=प्रणत होगए ।

हइकंप हिंदूकार, घर घर प्रति हूवउ घणउ ।
मिळियइ मंडपराइ कइ, कुण ऊपरइ कंधार ।। 2 ।।

व्याख्या—

[बादशाह होशंग के आक्रमण से] हिन्दुओं के घर-घर में भय से हड़कंप मच गया । [सब भयाकुल हो सोचने लगे—] माँडू के सुल्तान की इस यावनी सेना ने आज किस पर चढ़ाई की है ?

शब्दार्थ—

हइकंप=भयजन्य हलचल, हड़कंप । उदा०—

हइकम्पि देस हूअउ हुलाउ ।[1]

मंडपराइ=माँडू का सुल्तान होशंग । **कंधार**=कंधार के, अर्थात् यवन, यावनी सेना । डिंगल काव्यों में यवनों को उनकी रौद्राकृति के साथ-साथ उनके स्थान विशेषों के नाम से भी अभिहित करने की प्रवृत्ति रही है। जैसे कंधार, काबुल, खुरासान आदि । यथा—

काबल फेरै घड़ा काबली ।[2]

यहाँ 'काबल' यवनवाची है । 'कंधार' से भी यही अर्थ उद्दिष्ट है ।

तइँ पतिसाहि तणेह, पायाणउ पारंभ सुणी ।
हळहळिया हेकाणवइ, गढपति गमे गमेह ।। 3 ।।

---

1. छंद राउ जइतसी रउ, (93) सं० डॉ० टैसीटरी ।
2. राठौड़ रतनसिंघ री वेलि, पृ० 62, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।

व्याख्या—

उस बादशाह के युद्धार्थ प्रयाण की खबर सुन चारों ओर के इकराणवे गढपति विचलित हो उठे। अर्थात् उनमें हलचल मच गई।

शब्दार्थ—

तइँ=उस। **तणेह**=के। **पायाणउ**=प्रयाण या अभियान। **पारंभ**=युद्ध, युद्धोपक्रम। उदा०—

पारंभ करण आरंभ मैं, लियण लंभ सोरंभ जस।[1]

हळहळिया=विचलित हो उठे। उदा०

हळहळिया देस हइवइ हुवासि।[2]

हेकाणवइ=इकराणवे (91)। **गमे गमेह**=चारों ओर, चतुर्दिक। उदा०—

1. **गमे गमे** मदगलित गुड़ंता।[3]
2. **गमे गमे** घण धाड़ां धाइ[4]
   नाठा लोक दहोदिसि जाइ।।

तइं संचळतइं सूरु, धूँधळियउ धर धमधमी।
खउँदाळिम खीची दिसइ, कियउ पयाणउ पूरु।। 4।।

व्याख्या—

उस सेना के अभियान से [उड़ी हुई धूल के कारण] सूर्य धुँधला हो गया तथा पृथ्वी कंपित होगई। बादशाह [होशंग] अचलदास खीची पर अपनी पूरी शक्ति के साथ चढ़ आया।

शब्दार्थ—

तइँ=उस। **संचळतइं**=चलने से, अभियान से। **धूँधळियउ**=धुंधला होगया। **धमधमी**=कंपित होगई। यह ध्वन्युकरणात्मक शब्द है, धम्-धम् ध्वनि से त्रस्त। **पयाणउ**=प्रयाण, अभियान। **पूरु**=पूरे जोर-शोर से।

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 168, सं० सीताराम लाळस।
2. छंद राउ जइतसी रउ (182), सं० डॉ० टैसीटरी।
3. वेलि क्रिसन-रूकमणी री (105), सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
4. कान्हड़दे-प्रबन्ध, पृ० 104, सं० बलदेवराम कांतिलाल व्यास।

विशेष—

तुलनीय—

सुरिज्ज खेह लोपवि गई, पायालइं वासुगि दुडिउ ।[1]
चिहुँ चक्कराइ संसय पड्या, पातिसाहि किसु परि चडिउ ।।

6. वात

इसी परि त्या खउँदालम गोरी राजा। बाणू लख मालवा रउ चक्रवति। तइ रइ तेवाणू लाख माळवा रा कटकबंध। तइ कटकबंध रउ आरंभ-पारंभ गरवातन गडावरउ कहि-कहि दिखलाऊँ।

तइ कटकबंध माँहि महाधर कवण-कवण ? मीयां उस्मानखान, फतेहखान, गजनीखान, उमरखान, हइबतिखान। खान तउ मुगीस सारिखा।

हींदू राजा कवण-कवण ? सकळ ही सकवंधी, सकळ कळा संपूरण, राजा नरसिंघ सारीखा। तइ नरसिंघदास का कटकबंध चलिताँ साँतरि आगलइ दळि पाणीं पाछिलइ दळि कादम। तइ कादम कइ ठाह खेह उडती जाइ। दूसरउ विकमाईत।

व्याख्या—

इस भाँति, वह बादशाह गौरी बाणवे लाख मालव-वासियों का चक्रवर्ती राजा है। उसके अधीन मालवे की तिराणवे लाख सुसज्जित सेना है। उस सैन्य-दल की युद्ध-सज्जा तथा गुरुता व शक्तिमत्ता का मैं वर्णन करके बतलाता हूँ।

इस सेना में बड़े-बड़े योद्धाओं या उद्भट शूरवीरों में कौन-कौन हैं ? मियाँ उस्मानखाँ, फतहखाँ, गजनीखाँ, उमरखाँ, हैवतखाँ तथा खान मलिक मुगीस जैसे [वीर हैं]।

हिन्दू राजाओं में कौन-कौन हैं ? सकल कला-निधान बड़े-बड़े साके करने वाले उद्भट रणशूर राजा नरसिंघ सरीखे। उस नरसिंह की विशाल सेना के प्रयाण करने पर सेना के अग्रिम भाग (हरावल) के जिस स्थान पर जल होता था, वहाँ मध्यभाग (गोल) के पहुँचते-पहुँचते कीचड़ होजाता था तथा

---

1. गोरा-बादिल-चरित्र : कवि हेमरतन-कृत, पृ० 19, सं० मुनि श्री जिनविजयजी।

[अन्तिम भाग (चन्दावल) के पहुँचने पर तो] उस कीचड़ के स्थान पर धूल उड़ने लगती थी। अर्थात् उसका सैन्य-दल इतना विशाल था कि उसके प्रयाण करने से जल सूखकर कीचड़ होजाता था तथा कीचड़ की जगह धूल उड़ने लगती थी। वह दूसरा विक्रमादित्य है (अर्थात् विक्रमादित्य के समान न्यायी, पराक्रमी और शूरवीर है)।

शब्दार्थ—

इसी परि=इस भाँति। **त्या**=वह। **बाणूं**=बाणवे (92) **तेवाणूं**=तिराणवे (93)। मिलाओ—वांणु लख माळवो, देवकु पूज चढ़ाए।[1] **कटकबंध**=सेना, सैन्य-दल। उदा०—

कटकबंध नह धणउ किध।[2]

आरंभ-पारंभ=युद्ध अभियान : युद्धारम्भ की तैयारी, युद्ध-सज्जा। **गरवातन**=गुरुता, गौरव? **गडावरउ**=गाढपन? शक्तिमत्ता (गुरुता व सुदृढ़ता?) **महाधर**=उद्भट योद्धा, महाप्रचण्ड वीर। उदा०—

1. चौरासी सूरा सामंत, च्यारि **महाधर**, मंत्रि अनन्त।[3]

'महाधू' कदाचित् इसी का रूप भेद है—

कळपतरु ऊखलि पड़ं, जसौ महाधू जाम।[4]

'बड़ाधर' भी इसीका पर्याय है—साणण बाबर बड़ाधर अखियात उबारी।[5]

सकबंधी=साके (भीषण युद्ध) करने वाले, रणजयी उद्भट शूरवीर। उदा०—

1. **सकबंधी** गजबंध समोभव, सोहे घण आडंबर सीस।[6]
2. बडा **साकाधर** प्रतापीक राजा हुवा।[7]

---

1. राठोड़ाँ री वंशावली, पृ० 38, डॉ० फतहसिंह।
2. वेलि क्रिसन रुक्मणी री, (74) सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
3. श्रीसदयवत्सवीरप्रबन्ध, पृ० 60, सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार।
4. हालाँ-झालाँ री कुण्डळिया (49), सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।
5. झूलणा महाराणा प्रतापसिंहजी रा, पृ० 64, महाराणा प्रताप-स्मृति ग्रन्थ, सं० डॉ० देवीलाल पालीवाल।
6. गीत महाराजा जसवन्तसिंह रो, प्रा० रा० गी०, भाग 7, पृ० 38, सं० कविराव मोहनसिंह।
7. राठौड़ा री वंशावली, पृ० 18, सं० डॉ० फतहसिंह।

'सकबंधी' का एक अर्थ शक या संवत्-प्रवर्तक (भावार्थ में महापराक्रमी) भी किया जा सकता है; ऐसे कि जिनके नाम से संवत् चलें। उदा०—

जिहं सु वीर विक्रम नरेश सकबंध नरेश्वर ।[1]

परन्तु यहाँ साकों से जुड़े, संतत रणजयी शूरवीर का अर्थ उद्दिष्ट है। **सकल**···· **संपूरण**=संपूर्ण कलाओं से युक्त। यह प्रशस्ति-वर्णन की एक सामान्य काव्य-रूढ़ि है जिसे वाच्यार्थ में ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं। **तइ**=उस। **चालिताँ साँतरि**=चलने के साथ या अभियान करने पर। **आगलइ**=अग्रिम। **दल**=सेना के भाग। **कादम**=कीच (सं० कर्दम)। **ठाह**=स्थान। उदा०—

कळलिया ठाहि ठाहे कटक्क ।[2]

दूसरउ विकमाईत=दूसरा विक्रमादित्य। अर्थात् उज्जयिनी के इतिहास प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के समान प्रतापी व शूरवीर नरेश। इस नामोल्लेख के आधार पर ही कदाचित् डॉ० दशरथ शर्मा ने वचनिका की भूमिका में लिखा है—"दूसरा प्रमुख राजा विक्रमादित्य है। यह भी नरसिंह की तरह कोई दण्डोपनत हिन्दू सामन्त रहा होगा।"[3] हमारे विचार से यहाँ इस पंक्ति का अर्थ करने में विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा से भूल होगई है। कारण, विवेच्य पंक्ति में प्रयुक्त विक्रमादित्य एतद्नामधारी किसी तत्कालीन नरेश का ज्ञापक न होकर राव नरसिंह के लिए ही उपाधि-रूप में प्रयुक्त हुआ है, जैसी कि इस आशय की, प्रशस्ति-वर्णन की, डिंगल-काव्यों में एक परम्परा रही है। उदाहरणतः राठौड़ रतन महेसदासोत की दानवीरता के कारण कवि ने उसे दूसरा कर्ण कहा है—

कमधजां आज माहेस को, कहियौ यां दुज्जौ करन ।[4]

परन्तु अधिकतर चरित्रनायक को उसके ही वंश के किसी यशस्वी या प्रतापी पूर्वज से उपमित किया जाता है। जैसे जोधपुर के महाराजा गजसिंह को एक डिंगल कवि ने 'बिया मालदे' (दूसरा मालदेव) कहकर सम्बोधित किया है—

छत्रपत गजबंध गांजणौ छत्रपत,
बिया मालदे चमर बंबाळ ।[5]

---

1. पंवार-वंश-दर्पण, पृ० 5, सं० डॉ० दशरथ शर्मा।
2. छंद राउ जइतसी रउ (145), सं० डॉ० टैसीटरी।
1. अचलदास खीची री वचनिका : भूमिका, पृ० 4, सं० दीनानाथ खत्री।
2. वचनिका : राठौड़ रतन-महेसदासोत री [44(5)] सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।
3. गजगुणरूपकबंध, परिशिष्ट, पृ० 271, सं० सीताराम लाळस।

ऐसे प्रभूत उदाहरण दिए जा सकते हैं। यहाँ भी ठीक यही अर्थ उद्दिष्ट है। नरसिंह के पराक्रम के कारण ही कवि ने उसे 'दूसरा विक्रमादित्य' कहकर प्रशंसित किया है, जिसका अर्थ उक्त डिंगल-काव्य-परम्परा के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए।

विशेष—

विशाल सेना के अभियान करने पर पानी के स्थान पर कीचड़ हो जाने का वर्णन हमें कन्नौज के प्रतापी राजा जयचन्द्र गाहड़वाल के सम्बन्ध में भी मिलता है, जिससे उसका 'दळ पांगळो' विरुद प्रसिद्ध होगया था। इस आशय का 'राठौड़ां री वंशावली' का उल्लेख द्रष्टव्य है—

"जैचंद राजा दळां पांगळो कहांणो। तिणरो कटक चलतां आगले दळ पांणी, पाछलें दळे कादो, कादा री जायगां खेह उडै। तिण वासतै 'दळे पांगळो' कहांणो।"[1] कालान्तर में यह सैन्य-अभियान-वर्णन की एक रूढ़ि बन गई।

7. दूहो

अेकणि वन्नि वसंतड़ा, अेवड़ अंतर काइ ?
सीह कवड्डी नह लहइ, गइवर लक्खि विकाइ ।।

व्याख्या—

एक ही वन में रहने वालों में इतना अधिक अन्तर कैसे है कि सिंह को तो कोई कौड़ी में भी नहीं पूछता और हाथी लाख के मोल में बिकता है ?

शब्दार्थ—

अेकणि=एक ही, उदा०—

अेकणि चोट अताग, बूडी सूं अंबरि बहसि ।[2]

अेवड़=इतना अधिक (सं० एतावत्)। **कवड्डी**=कौड़ी (सं० कपर्दिका)। **गइवर**=हाथी (सं० गजवर)।

---

1. राठौड़ां री वंशावली, पृ० 37 : सं० डॉ० फतहसिंह।
2. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री, (87) सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।

विशेष—

अचलदास खीची री वचनिका के उपर्युक्त दोहे में वर्णित भाव वस्तुतः ग्रन्थ-रचयिता की अपनी मौलिक उद्भावना नहीं है। तद्विपरीत, इसमें आचार्य हेमचन्द्र के निम्नांकित अपभ्रंश-दोहे का ही छायाभाव है—

गुणहिं न संपइ कित्ति पर फल लिहिआ भुंजंति।[1]
केसरि न लहइ बोड्डिअवि गय लक्खेहिं घेप्पन्ति॥

अर्थात् गुणों से सम्पत्ति नहीं मिलती, कीर्ति भले ही मिल जाए। सब अपना लिखा हुआ ही कर्मफल भोगते हैं। सिंह को कोई कौड़ी में भी पूछता, जबकि हाथी लाखों रुपए देकर खरीदे जाते हैं।

अतः इस अनूठी काव्योक्ति का श्रेय हेमचन्द्राचार्य को दिया जाना चाहिए। डिंगल-काव्यों पर अपभ्रंश-काव्यों का व्यापक प्रभाव रहा है।

8. कुण्डळियो

इइवर गळइ गळत्थियउ, जहँ खंचइ तहँ जाइ।
सीह गळत्थण जइ सहइ, तउ दह लक्खि विकाइ॥
तउ दह लक्खि विकाइ, मोल जाणवि मुहँगेरा।
कड़वा कारणि कथिन, कोपि खउँदाळिम केरा॥
वेढ कीध पड़ियार, निहसि कट्टारउ दुहुँ करि।
राइ न ग्रहउ नरसिंघ, गळइ गळहथ जउँ गइवरि॥

व्याख्या—

कवि पूर्व पद्य में उठाए गए अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देता है—

हाथी के गले में गलबन्धन पड़ा रहता है, जिससे उसे जहाँ खींचते हैं, वहीं जाता है। इसी भाँति, यदि सिंह भी अपने गले में बन्धन सहले तो वह दस लाख में बिके। वह दस लाख में बिके और उसका मोल महँगा हो जाए। (भाव यह कि सिंह के समान निर्बन्ध एवं दुर्दम्य अचलदास ने भी बन्धन नहीं सहा; माँडू के सुल्तान की अधीनता स्वीकार नहीं की, जिसके फलस्वरूप अपने वीरोचित) कटु वचनों के कारण वह बादशाह का कोपभाजन हुआ।

---

1. हेमचन्द्राचार्य, पुरानी हिन्दी, पृ० 180, ले० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी।

इसी भाँति, उस प्रतिहार वीर (नरसिंघ ?) ने भी अपने दोनों हाथों में कटार ले शत्रुदल का संहार करते हुए भीषण युद्ध किया तथा हाथी के समान राय नरसिंह ने अपने गले में गलबन्धन स्वीकार नहीं किया।

शब्दार्थ—

गइवर=हाथी (सं० गयवर)। **गळत्थियउ**=गलबन्धन, भावार्थ में पराधीनता का पाश। **खंचइ**=खींचते हैं। **दह**=दस। **कथिन**=कथन। **वेढ**=युद्ध, लड़ाई। **पड़ियार**=प्रतिहार वंशी राजा नरसिंघ ? **निहसि**=प्रहार या संहार करते हुए। उदा०—

अमलीमांण जुवांण झाळ केवांण निहस्सै।[1]

इसका अन्यार्थ 'जोश में भरकर' या 'वीरोन्मेष में भरकर' भी किया जा सकता है। यथा—

निहसि खेत वाजिया निताळा।[2]

दुहुँ करि=दोनों हाथों से। योद्धा द्वारा घोड़े की लगाम मुँह में पकड कर दोनों हाथों से तलवारों के प्रहार करते हुए शत्रुदल का संहार करने के कारण उसे डिंगल काव्यों में 'द्विबाहु' (अप० दुबाह) संज्ञा से विभूषित किया गया है, जो कालान्तर में उद्भट वीर का वाचक होगया।

विशेष—

उपर्युक्त छन्द की अन्तिम दो पंक्तियाँ अर्थ की दृष्टि से बड़ी उलझन भरी हैं। डॉ० दशरथ शर्मा ने प्रस्तुत तथा इसके पहले वाले छन्द का अर्थ यह लगाया है कि इनमें "नरसिंह की अधीनता की अचलदास की स्वाधीन वृत्ति से तुलना करते हुए" कवि ने यह छन्द लिखा है। हम डॉ० दशरथ शर्मा के इस अर्थ से असहमत हैं। कारण, इस छन्द की अन्तिम दोनों पंक्तियों में कवि ने नरसिंह की ही प्रशंसा की है, अचलदास की नहीं, जैसाकि इससे आगे वाले छन्द के साथ प्रस्तुत छन्द के पूर्वापर सम्बन्ध से प्रकट है—"ते राजा नरसिंघदास सारीखा····।" यह कथन स्पष्ट ही प्रशस्तिमूलक है, निंदात्मक नहीं। बल्कि सच तो यह है कि कवि ने नरसिंह की प्रशंसा में अत्युक्ति कर

---

1. वीरमदेव मेड़तिया रा कवित्त (21) प्रा० रा० गी०, भाग 8, सं० कविराव मोहनसिंह।
2. राजरूपक।

डाली है, जैसाकि पूर्व छन्द में उसकी विशाल सेना के वर्णन करने तथा उसे 'दूसरा विक्रमादित्य' कहकर प्रशंसित करने से ज्ञापित है। इसके अतिरिक्त, सबसे महत्वपूर्ण संकेत छन्द की पाँचवीं पंक्ति से मिलता है, जिस पर कदाचित् डॉ० दशरथ शर्मा ने ध्यान नहीं दिया। वह है—

वेढ कीध पड़ियार, निहसि कट्टारउ दुहुँ करि।

प्रश्न है—यह 'पड़ियार' (पड़िहार, सं० प्रतिहार) शब्द यहाँ जिसके लिए आया है? यह अचलदास के लिए तो हो नहीं सकता क्योंकि वह खीची है, पड़िहार नहीं। स्पष्टतः यह नरसिंघ के लिए ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है, जैसाकि पद्य की अगली पंक्ति में हुए उसके नामोल्लेख से प्रकट है।

अब प्रश्न है कि क्या नरसिंह पड़िहार वंशीय क्षत्रिय था? वस्तुतः इस सम्बन्ध में खोज की आवश्यकता है। ज्ञात इतिहास ग्रन्थों में उसे सर्वत्र गोंड राजा ही लिखा गया है।[1] यह सम्भवतः इसलिए कि उसका राज्य खेरला गोंडवाना प्रदेश में स्थित है। परन्तु यह धारणा संदिग्ध है। सेन्ट्रल गजेटियर के विद्वान् सम्पादक चार्ल्स ग्रांट ने इस मत को संशयास्पद मानते हुए अपनी पाद-टिप्पणी में खेरला के शासकों के क्षत्रिय होने की सम्भावना को स्पष्टतया स्वीकार किया है—

"The Kherla princes have been generally set down as Gond, but I cannot find on what authority? There seems to be quite as much, if not more, for considering them to have been kshatriyas. The local legends certainly attribute that dignity to them........"[2]

ग्रांट महोदय की उपर्युक्त टिप्पणी के सन्दर्भ में वचनिका का यह उल्लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है, जिसमें गोंडवाना प्रदेश स्थित खेरला के शासक नरसिंह को 'पड़िहार' कहा गया है। इससे निश्चय ही नरसिंह का वंश-सूचन होता है, जिसके विषय में इतिहासकार भी अंधकार में है। अतः इस आधार पर

---

1. (i) The Cambridge History Of India; Vol. III; Pages 491, 536.
   (ii) Central India, Vol. I, Page 3, John Malcolm.
   (iii) The Gazetteer Of Central Provinces Of India (2nd Ed.)
2. The Gazetteer Of Central Provinces Of India (2nd Ed.) Introduction.

हमारा अनुमान है कि नरसिंह गोंड न होकर कदाचित् पड़िहार क्षत्रिय हो। इस दृष्टि से, वचनिका के इस उल्लेख के सन्दर्भ में खेरला के शासक नरसिंह के वंश की सही जानकारी अन्वेष्य है।

अब रही बात यह कि क्या नरसिंह भी अचलदास की भाँति स्वाधीन-वृत्ति का नरेश था? वस्तुत: इसमें सन्देह नहीं कि नरसिंह उद्भट वीर, पराक्रमी और स्वच्छन्द प्रकृति का था। सन् 1422 में मालवा के सुलतान होशंग ने उड़ीसा-अभियान से लौटते हुए खेरला पर आक्रमण कर उस पर अपना अधिकार कर लिया था तथा नरसिंह को बन्दी बना लिया था[1] परन्तु नरसिंह अपनी इस पराधीन स्थिति से कभी सन्तुष्ट नहीं रहा। ज्योंही उपयुक्त अवसर देखा, उसने मालवा-सुल्तान की अधीनता से अपने को मुक्त कर लिया, जिसके फलस्वरूप होशंग को उस पर सन् 1933-34 में पुन: आक्रमण करना पड़ा। नरसिंह इस युद्ध में मारा गया और होशंग ने खेरला को अपने अधिकार में ले लिया।[2] यह ठीक है कि होशंग द्वारा गागरोण पर आक्रमण के समय नरसिंह एक दण्डोपनत सामंत के रूप में उसके साथ रहने हेतु विवश था किन्तु, जैसाकि परवर्ती घटनाओं से सिद्ध होता है, उसने माँडू के सुल्तान का 'गलबन्धन' कभी स्वीकार नहीं किया और इसी संघर्ष में होशंग से युद्ध करते हुए वह अन्तत: वीरगति को प्राप्त हुआ।

लगता है, वचनिका की रचना सन् 1933-34 के बाद ही कभी हुई होगी। तभी कवि ने लिखा है कि "राइ न ग्रहउ नरसिंघ, गळइ गळहथ जंउँ गइवरि।" अत: इस छन्द की उक्त पंक्ति से नरसिंह की अधीनता का कहीं ज्ञापन नहीं होता है, जैसाकि विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा द्वारा समझा गया है। तद्विपरीत, इसमें तो कवि ने नरसिंह की वीरता एवं स्वतन्त्र-वृत्ति की ही मुक्तकण्ठ-प्रशंसा की है। अत: हमारे विचार से इस पंक्ति के आधार पर गलबन्धन सहने वाले राजाओं में नरसिंह को परिगणित करना कवि का अभिप्रेत नहीं है। संवत् 1748 की सिटी पैलेस जयपुर की प्रति में उपलब्ध इस पंक्ति के पाठ से भी इसकी पुष्टि होती है, जो निम्नांकित है—"राव नरसींग न सहै, गळै गळहथ जिम गैमर।"

---

1. The Cambridge History Of India; Vol. III; Page 351.
2. Mediaeval Malwa; Page 45-46; U. N. Dey.

9. वात

ते राजा नरसींघदास सरीखा। बत्तीस सहस साहण रिणखेति मेल्हि चाल्यउ। मदोनमत्त हस्ति मेल्हि चाल्यउ। आपण जाइ समंदइ घाल्यउ। समंद जाइ खांडउ पखाळियउ। अनेक राइ मदगळित करि मेल्ह्या।

तिहाँ राजा नरसिंघदास का कुँवर चाँदजी खेमजी सारीखा। मातापुरी [मातंगपुरी] का चक्रवती लखमराव सारिखा। पंउली का धांधड़ा [घंघेड़ा, घंघोड़ा] देवसीह सारिखा। बूँदी का चक्रवती संग्रामसी [संग्रामराय, संग्राम, सांगा]; सारिखा। अवर ते देवड़ा हींदूराइ, बंबी छोड़, दूसरा मालदेउ, समरसीह सारिखा। इसा ते चौरासी चक्रवर्त्ति।

देस तउ कउण-कउण ? [यासीन, मेवाड़, ढोला, नादूर] सतियासी नमियाड़, जुगा मानधाता, आसेरि, दूगउर [बीझनी, हूंसार, डाहल, ईझोर, बीझोर, राइसेण, रायगण (रांगगिर), पोली, पटोली, बरणा, तिलौतपुर] सिलारपुर लगइ का कटकबंध सहित। मझ देस तउ मांडव, धार, उजीण सीहोर-रउलू [चंदेरी, सारंगपुर, हुसंगाबाद, नगरकोट] लगइ का कटकबंध सहित। इसा ते देस-देस का, खंड खंड का, नगर-नगर का खांन, मीर, उंबराव चतुरंग दळ चढि चाल्या। पातसाह आपुणपइ पलाण घाल्या।

इसउ हिन्दू राजा उपकंठि कउण छइ जिकइ मनि पातिसाह की रीस वसी ? कउण का माथा तइ खिसी ? कउण हइ दई रूठउ ? कउण की माई विवाणी जु सामउ रहइ अणीपाणी ? आज तउ सोम सातल काम्हडदे नहीं [जोगै जोगाइत नहीं] तिलकछपरि तउ गहिलउतु नहीं, सीहउरि रउळु नहीं हठ कउ राउ हमीरदे ही आथम्यउ।

आगै पातिसाह हुवा, ता आगै आगिलेरा, याहे तै भला-भलेरा। त्याँ तउ चउरासी द्रुग लिया था दिहाड़इ पाड़इ पिणि यउ तउ सुरताण दूसरउ अलाउदीन, जिणी चउरासी द्रुग लिया था अेकइ दिहाड़इ।

तेणि पातिसाह आयाँ साँतरि कुण सहइ ? कुणइ सहीजइ ? कुण की जुगति ? कुण की प्रापति ? कुण की माई वियांणी, जू सामउ रहइ अणी पाणी ?

यउ तउ पातिसाह उत्तर-दक्खिण, पूरब-पच्छिम कउ जइतवार। इ का पुरखारथ प्रवाड़ाँ नहि पार। पिण धन-धन हो राजा अचलेस्वर।

थारउ जियउ जिण पातिसाह सूँ खाँडउ लियउ। जिण पातिसाहि आयाँ साँतरि सत छांडइ नहीं; खत्र खाँडइ नहीं; दीण न भाखइ; पगार लंघित न होयइ। ते राजा अचळेसर सारिखा अचळ नइ अचळेस ही होयइ।

अचळेसर तउ किसउ ? किरि उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम कउ भड़-कमाड़। आइन्या अजइपाळ। अहंकारि रावण। दूसरउ धारू। तीसरउ सींघण। छइ दरसण, छयाणवइ पाखंड कउ अधार। बाळउ चकरवति। धन-धन हो राजा अचळेसर। थारउ जियउ, जिणि हइ पातिसाह सउँ खाँडउ लियउ।

इसा अेक तइ पातिसाह रा कटकबंध अचळेसर ऊपरि छूटा। वाट का खड़-इंधण खूटा। द्रहां का पाणी तूटा। परबताँ सिरि पंथ लागा। घट-दुघट भागा। सूर सूझइ नहि खेह आंगा।

व्याख्या—

ऐसे राजा नरसिंघदास सरीखे, जो बत्तीस हजार अश्व रणक्षेत्र में लेकर चला। मदोन्मत्त हाथी लेकर चला। स्वयं इन्हें लेकर रण-समुद्र में उतार दिया तथा [शत्रु-रक्त से रंजित] अपने खड्ग को समुद्र में धोकर उज्ज्वल किया। अनेक गर्वीले राजाओं का दर्प चूर करके रख दिया।

वहाँ राजा नरसिंघदास के कुँवर चाँदजी खेमजी सरीखे वीर थे। मातापुरी का चक्रवर्ती राजा लखमराव सरीखा, पउली का धाँधड़ा देवसीह सरीखा, बूँदी का चक्रवर्ती संग्रामसिंह सरीखा तथा अन्यान्य शूरवीरों में हिन्दुओं में राजारूप, शत्रुओं को बन्दी बनाकर छोड़ देने वाला (प्रतापी और प्रभुत्व शाली) दूसरा मालदेव (मालदेव चौहान 'मूँछाळा' के समान पराक्रमी) देवड़ा समरसिंह सरीखा भी उसमें सम्मिलित था। ऐसे वे चौरासी चक्रवर्ती नरेश [वहाँ उपस्थित थे]।

और वहाँ किन-किन देशों के सैन्य-दल आए थे ? [यासीन, मेवाड़, ढोला, नादूर] सतियासी, नीमाड़, जुगा, मान्धाता (ओंकारेश्वर तीर्थ), आसेर दूगोर [बीझनी, हिसार, डाहल, ईझोर, बीझोर, रायसेन, रायगण (रांगगिरि, रामगिरि ?) पोली, पटोली, बरणा, तिलोतपुर] सिलारपुर तक का सैन्यदल उसमें सम्मिलित था। मध्यदेशान्तर्गत माँडू, धार, उज्जैन, सीहोर [चंदेरी, सारंगपुर, होशंगाबाद, नगरकोट] तक का सैन्यदल साथ था। ऐसे वे

देश-देश के, खंड-खंड के, नगर-नगर के खान, मीर और उमराव अपनी-अपनी चतुरंगिणी सेना सहित चढ़ आए। बादशाह ने भी अपने गज-अश्वों पर जीनें कसीं (अर्थात् अपनी गजसेना व अश्वसेना को युद्धार्थ सज्जित किया)।

[बादशाह होशंग की उस विशाल सेना को देख लोग भयत्रस्त हो सोचने लगे—] पास में ऐसा कौन हिन्दू नरेश है, जिस पर आज बादशाह का कोप हुआ है? दैव आज किस पर रुष्ट हुआ है? किस माँ ने वह लाल जना है, जो इस प्रचण्ड वाहिनी के आगे टिक सके? आज तो [सिवाणे के] सोम व सातल तथा [जालोर के] कान्हड़दे भी नहीं हैं। [जोगा का जोगाइता भी नहीं है]। तिलकछपरी का गहलोत भी नहीं है। सीहोर का रोलू भी नहीं है। हठ का धनी [रणथंभोर का शासक] राव हमीरदेव भी अस्त (दिवंगत) हो चुका है। [फिर यह सैन्य अभियान किस पर हुआ है?]

पहले भी बादशाह हुए हैं तथा उनसे भी पहले इनसे बढ़कर भले [और प्रतापी] हुए हैं। उन्होंने तो चौरासी दुर्ग जीतने में कई दिन लगा दिए थे परन्तु यह सुल्तान तो दूसरा अलाउद्दीन है, जिसने चौरासी दुर्गों को केवल एक ही दिन में जीत लिया। इस बादशाह के चढ़ आने पर इसके आक्रमण को कौन झेल सकता है? किससे झेला जा सकता है? किसके पास ऐसी युक्ति (उपाय, साधन) है? किसकी ऐसी पहुँच (सामर्थ्य) है? किसकी माँ ने ऐसा बेटा जना है, जो इस प्रचण्ड सेना के सामने टिक सके?

यह बादशाह तो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम का विजेता है (दिग्विजयी शूरवीर है)। इसके पुरुषार्थ और पराक्रम का कोई पार नहीं है परन्तु हे राजा अचलेश्वर! तुम धन्य हो! धन्य हो! यह तुम्हारा ही हौसला है, जो बादशाह के विरुद्ध खड्ग उठाया है, जिसने बादशाह के चढ़ आने पर भी अपना सत्य-व्रत (कर्त्तव्य-धर्म) छोड़ा नहीं, अपने क्षत्रियत्व को खण्डित नहीं किया, दीन होकर भाषण नहीं किया तथा अपनी कुल-मर्यादा की प्राचीर का उल्लंघन नहीं किया। ऐसे राजा अचलेश्वर के समान [अटल और अविचल] या तो पर्वत ही है या फिर स्वयं राजा अचलेस ही।

कैसा है यह अचलेश्वर (राजा अचलदास)? मानो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम का सुभट-रूप कपाट है (अर्थात् चतुर्दिक आक्रमणकारी शत्रुओं को रोकने के लिए वह सुदृढ़ वज्र-कपाट के तुल्य है)। वह आज्ञा-पालन कराने में

अजयपाल है (अर्थात् उसका आदेश अजमेर के चौहान राजा अजयपाल-सा अमोघ है)। वह वीरोचित दर्प में रावण के समान है। दूसरा धारू है[1] (अपने पूर्वज धारू का ही दूसरा प्रतिरूप है, वैसा ही प्रभुत्वशाली और पराक्रमी है)। तीसरा सिंधण है[2] (अर्थात् सिंघण या सिंहराव नामधारी अपने यशस्वी पूर्वज के समान होने वाला तीसरा प्रतापी नरेश है)। षट्-दर्शनों (छः वर्गों) एवं छियानवे पाखण्डों (षट्-दर्शनों के विविध भेदों, जो प्रत्येक दर्शन के 16 भेदों के अनुसार 96 हैं) का यह अवलम्ब है (अर्थात् सभी धर्मावलम्बियों एवं सम्प्रदायों के अनुयायिओं का संरक्षक और आश्रयदाता है)। यह राजा बलि के समान चक्रवर्ती है। ऐसे हे महाप्रतापी एवं धर्मधुरीण राजा अचलदास! तुम धन्य हो! यह तुम्हारा ही साहस था, जो बादशाह के विरुद्ध खड्ग धारण किया।

ऐसे उस अपार शक्तिशाली बादशाह का प्रचण्ड सैन्यदल राजा अचलदास पर चढ़ आया। [उस विशाल सैन्य-समूह के प्रयाण से] मार्ग का घासफूस और इंधन खूट गया। जलाशयों और गड्ढों का पानी सूख गया। पर्वत सपाट होकर उन पर मार्ग बन गया। विकट-दुर्गम घाटों का नाम-निशान भी न रहा (सब ध्वस्त और समतल होगए)। [सैन्य-अभियान से उड़ी] धूल के कारण सूर्य भी दिखना बन्द होगया (अर्थात् आकाश में इतनी गर्द छागई कि सूर्य उसमें ढक गया; धूल का दिगन्तव्यापी घटाटोप छागया)।

शब्दार्थ—

मेल्हि=रख कर, लेकर। **समंदइ**=समुद्र में। यहाँ कदाचित् रण-समुद्र से अभिप्राय है, जैसीकि डिंगल-काव्यों में अपार सैन्य-दल से भरे रणक्षेत्र को समुद्र से उपमित किए जाने की परम्परा रही है। यथा—

"इतरा माहे बोलिऔ रासौ कुँअर। दूसरौ मधुकर। जळाबौळ रिण-समन्द माहै असि जहाज धराँ। किलम्बाँ घड़ा मारि पारि कराँ।"[3]

घाल्यउ=डाल दिया। **पखाळियउ**=प्रक्षालित किया, धोया। **बंदी छोड़**=वन्दियों को छोड़ने वाला, उदार और क्षमाशील शूरवीर। उदा०—

1–2. 'गागरोण का खीची राजवंश' शीर्षक प्रकरण में दी गई वंशावली में क्रमशः संख्या 1 और 3 पर।

3. वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासौत री, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।

1. "मोटउ साहस कीधउ, वडउ परवाडउ पसीधउ, **वंदी छोड़ावी** तउ इग्यारस तणउ पारणउ कीधउ।"[1]
2. **बंदी छोड** स्यामसिंघ पूठी दादांणी।[2]
   कान्हड़दे हमीरदे माता पपिराणी।।
3. राय-साधार **बंदिछोडि** मोटा विरुद,
   साह पतिसाह सम मौज महिरांण।[3]

दूसरा मालदेउ=यहाँ 'दूसरा मालदेउ' से आशय जालोर के राव साँवतसी के पुत्र और कान्हडदेव के भाई मालदेव चौहान से है, जो इतिहास में 'मालदेव मूँछाळों' के नाम से विख्यात है। यह बड़ा पराक्रमी था। श्री वेदप्रकाश गर्ग ने इसे मारवाड़ नरेश राव मालदेव राठौड़ का वाचक समझ लिया, जो भ्रांत है।[4] चरित्रनायक को प्रायः उसके पूर्वजों से ही उपमित किए जाने की परम्परा रही है, जैसाकि इस आशय के पहले दिए गए उदाहरणों से प्रकट है।

नमियाड़=नीमाड़। **मान्धाता**—ओंकारेश्वर तीर्थ, जो सनवड़ (मालवा: म० प्र०) स्टेशन से 7 मील पर स्थित है। यहाँ से थोड़ी दूर पर ही अमरेश्वर महादेव का लिंग है, जहाँ कपिलधारा और नर्मदा का संगम होता है।[5] विशेष पुस्तकांत में देखिए 'टिप्पणियाँ'।

लगइ का=तक के। **चतुरंग दळ**=चतुरंगिणी सेना, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल—इन चारों अंगों से युक्त सैन्य-दल। **आपुणपउ**=अपने। उदा०—

आपणपउ धन मानतउ, बंदिण द्यइ अति दान।[6]

उपकंठि=पास, समीप। **रीस**=क्रोध, कोप। **माथा तइ**=सिर के लिए, प्राणहरण हेतु। **खिसी**=युद्ध करने की ठनी। **खसणौ**=युद्ध करना। उदा०— 1. खळिकियौ रगत मध कीट हुँता **खिसै**।[7]

---

1. राज० साहित्य का मध्यकाल, परम्परा, पृ० 69, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
2. झूलणा महाराणा प्रतापसिंहजी रा, महाराणा प्रताप-स्मृतिग्रन्थ, पृ० 56, सं० डॉ० देवीलाल पालीवाल।
3. धर्मवर्द्धन-ग्रन्थावली, पृ० 106, सं० अगरचन्द नाहटा।
4. शोध-पत्रिका, वर्ष 26, अंक 2, पृ० 78, वेदप्रकाश गर्ग का लेख।
5. तीर्थमाला, पृ० 15, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस संस्करण।
6. हम्मीरायण, व्यास भांडा-कृत, पृ० 15, सं० भँवरलाल नाहटा।
7. पीरदान लाळस-ग्रन्थावली, पृ० 79।

2. धिखै आराण मुखैं केवाण,[1]
खसै सुरताण मरुध्धर राण ।।

दई=दैव, अदृष्ट । **रूठउ**=रुष्ट या कुपित हुआ है । **माई**=माँ । **विवाणी**=(ब्याई) जना है, प्रसव किया है । **अणीपाणी**=सैन्य शक्ति । 'अणीपाणी' अन्यार्थ में 'मान-मर्यादा' या प्रतिष्ठा का भी वाचक है । परन्तु यहाँ यह 'सेना' के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है । 'अणी' संस्कृत 'अनीकम्' से व्युत्पन्न है ।
आथम्यउ=अस्त या दिवंगत होगया । **आगै**=पहले भी । **त्याँ तउ**=उन्होंने तो । **दिहाड़इ पाड़इ**=[कई] दिनों के अनन्तर, दीर्घकालोपरान्त ।
आयाँ साँतरि=आने पर, आक्रमण करने पर । **जुगति**=(सं० युक्ति) उपाय, साधन । **प्रापति**=(सं० प्राप्ति) पहुँच, सामर्थ्य, भाग्य । उदा०—

त्रीजउ कोइ न त्रिभुवनि कन्हइ ।[2]
प्रापति पाखइ न रहिवा लहइ ।।

जइतवार=जीतने वाला, विजेता । **प्रवाड़ाँ**=शौर्य और पराक्रम के कार्य । 'प्रवाड़ा' शब्द अनेकार्थक है, जिसके विस्तृत परिचय के लिए पाठक 'प्रवाड़ौ' शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थविकास शीर्षक मरु-भारती में प्रकाशित मेरा लेख देखें ।[3] यहाँ यह युद्धों अथवा वीरतापूर्ण कार्यों का वाचक है ।
जियउ = साहस, हौसला । **खाँडउ** = खाँडा, खड्ग । **सत** = सत्यव्रत; शूरोचित कुलधर्म । कहा है—

1. सत मत छोडो सूरमा, सत छोड्याँ पत जाय ।
सत की बाँधी लक्ष्मी, फेर मिलैली आय ।।

2. हम रवि मंडल भेदि, जाम लगि सत्त न छंडै ।[4]

खत्र=क्षत्रियत्व, रजपूती । **खाँडइ**=खांडित, भंग । **दीण**=दैन्ययुक्त वचन । **भाखइ**=कहते । **पगार**=(सं० प्राकार) परकोटा, प्राचीर । यहाँ 'पगार' वीर की कुल-मर्यादा या कुलधर्म-पालन के दृढ़ संकल्प का प्रतीक है, जिसका उल्लंघन वह कदापि नहीं करता । डिंगल-काव्यों में वीर के लिए प्रशस्ति-

---

1. राउ जैतसी रौ रासो, राज० भारती, मार्च 1949, पृ० 82, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी ।
2. सदयवत्स-वीर-प्रबन्ध (102), पृ० 15, सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार ।
3. मरु-भारती, जुलाई, 1971 ।
4. पृथ्वीराजरासो, तृतीय भाग, पृ० 395, सं० कविराव मोहनसिंह ।

रूप में 'विरुद-पगार' (विरुद का कोट) आदि शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यथा—

बोड़ो विरद पगार, आव वीसर आहट्टै[1]

'पगार-लंघित' न होने से तात्पर्य है कुल-मर्यादा या वीरोचित कुल-धर्म से च्युत न होना। **अचळ**=पर्वत। **नइ**=और। **अचळेस**=राजा अचलदास। **किरि**=मानो। **कउ**=का। **भड़-कमाड**=शत्रु को रोकने में कपाट के तुल्य समर्थ शूरवीर। भाटी क्षत्रियों का 'उत्तर भड़ किंवाड़' विरुद लोक-विश्रुत है। **आइन्या**=आज्ञा, आदेश। उदा०—

1. **आईन्या** बीजी धर आणी।[2]
2. **आन्या** हुं मेटि अठइ ताइ आई।[3]

स्मरणीय है कि अजमेर नगर का संस्थापक[4] चौहान नरेश अजयपाल या अजयराज अतुल प्रतापी एवं चक्रवर्ती नरेश था, जैसाकि उसके लिए प्रयुक्त विरुद 'अजयपाल चकवै' (अजयपाल चक्रवर्ती) से विदित है—

धंधुमार चकवै हुवौ, रघुवंस नरंदां।[5]
अजैपाल चकवै तास मुंगी समुंदाँ॥

इस अजयपाल का आदेश अमोघ होता था; अर्थात् इसकी आज्ञा अनुल्लंघनीय थी। इस आशय का उल्लेख महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने वंशभास्कर में किया है—

इम बसाय अजमेर मध्यदेसहु किन्नें बस।[6]
अरु अमोघ आदेस, जगत विसतारि लियउ जस।
सुनतहि जाको नाम रहत जिम तिम चित्राकृति।
तप्यो नृपति इहिं तोर सबन उप्पर धारत धृति॥

× × ×

---

1. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 188, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
2. छंद राउ जइतसी रउ (142), पृ० 33, सं० डॉ० टैसीटरी।
3. महादेव पारवती री वेलि (188), पृ० 63, सं० रावत सारस्वत।
4. प्रवन्धकोश।
5. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 7, ले० लल्लूभाई भीमभाई देसाई।
6. वंशभास्कर, पृ० 736।

इससे स्पष्ट है कि अजयपाल अपने अमोघ आदेश के लिए लोक में प्रसिद्ध होगया था। यहाँ तक कि लोक परम्परानुसार पशु-पक्षी भी उसकी दुहाई मानते थे।[1] इसीलिए कवि ने अचलदास को उससे उपमित किया है। इस अजयपाल का समय ईसा की छठी शताब्दी का अन्त या सातवीं का प्रारम्भ माना गया है।[2]

अहंकारि रावण=वीरोचित दर्प व हठ के लिए रावण डिंगल-कवियों का प्रिय उपमान है।

धारू=धारू आनलोत। अचलदास का पूर्वज। चौहान-कुल-कल्पद्रुम के अनुसार गागरोण में राज्य स्थापित करने वाला यही देवनसिंह या धारू था।[3]

सींघण=सिंहराव; अचलदास का प्रतापी पूर्वज। खिल्चीपुर की ख्यात में प्राप्त वंशावली में इसका उल्लेख मिलता है।[4]

छइ दरसण=[1] छै वर्गों का समूह, जिसके अन्तगत ये निम्नांकित वर्ग आते हैं—

1. ब्राह्मण, 2. जोगी, 3. जंगम, 4. भाट, 5. संन्यासी और 6. साध। इस आशय का एक दोहा है—

वाह्मण सेतंवर वळे, जोगी जंगम जाणि।[5]
दान सन्यासी सोफिया, खट दरसण वाखाणि॥

प्रवन्ध-चिन्तामणि के अनुसार षट्दर्शन के अन्तर्गत जैन, बौद्ध, ब्राह्मण, सिद्ध, बुध व परमात्मा आते हैं।[6]

विवेच्य पंक्ति में यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका अन्य प्रचलित रूप 'खट दरसण' भी है। उपर्युक्त अर्थ में डिंगल-काव्यों में हुए इसके प्रयोग के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

1. भीम-विलास, पृ० 30, सं० डॉ० महावीरप्रसाद शर्मा।
2. Ajmer : Historical & Descriptive; Page 137; R. B. Harbilas Sarda.
3. चौहान-कुल कल्पद्रुम, पृ० 94।
4. खिल्चीपुर की ख्यात, (हस्तप्रति)।
5. रा० सा० सं०, भाग 1, पृ० 26, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
6. प्रबन्धचिन्तामणि, मेरुतुंगाचार्य, तृतीय प्रकाश, प्रकरण 99-101, सं० व अनु० डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

1. "चारण भाट आवै तिणनै च्यार टका विदा रा दिया जोईजे। **खट दरसण** नै सेर आटो दीयौ चाहिजै।"[1]
2. "**खट दरसण** पोखीयै, रीधू आरोपां रोपै।"[2]

2. 'छइ दरसण' का अन्य अर्थ सांख्य, योग आदि हिन्दुओं के छः दर्शन भी किया जा सकता है परन्तु विवेच्य पंक्ति में यह अर्थ उद्दिष्ट नहीं है।

छयाणवइ पाखंड=षट्-दर्शनों में से प्रत्येक दर्शन के 16 भेद; तदनुसार 96 भेदोपभेद। वेदानुकूल न होने से इन दर्शनों या दार्शनिक सम्प्रदायों को 'पाखंड' की संज्ञा दी गई। फलतः ये 96 पाखंड कहलाए। यहाँ कवि का आशय यह है कि राजा अचलदास सभी दर्शनों के मतावलंबियों का संरक्षक या आश्रयदाता था। मतान्तर से इनकी संख्या 102 भी मानी गई हैं। एक हस्तप्रति में 36 का भी उल्लेख है—

"तिण सु देइ-देवता मनाव है। खट दरसण, 36 पाखंड, चोरासी चेटक अनेक प्रकार ताका दाय नु पायकर नै बूझां।"[3]

वस्तुतः इस कोटि का वर्णन डिंगल-काव्यों में प्रशस्ति-वर्णन की एक रूढ़ि बन गई है—

"छः दरसण पाखंड छन्नवइ।[4]
दानि मानि माँगण रंजवइ।।"

बाळउ चकरवति=राजा बलि के समान चक्रवर्ती। बाळउ से यहाँ कवि का आशय विरोचन-पुत्र बलि से है, जो बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा हुआ था—

वैरोचन पुत्र बलि राजा, तिको चकवै हुवौ।[5]

राजा बलि के चक्रवर्ती होने का उल्लेख अन्यत्र भी हुआ है—

वळि जेहा चक्कवै हुवा जिण वंस नरेसुर।[6]

---

1. वीरमदे सलखावत री वार्ता, पृ० 7, वीरवांण, सं० श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूंडावत।
2. राजा भोज री पनरवीं विद्या री बात, व्यास भवानीदास-कृत, पृ० 36, हस्तप्रति; पं० कृपाशंकरजी तिवारी के सौजन्य से।
3. रिसालू कँवर री वात, हस्तप्रति; पं० कृपाशंकरजी तिवारी के सौजन्य से।
4. सदयवत्स वीर प्रवन्ध, पृ० 51, सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार।
5. राठौड़ाँ री वंशावली, पृ० 11, सं० डॉ० फतहसिंह।
6. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री, (2) सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।

विवेच्य पंक्ति में हुआ इस कोटि का वर्णन डिंगल-काव्यों में प्राय: रूढ़ हो गया है। अतः हम इसे मात्र काव्यरूढ़ि ही मानते हैं।

जिणि हइ=जिसने। **सउँ**=से। **तइ**=ते, उस। **छूटा**=चढ़ आए। **वाट**=मार्ग। **खड़**=घास, तृणादि। उदा०—

जिण मारग केहर बुवो, लागी वास तिणाँह।[1]
ते खड़ ऊभा सूखसी, नह चरसी हिरणाँह॥

'खड़' देश्य शब्द है, जो तृण के अर्थ में अपभ्रंश काव्यों में भी बहुश: प्रयुक्त हुआ है।[2] **खूटा**=नष्ट या समाप्त होगए। **द्रह**=(सं० ह्रद) गहरे जलाशय। **तूटा**=चुक गए, सूख गए। **सिरि**=पर (अव्यय)। **घट-दुघट**=औघट-घाट; विकट और दुर्गम पर्वतीय पथ। **सूझइ**=दिखाई देना। **खेह**=गर्द, धूलि। **आगा**=कारणस्वरूप।

विशेष—

उपर्युक्त 'वात' में जिन अनेक स्थानों व व्यक्तियों का नामोल्लेख हुआ है, उनमें से कुछ तो सुविदित हैं एवं शेष के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। उदाहरणतः दीनानाथ खत्री द्वारा सम्पादित संस्करण में 'मातंगपुरी का चक्रवती लखमराव' पाठ है, जबकि हमने 'मातापुरी' पाठ स्वीकार किया है, जो वचनिका की संवत् 1631 की प्राचीनतम प्रति में है। सिटी पैलेस, जयपुर के संग्रहालय में उपलब्ध संवत् 1748 की प्रति में भी 'मातापुरी' पाठ है तथा वहीं की एक अन्य प्रति में 'मातापुर'। इस नाम का एक तीर्थ भी है (माहूर), जहाँ रेणुकादेवी और दत्तात्रेय के देवल हैं।[3] कह नहीं सकते कि यह वही मातापुर' है, जो वचनिका में मातापुरी के नाम से ज्ञापित है। यों इतिहास में मातंगपुर का भी उल्लेख मिलता है। उदाहरणतः तीडा छाडावत से सम्बद्ध एक गीत में—

मातंगपुर मझ कटक मरावै,[4]
मुंह भजाय गयौ मछरीक॥

---

1. बाँकीदास-ग्रन्थावली।
2. पउमचरिउ 5-7-1, जसहरचरिउ 3-14-4।
3. तीर्थमाला, पृ० 60, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस संस्करण।
4. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 3, पृ० 122, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

यही स्थिति अन्य नामों के विषय में भी है। इसी भाँति, कोष्ठकान्तर्गत दिए गए नामों में 'डाहल' का भी मध्ययुगीन साहित्य में उल्लेख मिलता है। यथा—

"……डाहल, जांगल, मरुस्थल, लाड, मेयवाट……।"[1]

बहुत सम्भव है, अन्य नामों की भौगोलिक स्थित का भी खोज करने से पता चल जाए। इसीलिए पाठ संदिग्ध होते हुए भी हमने इन नामों को कोष्ठकान्तर्गत रख दिया है ताकि इतिहास के अधिकारी विद्वान् इन पर प्रकाश डाल सकें।

इसी भाँति, उपर्युक्त वात [9] में श्री दीनानाथ खत्री द्वारा सम्पादित संस्करण में "ते राजा नरसिंघदास का कुंवर चांदजी-खेमजी सारिखा" के बाद यह पाठ है—

"मातंगपुरी का चक्रवती लखमराव सारिखा। ……देवसीह सारिखा। बूंदी-का चक्रवती अवर देवड़ा हींदूराइ बंदि छोड दूसरा मालदे समरसीह सारिखा।"

"बूंदी का……समरसीह सारिखा" पाठ श्री खत्री ने 'वचनिका' की किस प्रति के आधार पर ग्रहण किया है, यह उन्होंने नहीं बताया। 'वचनिका' की संवत् 1631 की प्राचीनतम प्रति में, जिसे उन्होंने अपने सम्पादन का मुख्य आधार बनाया है, यह पाठ नहीं है। प्रत्युत उसमें निम्नांकित पाठ है—

"मातापुरी का चक्रवति लषमराव सारिखा। पउली का धांधड़ा देवसीह सारिषा। बूंदी का चक्रवति संग्राम सारिषा। अवर देवड़ा हींदू राइ बंदी छोड़ दूसरा मालदे समरसीह सारिषा।"

यहाँ हमारा विवेच्य **'बूँदी का चक्रवति संग्राम सारिषा'** पाठ है। ज्ञात हो कि सवाई मानसिंह संग्रहालय जयपुर की दोनों प्रतियों (संवत् 1748 की प्रति तथा अन्य प्रति) में भी क्रमशः 'संग्रामसी' एवं 'संग्रामराय' पाठ है, परन्तु 'समरसीह' नहीं है। इसी भाँति, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर की प्रति में भी 'सांगा सारिखा' पाठ है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पाठ-ग्रहण की दृष्टि से तो यहाँ 'समरसीह' के स्थान पर संग्रामसिंह ही होना चाहिए।

---

1. मंत्रीश्वर-वस्तुपाल-प्रबन्धरास, स्थूलिभद्रकाकादि, पृ० 22, सं० आत्माराम जाजोदिया।

जहाँ तक 'समरसीह' का प्रश्न है, डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने इसे इतिहास-विरोधी उल्लेख बतलाया है क्योंकि उनके अनुसार बूँदी का राजा समरसिंह वि० संवत् 1403 में ही मर गया था।[1] श्री रामवल्लभ सोमानी भी इस नाम के बारे में लिखते हैं—"दूसरी आपत्ति समरसिंह के सम्बन्ध में है। मेरे ख्याल से बूँदी के राजा का नाम इसमें समरसिंह दिया ही नहीं है।"[2] डॉ० दशरथ शर्मा की भी यही मान्यता है। उन्होंने बड़ोदा ओरियंटल इंस्टीट्यूट के जर्नल में प्रकाशित अपने लेख में यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें बूँदी के राजा व देवड़ाओं का उल्लेख मात्र है।[3]

डॉ० दशरथ शर्मा प्रभृति विद्वानों की समरसिंह विषयक यह मान्यता सर्वथा संगत है। यदि इन विद्वानों को वचनिका के हमारे द्वारा गृहीत प्राचीनतम एवं मान्य शुद्ध पाठ की जानकारी होती तो वे और अधिक दृढ़ता से अपना अभिमत व्यक्त करते। हमें आश्चर्य है कि पाठ-परम्परा के विपरीत श्री दीनानाथ खत्री ने उपर्युक्त पाठ किस प्रति के आधार पर ग्रहण किया? पाठ-ग्रहण में एक छोटा-सा स्खलन इतिहास की कितनी जटिल उलझन खड़ी कर देता है--यह इसका ज्वलंत उदाहरण है।

अब रही बात यह कि यह 'संग्रामसिंह', 'संग्रामराय' या 'सांगा' है कौन-- यह एक अलग प्रश्न है, जिसकी खोज इतिहास के विद्वानों का विषय है।

जहाँ तक बूँदी के राजाओं की वंशावली का प्रश्न है, उसमें संग्रामसिंह नामक किसी राजा का उल्लेख नहीं मिलता। तद्विपरीत, वीरविनोद के अनुसार उस समय बरसिंह का पुत्र बैरीसाल बूँदी का राजा था, जिस पर होशंग ने आक्रमण किया था—

"वरसिंह के बाद 186 बैरीशाल गद्दी पर बैठा। इसके समय में मांडू के बादशाह हौशंग ने बून्दी को घेर लिया था। उस लड़ाई में बैरीशाल बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया"।[4]

---

1. शोध-पत्रिका, वर्ष 17, अंक 1-2, पृ० 25-30, डॉ० मेनारिया का लेख।
2. राजस्थान के ऐतिहासिक शोध-लेख, पृ० 123, ले० रामवल्लभ सोमानी।
3. जर्नल ऑफ ओरियंटल इंस्टीट्यूट ऑफ बड़ोदा, सितम्बर, 1964, पृ० 79-83, डॉ० दशरथ शर्मा का लेख।
4. वीरविनोद, भाग 2, पृ. 107

बूँदी-राजवंश के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ वंशभास्कर से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। उसमें यद्यपि होशंग का नामोल्लेख नहीं हुआ है, तथापि यह लिखा है कि वरसिंह के पुत्र बैरीसाल का सबसे छोटा पुत्र 'श्याम' माँडू के सुल्तान द्वारा पकड़ा जाकर मुसलमान होगया—

'सर्वानुजनुः श्यामो ऽष्टमो य उदितः स वैरिशल्य सुतः।
यवनेन्द्रेण गृहीत्वा मण्डूपतिना कृतोर्भको यवनः ।। 280'[1]

यहाँ बैरीसाल के संदर्भ में माण्डूपति से स्पष्टतः होशंग से ही आशय है। ऐसी स्थिति में, 'संग्रामसिंह' का उल्लेख एक उलझन ही पैदा करता है। यदि 'वरसिंह' का ही यह कोई अपर नाम हो या इसी नाम का कोई अन्य व्यक्ति हो तो बात दूसरी है।

10. दूहो

हइवर गइवर पाइदळ, पुहवि न पारावार।
गोरी राउ गिरि आसनउ, गउ गढ गंजणहार ।।

व्याख्या—

[बादशाह की उस सेना में] घोड़ों, हाथियों तथा पदातिकों की संख्या इतनी अधिक थी कि पृथ्वी पर उनका कोई पार नहीं रहा। यों गढ़ का भंजन करने वाला बादशाह अलपखां गोरी, पर्वत के निपट समीप आ पहुँचा।

शब्दार्थ—

पाइदळ=पैदल, पदातिक सेना। **आसनउ**=(सं. आसन्न) निकट। **गउ**=गया (पहुँच)।

11. वात

इसा अेक ते पातिसाह का कटकबंध आइ चुहइ कोस माँहि संप्रापत हूवा। मुकाम मुकाम का नीसाण वागा। तव जाइ अे गूडर नै उवै धवळिहर दीसिवा लागा।

व्याख्या—

ऐसे उस [प्रतापी] बादशाह का अपार सैन्य-दल केवल चार ही कोस की दूरी में आ पहुँचा।

---

1. वंशभास्कर, पृ. 126-130

मुकाम—मुकाम पर [युद्ध के सूचक] नगाड़े बजने लगे। तभी [बादशाही सेना के] ये तम्बू (खेमे) और [गागरोण गढ़ के] वे राजप्रासाद [एक दूसरे को] दिखाई देने लगे।

शब्दार्थ—

इसा अेक=ऐसे। **ते**=उस। **कटकबंध**=सैन्य-दल।

चुहइं=चार ही (रूप भेद 'चिहुं')। उदा.—

1. पहर चिहुं रे आंतरै वीछड़िवो छै आज।[1]
2. चहुविहेण संघेण संजुओ।[2]

नीसाण=नगाड़े। **वागा**=बजे। **गूडर**=तंबू, खेमे।[3] उदा.—

1. खुरमगह अनइ **गूडर** खड़ोई।[4]
2. चउरा **गूडर** संघतणा, नवि लाभइ पार।[5]

विद्वद्वर पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने 'गूडर' शब्द की व्युत्पत्ति 'गुरुदर' से मानी है।[6]

धवळिहर=(सं. धवलगृह) राजप्रासाद। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "राजकुल के भीतर राजा और महादेवी के निवास का मुख्य महल धवलगृह कहलाता था।"[7]

12. दूहा

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित संस्करण में निर्देशित B प्रति में दूहा नं० 1 के पहले यह दूहा अधिक है—

डेरां भूरजे दीठ, भूरजा डेरा भाळिया।
आया आलमसाह रा, नैड़ा खड़े नित्रीठ॥

---

1. जिनराजसूरि–कृति-कुसुमांजलि, पृ० 144, सं० अगरचन्द नाहटा।
2. जसहरचरिउ, महाकवि पुष्पदन्त, पृ० 14, (13–9) सं० डॉ० हीरालाल जैन।
3. मुरारिदान–डिंगल कोश, पृ० 88।
4. छंद राउ जइतसी रउ (214), पृ० 49, सं० डॉ० टैसीटरी।
5. कुमारपालदेवरास, देवप्रभगणि–रचित, स्थूलिभद्रकाकादि, पृ० 12, सं० आत्माराम जाजोदिया।
6. पुरानी हिन्दी, पृ० 28, सं० श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी।
7. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० 92, ले० वासुदेवशरण अग्रवाल।

आलम का अड़साल, ईखे गूडर आसना ।
गढ का गा गढपति कन्हइ, व्रध अर तरणा बाळ ।।1।।

व्याख्या—

शत्रुओं को सालने वाले प्रचंड आलमशाह (अलपखां) के उन डेरों को निपट निकट देख गढ़ के सभी प्रजाजन—वृद्ध, तरुण और बालक, गढ़पति (राजा अचलदास) के पास चले गए (उसकी शरण में आगए) ।

शब्दार्थ—

आलम= अलपखां गोरी (होशंगशाह) के लिए व्यवहृत हुआ है। बहुश: प्रयुक्त इस शब्द पर टिप्पणी करते हुए डॉ० दशरथ शर्मा लिखते हैं—
"कवि ने अचलदास के विरोधी के नाम 'आलम', 'साहि आलम' और 'गोरी राव' के रूप में दिए हैं। सम्भवत: इन्हीं के आधार पर तैस्सितोरी महोदय ने अनुमान किया था कि वचनिका में आलिम गोरी नाम के किसी दिल्ली के सुल्तान का वर्णन है, जो माँडू के शासक की सहायता के लिए गागरोण पहुँचा था। किन्तु वास्तव में 'आलम गोरी' या तो 'अलप गोरी' का दुष्पठित रूप है या स्वयं शिवदास ने 'अलप' को 'अलम' में परिवर्तित कर दिया है।"[1]

वस्तुत: डॉ० टैसीटरी का अनुमान तो असंगत है ही, विद्वद्वर डॉ० दशरथ शर्मा की उक्त दोनों धारणाएँ भी निराधार है। कारण, न तो 'आलम' शब्द 'अलप' का दुष्पठित रूप है और न ग्रंथ-रचयिता ने ही कवि-जनोचित स्वच्छन्दता के अधिकार (Poetic Licence) का उपयोग करते हुए यह स्वैच्छिक परिवर्तन किया है। प्रत्युत, तथ्य यह है कि यह तो होशंगशाह की उपाधि है, जैसाकि देवगढ़ के शिलालेख से प्रमाणित है, जिसकी चर्चा हम पहले कर आए हैं। साथ ही, यह भी स्मरणीय है कि मध्ययुगीन काव्यों में 'आलम', 'आलिम' या 'आलिमशाह' आदि शब्द बादशाह के लिए उपाधि-रूप में सामान्यत: प्रयुक्त हुए हैं। बादशाह का नाम चाहे कुछ भी रहा हो, मध्ययुगीन कवियों द्वारा उन्हें 'आलम' या 'आलमशाह' कहकर सम्बोधित किए जाने की एक व्यापक प्रयोग-परम्परा रही है, जैसाकि निम्नोक्त कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा।

---

1. अचलदास खीची री वचनिका, ऐतिहासिक परीक्षण, डॉ० दशरथ शर्मा, पृ० 5, सं० दीनानाथ खत्री।

कवि हेमरतन-रचित गोरा-बादल चरित्र में बादशाह अलाउद्दीन को कवि ने 'आलिम' या 'आलिमशाह' कहकर ही सम्बोधन किया है। यथा—

आलिम आविउ निज आवासि ।[1]

तथा—

आलिमसाहि कहहि सांभलु, सुभट सहू को भेलां मिलु ।[2]

इसी भाँति, 'हम्मीरायण' का रचयिता व्यास भाँडा भी अलाउद्दीन को आलमशाह कहकर सम्बोधित करता है—

आलमसाह रणथंभ नइ, वेगि हुवउ असवार[3]

केवल अलाउद्दीन के लिए ही नहीं, अन्य यवनाधिपों के लिए भी कवियों ने इस उपाधि का प्रयोग किया है। उदाहरणतः छंद राउ जइतसी रउ में वीठू सूजा ने हुमायूँ के भाई कामरान् को भी 'साहि आलम' कहा है—

खेतसी साम्हा.......खान ।[4]
परठिया **साहि आलमि** प्रधान ।।

अतः उक्त सन्दर्भ में इसे 'अलप' का दुष्पठित प्रयोग समझना भ्रांत है। न ही यह किसी दिल्ली के सुल्तान का वाचक है, जैसाकि डॉ० टैसीटरी ने समझा है।

शब्दार्थ—

अड़साल=(सं० अरिसाल) शत्रुओं को सालने वाला, प्रचण्ड। **ईखे**=देखकर। **गूडर**=डेरे, खेमे। **आसना**=(सं० आसन्न) निकट। **गा**=गए। **कन्हइ**=पास, आश्रय में।

हव साहियउ न होइ, मरण हुवइ गढ मेल्हियइ ।
आखइ अचळेसर इसउ, सत मंडहु सह कोइ ।।2।।

व्याख्या—

[आगत प्रजाजनों को सम्बोधन करते हुए—] राजा अचलदास ने कहा—अब शस्त्र धारण करने से भी कुछ नहीं होगा (अर्थात् प्रतिरोध करने पर भी गढ़ को बचाना कठिन है) तथापि हम मरने पर ही गढ़ छोड़ेंगे।

1. गोरा-बादिल-चरित्र, कवि हेमरतन, पृ० 23, सं० मुनि श्रीजिनविजयजी।
2. वही, पृ० 26।
3. हम्मीरायण, व्यास भाँडा-कृत, पृ० 10, सं० भँवरलाल नाहटा।
4. छंद राउ जइतसी रउ (163), पृ० 38, सं० डॉ० टैसीटरी।

अत: सब लोग सत्य-व्रत (वीर-धर्म) का अनुष्ठान करो (अर्थात शत्रु से वीरतापूर्वक लड़ते हुए मर-मिटने के शूरोचित कुलधर्म का पालन करने हेतु प्रस्तुत होजाओ)। अथवा, शक्ति या साहस धारण करो।

शब्दार्थ—

हव=अब। **साहियउ**=शस्त्र धारण करने (प्रतिरोध करने)। उदा०—

खींवड़उ सुकरि **साहियइ** खग्गि।[1]

आखइ=कहता है। **सत**=सत्य-व्रत, वीर-धर्म। 'सत' का अर्थ शक्ति, बल या साहस भी होता है। यथा—"रांणा डूंगरसी गढ़ झालीयौ। मास.... गढ़ घेरीयौ। पछै डूंगरसी रौ **सत** छूटौ।"[2]

विशेष—

जीतेजी शत्रु को अपना दुर्ग सौंपना (आत्मसमर्पण करना) और मरना डिंगल-काव्य-परंपरा में पर्याय माने गए हैं। इस आशय का महाकवि सूर्यमल्ल का दोहा प्रसिद्ध है—

तन दुरंग अर जीव तन, कढणौ मरणौ हेक।[3]
जीव विणट्ठाँ जे कढौ, नाम रहीजै नेक।।

राजस्थान का इतिहास ऐसे अनेक जाज्वल्यमान उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब वीरों ने तलवार की धारा से कट मरना श्रेयस्कर समझा परन्तु जीते जी शत्रु को दुर्ग नहीं सौंपा। ज़ालोर के किले में घिर जाने पर भी जीते जी दुर्ग न छोड़ने के अटल संकल्प का सूचक महाराजा मानसिंह जोधपुर द्वारा कथित यह दोहा किसे उद्बोधित नहीं करता—

आभ फटै, धर ऊलटै, कटै बगतराँ कोर।[4]
सीस पड़ै, धड़ तड़फड़ै, जद छूटै जालोर।।

वीराग्रणी अचलदास ने भी ठीक ऐसा ही संकल्प किया।

गढ गरवातन गाँव, लेखउ जाइ लंका लगइ।
चाँदउ ही चाले नहीं, गढ तजि गोरी राव।। 3।।

---

1. छंद राउ जइतसी रउ (261), सं० डॉ० टैसीटरी।
2. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, पृ० 219, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
3. वीरसतसई (281), सूर्यमल्ल, सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।
4. विविध संग्रह, पृ० 157, सं० ठा० भूरसिंह मलसीसर।

व्याख्या—

गागरोण गढ़ और गाँव की गरिमा का लेखा तब लंका तक जाता था (अर्थात् उस समय गागरोण दुर्ग और गाँव की गुरुता और गरिमा लंकागढ़ से होड़ करती थी)। सुल्तान होशंग गोरी के आक्रमण के फलस्वरूप [अन्य वीरों की तो बात दूर, अचलदास का अल्पवयस्क पुत्र] चाँदा भी गढ़ छोड़कर जाने हेतु किसी तरह राजी नहीं हुआ।

शब्दार्थ—

गरवातन=गुरुता या गौरव-गरिमा से युक्त, सुदृढ़, विशाल। प्रबन्ध-चिन्तामणि में गिरिनार को 'हे गरवा गिरिनार!' कहकर सम्बोधन किया गया है।[1] सभा-शृंगार में गढ़-वर्णन के प्रसंग में उल्लेख है—

गढ़ गरुअउ अनइ विसमउ।[2]

लंका लगइ=लंका तक; काव्य-परम्परा में लंकागढ़ की बड़ी ख्याति रही है। प्रबन्ध-चिन्तामणि में आता है—

सायर खाई, लंक गढ़, गढवइ दससिरि राउ।
भग्गक्खय सो भज्जि गय, मुंज म करि विसाउ॥

सन्त जाम्भोजी ने भी लिखा है—

लंक सरीखो कोट न देखूँ रैणाइर-सी खाई।[3]
रावण सरीखो राव न देखूं, चोह चकि आण फिराई॥

चाँदउ=चाँदा, सम्भवतः यह अचलदास का सबसे छोटा एवं अल्पवयस्क पुत्र था, जिसका उल्लेख आगे भी छंद 15(9) में हुआ है।

ऊँचा दुरंग असेस, छळि बळि किणहि न छुट्टही।
लीधा बळ लागै करै, साहि आलम सहु देस॥ 4॥

---

1. प्रबन्ध-चिन्तामणि, तृतीय प्रकाश, पृ० 77, अनु० डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
2. सभा-शृंगार, पृ० 64, सं० अगरचन्द नाहटा।
3. जाम्भोजी : विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, भाग 1, पृ० 386 : सं० डॉ० हीरालाल माहेश्वरी।

प्रस्तुत दोहे के आगे श्री दीनानाथ खत्री द्वारा निर्देशित (संवत् 1740 और 1754 के बीच की) B प्रति में ये 4 दोहे और मिलते हैं, जो सिटी पैलेस जयपुर की 'क' प्रति (अनुमान से संवत् 1700 से 1740 के बीच लिपिकृत) तथा राजस्थानी शोध-संस्थान जोधपुर से प्राप्त प्रति में भी प्राप्य हैं। सिटी पैलेस जयपुर की 'ख' प्रति (संवत् 1748 की) में ये नहीं हैं। संदिग्ध होने के कारण हम इनको मूल पाठ में समाविष्ट नहीं कर रहे हैं, तथापि उक्त तीनों प्रतियों के आधार पर इनका संशोधित पाठ नीचे दे रहे हैं—

ऊगै जैती आज, अर वळि जैती आँथमै।
साहि आलम सनमुख हुवाँ, रिध त्याँ, त्याँहिज राज ।। 1 ।।

हवडा हींदूकारि, काँध न को काढै सकै।
असि खूँदाळम आरुहै, डोलै दिसी चियारि ।। 2 ।।

अधपति आखै ईम, कहाँ जाई, कहाँ ऊवरै।
गरवा गोरी राय कौ, सात समद लगि सीम ।। 3 ।।

प्रिथी विलागी पाय, आरँभ तजि अचलेसवर।
विचि ढीली अर देवगिरि, मिलिया माँडवराय ।। 4 ।।

व्याख्या—

सुल्तान गोरी के प्रचंड पराक्रम का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अनेक विशाल और उत्तुङ्ग दुर्ग, जो छल या बल, किसी भी तरह किसी से विजित नहीं हो सके थे, आलमशाह गोरी ने अखिल प्रदेश सहित उन्हें अपने बल-विक्रम से अधिकृत कर लिया।

शब्दार्थ—

दुरंग=दुर्ग, गढ़। **असेस**=अनेक। **छलि**=1. छल, 2. युद्ध, **छुट्टही**= छुड़ाए जा सके थे : विजित किए जा सके थे। **लागै करै**=लगा कर (बल पूर्वक)। **साहिआलम**=होशंग गोरी।

सगळउ ही संसार, आइजि आलम आणियउ।
जवण पुरउ ज्यंऊँ ज्यंऊँ करइ, किसोइक लाल कुमार ।।5।।

व्याख्या—

अर्थ अस्पष्ट। कदाचित मूल पाठ ही संदिग्ध। तथापि संभावित व्याख्या यों की जा सकती है—

सारे ही संसार को यह प्रचण्ड आलमशाह (होशंगशाह गोरी) आज अपने अधीन कर ले आया है (अर्थात् सभी राजा-सामन्त पराभूत हो इसकी सेना में सम्मिलित होगए हैं)। यह यवनाधिप अपने पुर (राजधानी माँडू) में जो जो [आदेश] करता है, कौन ऐसा लाल या कुमार है [जो उसका उल्लंघन करे ?] अर्थात् आज सभी शूरवीर नरेश इसके वंशवर्ती होगए हैं।

पाठान्तर में दिए गए चारों दोहों के भावानुक्रम में इस दोहे की अर्थ-संगति पूरी तरह बैठ जाती है। तथापि अपनी व्याख्या की प्रामाणिकता में हमें सन्देह है।

शब्दार्थ—

सगळउ=(सं. सकल) सारा, समस्त। **आइजि**=आज। **आणियउ**=ले आया, अधीन कर चढ़ आया। **जवण**=यवन, यवनाधिप=होशंग। **पुरउ**=पुर (मांडू) में। **ज्यउँ-ज्यउँ**=जो-जो, जैसे-जैसे। **किसोइक**=कौन।

तणी पटउळइ भाँत, कबहिं न पड़इ काँबळइ।
सरि गोरीराव क्यउँ सरइ, जिंहि कइ जाति न पाँति ॥ 6 ॥

व्याख्या—

[आलमशाह चाहे कितना ही बली और प्रतापी क्यों न हो, सजातीय और सधर्मी नहीं है। अतः उससे अचलदास की क्या तुलना हो सकती है? इसी भाव का ज्ञापन प्रस्तुत दोहे में किया गया है—]

जैसे पटोले (एक मूल्यवान रेशमी वस्त्र विशेष) पर होने वाली बुनावट ('बँधेज' की कारीगरी), [मोटे ऊनी] कंबल पर कदापि नहीं की जा सकती, वैसे ही गोरी राव से अचलदास की भला क्या समता हो सकती है, जिसकी न कोई जाति है ना पाँति।

भाव यह कि जैसे 'बँधेज' की रंग-बिरंगी बुनावट बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पर ही शोभा पाती है, खुरदरे और मोटे ऊनी कंबल पर नहीं, उसी भाँति यह वीरोचित स्वाभिमान और शौर्य अचलदास जैसे मानधनी एवं कुलीन नरेश को ही शोभा देता है, जो किसी भी मूल्य पर यवनाधिप होशंग के आगे नतमस्तक नहीं हुआ। अर्थात् यह वीरव्रत अचलदास के ही योग्य है।

शब्दार्थ—

तणी=की । **पटउळइ**=(सं. पट्टकूल) एक मूल्यवान रेशमी वस्त्र विशेष; राज० 'पटोळा' । **भाँति**=बुनावट, बँधेज द्वारा वस्त्र पर की गई चित्रकारी । राजस्थान में 'भाँत-भतीली' ओढ़नी प्रसिद्ध है । राजस्थानी का यह 'भाँत' शब्द संस्कृत 'भक्ति' से व्युत्पन्न है, जिसका हर्षचरित में भी उल्लेख हुआ है—'बहुविध भक्ति निर्माण चतुरपुराण.....' । .....पाटन के पटोलों में रंगीन सूत की बुनाई में भी आकृति के लिए 'भात' शब्द चलता है, जैसे नारीकुंजर भात, पान भात, फुलवाड़ी भात आदि ।[1] **सरि**=से । **क्यउँ सरइ**=क्या समता हो ? कैसे पहुँचे ? **जिहि कइ**=जिसके ।

विशेष—

तुलनीय—दूर थकी जे रंग इसी परि रे
राखिस ए पटोलै भाति रे ।[2]

साहण लाख न सार, पैदल पार न पामियइ ।
गुडियइ गोरी राव कइ, मइंगळ सबळ अपार ।। 7 ।।

व्याख्या—

[अलपखां की सेना में] लाखों घोड़े हैं, जिनकी कोई गिनती नहीं तथा पैदल सैनिकों का तो कोई पार ही नहीं पा सकता । साथ ही, अलपखां गोरी की सेना में अगणित मदमस्त और शक्तिशाली हाथी भी झूमते हुए चल रहे हैं ।

शब्दार्थ—

साहण=घोड़े । **सार**=गिनती, शुमार । **पैदल**=पदातिक सैनिक । **गुडियइ**= झूमते हुए चलते हैं । उदा.—

गमे गमे मदगलित **गुड़ता**,
गात्र गिरोवर नाग गति ।[3]

मइंगल=मदकल या मदगल, मस्त हाथी ।

अचळेसर अणपार, दळ सजियउ दाणव तणउ ।
लंका लेयणहार, काइ गोरी राव गागुरणि ।। 8 ।।

---

1. हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन; पृ० 74, ले० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ।
2. विनयचन्द्र-कृति-कुसुमांजलि, पृ० 57, सं० भँवरलाल नाहटा ।
3. वेलि क्रिसन-रुक्मिणी री, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी ।

व्याख्या—

राजा अचलदास ने इस विशाल सेना को देखकर कहा—यवन (सुल्तान होशंग) का अपार सैन्य-दल [युद्धार्थ] सज्जित होगया है। [जान पड़ता है] गोरी राव या तो लंका लेना चाहता है या गागरोण।

इसे अचलदास के प्रति किसी अन्य का कथन मानकर भी व्याख्या की जा सकती है।

शब्दार्थ—

दळ=सेना। **दाणव**=यवन। डिंगल-काव्यों में यवनों के लिए प्रायः 'असुर', 'दानव' आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है—

मीर घड़ा कूमारी मांढै,
अण परणी लसीयौ असुर।[1]

काइ=अथवा।

विशेष—

लंका-विजय करना, जान पड़ता है, चक्रवर्तित्व का सूचक रहा है। अतः इस रूप में प्राचीन काव्यों में इसका प्रयोग किसी राजा के प्रतापी या पराक्रमी होने के वर्णन-प्रसंग में रूढ़ होगया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। उदाहरणार्थ प्रबन्ध-चिन्तामणि में गुर्जराधीश सिद्धराज जयसिंह के सम्बन्ध में एक चारण कवि द्वारा कथित यह दोहा द्रष्टव्य है—

को जाणइ तुह नाह, चित्त तुहालेइ चक्कवइ।[2]
लहु लंकह लेवाह, मग्गु निहाळई करणउत्त॥

अर्थात् सिद्धराज को समुद्र की ओर निहारते देखकर पास खड़े एक चारण कवि ने कहा—

हे नाथ! तुम्हारे चित्त की बात कौन जानता है? तू चक्रवर्ती-पद पाने का सोच रहा है। इसीलिए हे कर्णपुत्र! तुम लंका-फल लेने के लिए (लंका-विजय करने हेतु) वहाँ का मार्ग देख रहे हो।

काव्य-परम्परा में लंकागढ़ को अजेय माना गया है—

---

1. राठौड़ रतनसिंघ री वेलि (10), पृ० 28, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
2. प्रबन्ध-चिन्तामणि, तृतीय प्रकाश, अंक 91-96, अनु० डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

लंका ज्यूँ अगजीत है, घणा थाट रे घेर ।[1]
रिधू रहेसी भाटियाँ, महि पर जैसलमेर ।।

आलम तइ आयाह, विग्रह हुवइ, कीधइ विढणि ।
अचळेसर गढ अवछड़े, जिव ले मोकळि जाहि ।। 9 ।।

व्याख्या—

कदाचित् होशंग गोरी के किसी दूत का अचलदास के प्रति कथन--वह आलमशाह (होशंग गोरी) आगया है (गागरोण पर चढ़ आया है)। युद्ध करने से बैर ही बँधेगा। अतः हे अचलदास ! [संधि कर लो तथा] गढ़ छोड़ कर तुम अपने प्राण बचा [अपने श्वसुर राणा] मोकल के पास चले जाओ।

शब्दार्थ—

तइ=वह । **विग्रह**=युद्ध, कलह या बैर । उदा.—

रावण राम जु वाढी राडि, **विग्रहु** भयउ सुपनखा लागि ।[2]

कीधइ=करने से । **विढणि**=युद्ध । **अवछड़े**=छोड़कर । **जिव ले**=प्राण बचाकर । **मोकळि**=चित्तौड़ के राणा मोकल, जो अचलदास के श्वसुर थे। 'लालाँ मेवाड़ी' इन्हीं की बेटी थी।

तउँ तूँवर दिसि तांणि, कमि काहि कछवाहाँ दिसइ ।
अचळ ! अड़े आलम सरिस, अंत आपरउ न आंणि ।। 10 ।।

व्याख्या—

अलपखां ने आगे कहलाया—[यदि तू राणा मोकल के पास जाना नहीं चाहता] तो [अपने श्वसुर] तँवर राजा की ओर पलायन करजा, अथवा [अपने अन्य श्वसुर] कछवाहों के पास (आंबेर) चला जा। परन्तु हे अचलदास ! आलम (अलपखां) से अड़कर (टक्कर ले) तू अपनी मृत्यु को न बुला।

शब्दार्थ—

तउँ=तू । **तूँवर दिसि**=यद्यपि खिल्चीपुर की ख्यात या अन्य किसी तवारीख में अचलदास की किसी तँवर रानी का उल्लेख नहीं मिलता तथापि

---

3. जैसलमेर री ख्यात, पृ० 47, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
1. प्रद्युम्न-चरित, पृ० 59, सं० पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ व डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ।

वचनिका के छंद 14 (8) में उसकी तोमर वंशीय रानी का स्पष्ट उल्लेख हुग्रा है, जो प्रामाणिक है। ग्रतः यहाँ 'तूँवर दिसि' से ग्राशय ग्रचलदास के श्वसुर तँवर राजा के पास जाने से है।

तांणि=पलायन कर जा, चला जा (प्रस्थान>प्रस्ताण>ताणि ?) उदा०—

वीकहर देखि विसमउ वराह,
ताणिया मुगल्ले पाउ ताह ।[1]

क्रमि=चला जा; उदा०—

पत सूं जोड़ण पांण, चँवरी दे सह को चलै ।[2]
स्रग जावण सुरतांण, काठां दिस तूं हिज **क्रमै** ।।

कछवाहाँ दिसइ=ग्रचलदास की एक रानी कछवाही भी थी। ग्रतः यहाँ भी ग्राशय ग्रपने श्वसुर ग्रांबेर के कछवाहा राजा के पास चले जाने से है।

सरिस=से, उदा०—

उरुषु रुहडे फाडियडु मोहि **सरिसु** इणि ग्रलिउ जंपिउ ।[3]

ग्रंत=मृत्यु। **ग्रापरउ**=ग्रपनी

13. वात

तिणइ वेळा तिणइ ताळि राव-राणा, सुहड़ सावंत सहु कोइ राजा ग्रचलेसरहइ परीछावइं छइ। राजा परीछायउ परीछइ नहीं। सू काहउ कहइ—

व्याख्या—

उस घड़ी, उस समय राव, राणा, सुभट, सामंत सब कोई राजा ग्रचलेश्वर को समझाते हैं। [परन्तु] राजा समझाने से समझता नहीं। वह क्या कहता है—

शब्दार्थ—

ताळि=समय। **परीछावइ**=समझाते।

14. दूहा

सझि ग्रायो सुरिताण, ग्रागा लगि ग्राखै ग्रचळ।
गढ़पति गढ मेल्ही करी, चालि न गउ चहुवाण ।। 1 ।।

---

1. छंद राउ जइतसी रउ (213), पृ० 48, सं० डॉ० टैसीटरी।
2. पाबूप्रकाश (वड़ा); ग्रासिया मोडजी-कृत; पृ० 333, प्र० ठा० भोपालसिंहजी कैरू।
3. प्रद्युम्न-चरित, पृ० 56, सं० पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ व डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।

व्याख्या—

अचलदास [अपने सुभट-सामंतों से] कहता है—सुल्तान अपने सैन्यदल से सज्जित हो निपट आगे तक आ गया है परन्तु [आज तक] कोई भी चौहान नरेश अपना गढ़ छोड़कर नहीं गया है। [अतः मैं भी जीतेजी गढ़ छोड़कर नहीं जाऊँगा]।

शब्दार्थ—

आगा लगि=निपट आगे तक। **आखै**=कहता है। **गढ़पति**=राजा, नरेश। **मेल्ही करि**=छोड़कर।

नमै न खीची नीम, गढपति गढ मेल्ही करी।
उवह हुवै उपराविठउ, सींध जाइ तजि सीम ।। 2 ।।

श्री दीनानाथ खत्री-संपादित B प्रति तथा सिटी पैलेस (जयपुर) की 'क' प्रति में दोहा नं. 2 के बाद यह दोहा अधिक है, जिसे संशोधित कर दे रहे हैं—

संत महँत सह कोय, ज्यों जावै त्यौं जायजे।
मो गढ़ ओछंडियै मरण, कळि कुळ पालट होय ।।

व्याख्या—

गढ़ छोड़कर प्रणत हो पलायन करने का खीची नरेशों का नियम नहीं है। अतः वह अपने इस वीरोचित कुलमार्ग से तभी विमुख होगा जब समुद्र अपनी मर्यादा तोड़ देगा अथवा [काली] सिंध नदी अपनी सीमा छोड़ देगी। अर्थात् जब तक समुद्र अपनी मर्यादा पर अटल है एवं गढ़ गागरोण के पास बहने वाली काली सिंध अपनी तट-सीमा में अव्याहत गति से प्रवाहित है—अचलदास भी जीतेजी गढ़ न छोड़ने के अपने कुलधर्म पर अडिग है।

शब्दार्थ—

नीम=1. (सं. नियम), व्रत, संकल्प। उदा.—

1. मनसा वाचा कर्मणा, ए **नीम** तेणि कर्‌यु ।[1]
2. रात्रि भोजन तु **नीम**, अवर पाप सवे टालियाए ।[2]

---

1. नलाख्यान, रा० स० को०, द्वि० खं० द्वि० जि०, पृ० 2198, सं० सीताराम लालस।
2. महाकवि ब्रह्म जिनदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० 237, ले० डॉ० प्रेमचन्द रांवका।

2. निश्चय। उदा०—

प्रलै वज्र करेवा **नीम** दांमण पतन ।[1]

उवह = 1. (सं. उदधि) समुद्र । उदा०—

असपति **उअह** जइतउ अगत्थि ।[2]

2. वह । 'ऊह' भी इसी का रूपभेद है—

आजि ऊह ऊरड़ै, सुजड़ गहि समा विसमां ।[3]

द्वितीयार्थ में पंक्ति की व्याख्या यों होगी—'वह तभी विमुख होगा जब……… ।' किन्तु हम 'उवह' को समुद्रवाची अर्थ में ही ग्रहण करते हैं, जैसाकि प्रयोग-परम्परा से पुष्ट है ।

उपराविठउ = विमुख, विपरीत । उदा.—

प्री मारुवणी सामुअउ, म्हाँ **उपराठउ** अज्ज ।[4]

सिंध = काली सिंध नामक नदी, जो गढ़ गागरोण के पृष्ठ भाग में बहती है । इसके विषय में नैणसी की ख्यात का उल्लेख द्रष्टव्य है—

"गढ़ वासे नदी सिंध वहती सदा रहे छै । तिणारो पांणी गढ़ मांहै वाळियौ छै ।"[5]

'सींध' को 'सिन्धु' का पर्याय मानकर भी अर्थ किया जा सकता है किन्तु इसमें दो आपत्तियाँ हैं । प्रथम तो सिन्धु का पर्याय 'उवह' (उदधि) शब्द पहले आ चुका है । दूसरे, 'काली सिंध' नामक नदी का प्राचीन नाम 'सिंध' ही है, जिसके भौगोलिक अस्तित्व को देखते हुए गागरोण के संदर्भ में इसे उक्तार्थ में ग्रहण करना संगत है, जिसके साथ अचलदास की संवेदनाएँ अधिक गहराई से जुड़ी हुई हैं ।

लेखवि कुळ की लाज, लाज लोपि लोकेसवर ।
स्वामि कथन आयी सुणण, तरणि भोजावत भाज ।। 3 ।।

---

1. बाँकीदास-ग्रन्थावली, भाग 3, पृ० 123, सं० बारहठ मुरारीदान कविया और महतावचन्द्र खारैड़ ।
2. छंद राउ जइतसी रउ : (361) पृ० 82 सं० डॉ० टैसीटरी ।
3. बिन्हैरासो, पृ० 15 सं० सौभाग्यसिंह शेखावत ।
4. ढोला मारू रा दूहा : सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर ।
5. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 115, सं० बदरीप्रसाद साकरिया ।

व्याख्या—

अपने वीर कुल की लाज रखने का उपयुक्त अवसर आया देख भोजपुत्र-अचलदास की रानियाँ अपने स्वामी राजा अचलदास (लोकेश्वर) के वचनों को सुनने हेतु [स्त्रीजनोचित] सहज लाज-संकोच छोड़कर वहाँ तुरन्त आ उपस्थित हुईं।

शब्दार्थ—

लेखवि = देखकर। **लोपि** = छोड़कर, त्याग कर। **लोकेसवर** = राजा अचलदास के लिए प्रयुक्त। **तरणि** = तरुणियाँ, रानियाँ। **भोजावत** = अचलदास, भोज का पुत्र। **भाज** = दौड़कर, तुरंत।

सौह गढ़पति स्रीकार, भड़ स तुहारै भांमणै।
मनि मान्यो मोकल-सधू, भलउ भलउ भरतार ॥ 4 ॥

व्याख्या—

[राजा अचलदास की पटरानी] राणा मोकल की पुत्री (पुष्पावती) ने अपने पति का मनोनुकूल वक्तव्य सुन कहा—हे सब गढ़पतियों में श्रेष्ठ ! सब सुभट-सामंत आपके इन वीर वचनों पर बलिहारी जाते हैं। हे स्वामिन् ! आपने बहुत ही उत्तम संकल्प किया है।

शब्दार्थ—

सौह = सब। **स्रीकार** = श्रेष्ठ, उत्तम। उदा०—

1. अरविंद निर्मल विपुल विकसित, हसत वन **श्रीकार**।[1]
2. हमहुँ मन याही सुमति, सगपत यह **श्रीकार**।[2]

भड़ = योद्धा। **भांमणइ** = बलिहारी, न्योछावर। **सधू** = पुत्री (सं. सु दुहिता) **भरतार** = पति (सं. भर्ता)

सामी ! तूँ सर-जाळि, पइससि पुहपाई कहइ।
हउँ ऊजाळिसि आपणा, त्रेवे पख तिणि ताळि ॥ 5 ॥

व्याख्या—

रानी पुष्पावती ने [अपने स्वामी को प्रोत्साहित करते हुए] पुनः कहा—

---

1. विनयचंद्र-कृति-कुसुमांजलि, पृ० 63, सं० भँवरलाल नाहटा।
2. राजविलास, मान-कृत, पृ० 46 (3-26), सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

हे स्वामी ! जब आप शत्रु के धारासार बाणों की बौछार में प्रवेश करेंगे तो मैं भी उसी समय [चितागिन में प्रवेश कर] अपने तीनों कुलों को उज्ज्वल करूँगी।

शब्दार्थ—

सर जाळि=शर-समूह, बाण-वर्षा। **पइसिसि**=प्रवेश करूँगी। **पुहपाई**= पुष्पावती। सिटी पैलेस जयपुर की 'ख' प्रति में दोहे के इस चरण का पाठा० 'पैसिस हूँ पावक मही' मिलता है। यह पाठान्तर विचारणीय है। कारण, कवि ने अचलदास की अन्य किसी भी रानी का नामोल्लेख नहीं किया है। तद्विपरीत, उसके वंशोल्लेख से ही उसका सूचन किया है, जैसे कछवाही, वागुडणि आदि। अतः यहाँ इस प्रवृत्ति के अपवाद-स्वरूप 'पुहपावती' का उल्लेख पाठ की प्रामाणिकता के प्रति सन्देह उत्पन्न करता है। काव्य-परम्परा में भी अचलदास की इस रानी का नाम 'लालाँ मेवाड़ी' मिलता है, पुष्पावती नहीं। परन्तु वचनिका की प्राचीनतम प्रति (संवत् 1631) में यही पाठ होने से हमने इसमें परिवर्तन करना उचित नहीं समझा। तथापि विचारणार्थ अपना आशय व्यक्त कर दिया है। **त्रेवे पख**=तीनों पक्ष, पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल, अर्थात् पीहर, ननिहाल और ससुराल। मिलाइए—

> जीवंतां **त्रिहुँ पखां** चडै जळ,
> मरे तो भेदै सूरज मंडल।[1]

तिणि ताळि=उस समय।

> बहु वेलुक वरसंत, कोटे कछवाही कहइ।
> तो आडी होइसउँ तठइ, हउँ कोसीसाँ कंत॥ 6॥

व्याख्या—

अचलदास की कछवाही रानी ने भी अपने पति को वैसे ही वीरोचित वचनों से प्रेरित करते हुए कहा—हे कंत ! जब दुर्ग पर शत्रुओं की धारासार बाणवर्षा होगी तो मैं भी वहीं कोट पर आपके पार्श्व में खड़ी हुई कंगूरे-कंगूरे पर आपके आगे आ-आकर आपकी रक्षा करूँगी (बाणों को स्वयं अपने सीने पर झेलूँगी)।

---

1. राजरुपक, पृ० 763, सं० पं० रामकर्ण आसोपा।

शब्दार्थ—

वेलुक=बाण विशेष (रूपभेद, बेलख, बेलखि आदि)। इस शब्द के अर्थ पर टिप्पणी करते हुए डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं—"एक प्रकार का तीर, जिसका सिरा दुफंकी होता था या जिसकी अनी बेलचे के आकारं की होती थी। फा० वेलक (स्टाफा. 224)। बीकानेर की प्रति का शुद्ध पाठ 'वेलक' है।"[1] उदा०—

1. **वेलक** काटि कमानहि जोले।[2]
2. **वेलखि**—अणी, मूठि द्रिठ बाँधि।[3]

कोटे=कोट या दुर्ग पर। **कछवाही**=अचलदास की कछवाहा वंशीया रानी। चौहान-कुल-कल्पद्रुम के अनुसार यह आमेर के कछवाहा राजा की पुत्री थी।[4]
आडी=आगे, अवरोध बनकर। **कोंसीसाँ**=कंगूरों, (कपिशीर्षकों)।

भलउ मंत्र भड़िवाह, बोलइ साँखुलि, वागुडणि।
सउकि तणउ पीहर सदा, हवइ निसवादउ नाह॥ 7॥

व्याख्या—

अचलदास की साँखली तथा बागड़ी (डूँगरपुर की) रानियों ने कहा—वीरत्व-जन्य कीर्ति अर्जित करने का यह संकल्प बहुत उत्तम है। हे नाथ! सौत के होते तो पीहर का वास भी बेस्वाद लगता है। अर्थात् सौत के अस्तित्व की व्यथा पीहर में भी मन को सालती रहती है, जिससे वहाँ का निवास विरस होजाता है।

ध्वनि यह कि आप युद्ध में वीरगति प्राप्त करेंगे तो हम भी जौहर का अनुष्ठान कर सहगमन करेंगी, जिससे स्वर्ग में अप्सरा आपका वरण न कर सकेगी एवं हमें सौत (अप्सरा) का दुःख नहीं देखना पड़ेगा। अतः आप निश्चय ही मरण-व्रत का पालन करें ताकि हम भी जौहर की ज्वाला में जल आपकी सहगामिनी हों। हम यहाँ रह सौत (अप्सरा-वरण) का दुःख कदापि नहीं देख सकतीं, जिसके होते पीहर का निवास भी कुलांगनाओं के लिए दुखद होजाता है।

---

1. कीर्तिलता, पाद-टिप्पणी, पृ० 242, सं० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल।
2. वही।
3. वेलि क्रिसन रुक्मिणी री, (129), सं० नरोत्तमदास स्वामी।
4. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृ० 104।

शब्दार्थ—

भलउ=भला, उत्तम। **मंत्र**-विचार, संकल्प।

भड़िवाह=बल, पराक्रम, वीरत्व, वीरत्वजन्य कीर्ति। उदा.—

1. तूं नारायण मथुरारउ, तइ कंस भन्यो **भरिवाउ**[1]
2. जो भाजइ गयवरु **भडवाह**, परिणइ कुमरि देस अधराउ।[2]
3. विषम दुर्ग मई सइ पालटिया भरतषंडि **भडवाउ**[3]

द्वितीय पंक्ति में प्रयुक्त 'भडवाह' का अर्थ डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्रभृति सम्पादकों ने 'भटराज' कर दिया है,[4] जो अस्पष्ट व असंगत है। डॉ० दशरथ शर्मा ने इस शब्द के अर्थ पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है—"प्रवाद से मिलता-जुलता शब्द 'भट्टवाद' (वीरत्व की ख्याति) प्राचीन राजस्थानी और गुजराती में प्रचलित रहा है, जिसका अपभ्रष्ट रूप 'भडवाउ' अनेक ग्रन्थों में मिलता है।"

साँखुळि=काव्य-परंपरानुसार उमा साँखली ? जाँगलू के किसी खींवसी साँखला सामन्त की बेटी ? लालाँ मेवाड़ी की वात में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। उक्त 'बात' के अनुसार यह अत्यन्त रूपवती और गुणवती थी किन्तु सपत्नीक ईर्ष्या के कारण मेवाड़ी रानी ने अचलदास का उससे मिलना तक बन्द कर रखा था। बाद में झीमा चारणी की चतुराई से अचलदास और उमा का मिलन हुआ तथा दोनों प्रगाढ़ प्रेम-पाश में बँध गए। इस आशय का एक दोहा प्रसिद्ध है—

ऊमा अचळौ मोहियौ, ज्यूँ चंदण भूयंग।[5]
रात दिवस भीनौ रहै, भमरौ सुमनां रंग॥ 74॥

बागुडणि=वागड़ (डूँगरपुर) के राजा की बेटी। **सउकि**=सौत। रूढ़ि में अप्सरा का वाचक, जैसाकि 'वीर सतसई' में सूर्यमल्ल ने अप्सरा के लिए 'ल्होड़ी सोक' (छोटी सपत्नी) का प्रयोग किया है—

---

1. प्रद्युम्न-चरित, पृ० 95, सं० पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ तथा डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल।
2. जिणदत्त-चरित, पृ० 111, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त व डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
3. कान्हडदे-प्रबन्ध, पृ० 77, सं० प्रो० कांतिलाल बलदेवराम व्यास।
4. जिणदत्त-चरित, पृ० 211, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, व डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
5. रसराज (75), पृ० 30 सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

कुसुम मौड़, केसर बसरण, नेह न देह लसाय।[1]
भाभी कंत सकैक तो, ल्होड़ी सोक वसाय ।। 104 ।।

इसे अभिधार्थ में ग्रहण करते हुए भी व्याख्या की जा सकती है किन्तु आसन्न युद्ध के प्रसंग तथा अप्सरा-वरण सम्बन्धी मान्यता के सन्दर्भ में हमें प्रस्तावित अर्थ ही उपयुक्त लगा, जो परम्परा-पुष्ट है। **हवइ**=होता है। **निसवादउ**= बेस्वाद, विरस। **नाह**=नाथ

विशेष—

डॉ० दशरथ शर्मा ने इस छंद में प्रयुक्त 'साँखुळि वागुडरिण' का अर्थ "Sankhuli queen of Vagad" किया है,[2] जो भ्रांत है क्योंकि यहाँ कवि का आशय दो रानियों से है–साँखुली और वागुडरणी (अर्थात् बागड़ की) न कि 'बागड़ की साँखुली' से।

नाह तरणउ नर-लोइ, म्रित जारिणयउ महासती।
अन मेल्ही मेल्ह्यउ उदक, तूँवरिणी दिन दोइ ।। 8 ।।

व्याख्या—

परम पतिव्रता, अचलदास की तँवराणी (तोमरवंशीया) रानी ने अपने पति की नरलोक में मृत्यु अवश्यंभावी जान [गत] दो दिनों से अन्न-जल का भी परित्याग कर दिया था। (अथवा, उसी दिन अन्न और जल-दोनों का त्याग कर दिया)।

शब्दार्थ—

नर-लोत=नरलोक, इहलोक। **म्रित**=मृत्यु। **अन**=अन्न। **मेल्ही**=छोड़ दिया। **उदक**=जल।

अति लहुवउ तदि आप, डरपायउ डरपै करै।
चाँदउ ही चालइ नहीं, बेटो अवछँडि बाप ।। 9 ।।

व्याख्या—

उस समय आयु में बहुत छोटा होने कारण [अचलदास का पुत्र] चाँदा, जो [बड़ों द्वारा] डराये जाने पर स्वयं डर जाता था, आज वही अपने पिता को छोड़ कर [दुर्ग से बाहर] नहीं जा रहा। अर्थात् उस अल्प-वयस बालक

---

1. वीरसतसई, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।
2. Rajasthan Through The Ages; P. 734; Dr. Dashrath Sharma.

पर भी ऐसा सूरातन चढ़ गया था कि वह बाल-सुलभ भय छोड़कर अपने पिता के साथ ही रक्षार्थ मर-मिटने को उद्यत होगया था।

शब्दार्थ—

लहुवउ=(सं. लघुवय) अल्प-वयस। **चाँदउ**=चाँदा, अचलदास का पुत्र? यद्यपि प्राप्त इतिहास ग्रंथों में अचलदास के चाँदा नामक किसी पुत्र का उल्लेख नहीं मिलता तथापि वचनिका का यह वर्णन निश्चित रूपेण उसके अचलदास का पुत्र होने का ही सूचन करता है। सम्भव है, शैशवावस्था में होने के कारण संबद्ध इतिहास-ग्रन्थों में उसका उल्लेख न हुआ हो। **अवछंडि**=छोड़कर।

> नी मनिउ मनि माहि, भाई घरि भोजा तणइ।
> प्रजा कीध मन पाधरा, मरण देखि मरिवाह ॥ 10 ॥

व्याख्या—

पाठ व अर्थ संदिग्ध। संभावित व्याख्या–यों, भोज के पुत्र अचलदास के घर में उसके भाई-बन्धुओं में से कोई भी गढ़ छोड़कर जाने हेतु मन में नहीं माना (तैयार नहीं हुआ)।

उधर, प्रजा ने भी मरण अवश्यंभावी देख रणाङ्गण में ही मर-मिटने का निश्चय कर लिया।

शब्दार्थ—

नी मनिउ=नहीं माना ?। **भोजा तणइ**=अचलदास। **कीध मन**= निश्चय कर लिया। **पाधरा**=युद्ध के मैदान में। **मरिवाह**=मरने का।

विशेष—

छंद का प्रथम चरण संदिग्ध है। हर प्रति में इसके विभिन्न पाठान्तर मिलते हैं। हमने प्राचीनतम प्रति के पाठ को ही स्वीकार कर अर्थ किया है। तथापि, पाठगत प्रामाणिकता के प्रति हम आश्वस्त नहीं है।

> बापड़ता विरदैत छळि धरि कुळी छतीस सहि।
> चाल्या स्वामि समाणसा, सउ माणस साखैत ॥ 11 ॥

व्याख्या—

श्रेष्ठ विरुद वाले समस्त छत्तीस वंशीय क्षत्रिय अपनी धरती की रक्षा के लिए अपने-अपने सामंतों को लेकर [युद्धार्थ] ललकारते हुए चले। वे सभी सामंत बड़ी साख वाले (युद्ध में अपनी वीरता के लिए प्रतिष्ठा-प्राप्त) शूरवीर थे।

शब्दार्थ—

बापड़ता=ललकारते हुए ? वीरोन्मेष में भरे हुए ?। कदाचित् 'बापूकारता' का लघु रूप ? उदा०—

बेली बापूकारिया, पूरै बेल सवाय ।[1]

विरदैत=विरुद धारण करने वाले वाले; वीर और यशस्वी । **छळि**=1. लिए और 2. युद्ध । **धरि**=धरती । **कुळी छतीस**=छत्तीस वंशीय क्षत्रिय; क्षत्रियों के छत्तीस वंश प्रसिद्ध हैं । **सहि**=समस्त । **समाणसा** अपने-अपने मनुष्यों (सामंतों) सहित । **सउ**=सभी । **साखैत**=साख वाले; प्रतिष्ठा प्राप्त शूरवीर, अथवा श्रेष्ठ शाखा के, कुलीन । उदा०—

चढिआया सांमहा सुहड, साखेत भुजाळा ।[2]

अेक पाल्हा की पूठि, पूठि अेक पातल तणी ।
उलिगाणा आगी हुवा, अति दिन वेळा ऊठि ।। 12 ।।

व्याख्या—

[उन सामन्तों में से] एक पाल्हणसिंह के पीठ पीछे (उसका पृष्ठरक्षक बनकर) तथा एक प्रताप के पीछे नियत हुआ । उनके सहवर्ती के रूप में अनेक आश्रित सामंत बड़े तड़के ही उठकर युद्धार्थ सबसे आगे आ डटे ।

शब्दार्थ—

पाल्हा= पाल्हणसिंह, अचलदास का पुत्र, जिसे बाद में वंश-रक्षार्थ दुर्ग के घेरे से बाहर निकल जाने हेतु प्रेरित किया गया । **पूठि**=पीठ पर, पृष्ठ रक्षक के रूप में । **पातल**=प्रताप, अचलदास का पुत्र । **उलिगाणा**=आश्रित सेवक या सामंत । मध्ययुगीन साहित्य में 'ओलग' या 'ऊलग' प्रवास-सेवा तथा 'ओलिगाणा' या 'उलिगाणा' प्रवासी सेवक या सामंत (जिसका एक रूपभेद 'ओलगिया'=प्रवासी प्रियतम है) के अर्थ में प्राय : रूढ़ होगए हैं । उदा०—

1. कांई सिरजी उलगाणां री नार ।[3]
2. उलगाणां खायइ सदा, उरण हुई इकवार ।[4]

---

1. राजरूपक, सं० पं० रामकर्ण आसोपा ।
2. गजगुणरूपकबंध पृ० 73, सं० सीताराम लालस ।
3. बीसलदेवरास (3), सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त ।
4. हम्मीरायण, पृ० 22, सं० भँवरलाल नाहटा ।

युद्ध के समय ये अपने आश्रयदाता स्वामी के लिए प्राण निछावर कर स्वामिधर्म से उऋण होते थे ।

आगी=आगे, अग्रभाग में । उदा०—

ओलगू व्रन्न **आगी** अढार ।[1]

जाइ जीव जोलै जेथि, तिण वेळा हूवइ तठइ ।
वँसपति को विहडयउ नहीं, तेथी अवछँडि तेथि ।। 13 ।।

व्याख्या—

अपने प्राण जाने तक, जिसे जहाँ नियुक्त किया गया, वह उस समय (युद्ध में) वहीं डटा रहा (अर्थात् उस युद्ध-काल में हर सामंत अपने निर्धारित स्थान पर अविचल रहा) । इस प्रकार, अपने वंश के स्वामी अचलदास को छोड़कर कोई उससे विलग नहीं हुआ ।

शब्दार्थ—

जाइ....जोलै=प्राण जाने तक । **जेथि**=जहाँ । **वंसपति**=वंश का स्वामी, अचलदास । **विहड्यउ**=छोड़ा, बिछुड़ा, या विलग हुआ । उदा०—

1. जम्मे विण **विहडइ** णेहु जेम ।[2]
2. नेह सुकुल नारी तणो, नवि **विहडइ** प्रिय दिट्ठ ।[3]

तेथी=उससे । **अवछंड़ि**=छोड़कर । **तेथि**=वहाँ ।

निरखइ अचळ निडार, सूराँ गुरु सुरिजइ उदइ ।
अेकणि दिसि आया असुर, पह दूजी परिवार ।। 14 ।।

व्याख्या—

शूर-शिरोमणि एवं निर्भीक अचलदास सूर्योदय के समय एकटक देख रहा है कि एक ओर से तो यवन-दल चढ़ आया है तथा दूसरी ओर सें [उससे लोहा लेने हेतु] राजा का अपना परिवार (सैन्यदल एवं परिग्रह) है ।

शब्दार्थ—

निडार=निडर, निर्भीक । उदा.—

नेतलउ चडिय माभी **निडार** ।[4]

---

1. छंद राउ जइतसी रउ, (96), पृ० 22, सं० डॉ० टैसीटरी ।
2. करकंडचरिउ (3-8-10), पृ० 38, सं० डॉ० हीरालाल जैन ।
3. सदयवत्स-वीर-प्रबन्ध (254), पृ० 163, सं० मंजुलाल मजमुदार ।
4. छंद राउ जइतसी रउ., (267), पृ० 61, सं० डॉ० टसीटरी

सूराँ गुरु=शूर-श्रेष्ठ, शूरवीरों में शिरोमणि। **सुरिजइ उदय**=सूर्योदय के समय। **असुर**=यवन, सुल्तान होशंग की सेना। **पह**=(सं. प्रभु) राजा।

कळि पाळट करणीक, सातल सोम हमीर जिम।
गढ अनियइ गाँवाँ तणाँ, मिळइ राव मरणीक ॥ 15 ॥

व्याख्या—

[राजा अचलदास की सेना में] सातल, सोम और हमीर के समान युद्ध में विप्लव ढाने वाले गढ़ (गागरोण) तथा [आसपास के गांवों के] मरणोद्यत सामंत आ सम्मिलित हुए।

शब्दार्थ—

कळि=युद्ध। उदा०—
जैतहत्थ **कळि** मत्थ, साथि भाटी रिण घोयर।[1]

पाळट=उथल-पुथल, विप्लव। उदा०—
1. डिडवाणउ **पालटि** घाइ दाइ।[2]
2. प्रथी **पाळट** हुवै पाट मंदिर पड़ै।[3]

करणीक=करने वाले। **सातल सोम**=अलाउद्दीन की सेना के विरुद्ध, सिवाणें के दुर्ग की रक्षा में वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आने वाले चौहान वीर। **हमीर**=रणथंभोर का प्रसिद्ध चौहान राजा। **अनियइ**=और (अनइ, नइ आदि का रूपभेद)। **मरणीक**=मरने-मारने को उद्यत रणशूर।

मिळतइ मेछि कंधारि, पह मिळतइ परिवार कइ।
सगळउ घर सींघण तणउ, आभ अड़चउ अहँकारि ॥ 16 ॥

व्याख्या—

कंधार के म्लेच्छों (सुल्तान होशंग के यवन सैनिकों) के साथ राजा [अचलदास] के परिवार (निजी सामन्तों) का साक्षात् होते ही, सींघण का सारा ही घर [वीरोचित] अमर्ष से उल्लसित हो आकाश के जा अड़ा। (अर्थात् सींघण के सभी वंशज, राजा अचलदास सहित सभी खींची योद्धा, शत्रु से लोहा लेने हेतु वीर दर्प से फूल उठे; मानो आकाश के जा अड़े)।

---

1. गजगुणरूपकवंध पृ० 19, सं० सीताराम लालस।
2. छंद राउ जइतसी रउ, (8) पृ० 3, सं० डॉ० टैसीटरी।
3. डिंगल-गीत, पृ० 43, सं० रावत सारस्वत, एवं कु० चंडीदान साँदू।

शब्दार्थ—

मेछि=म्लेच्छ, यवन। **सींघण**=अचलदास का पूर्वज। **आभ....अहंकारि**= वीरोन्मेष या वीरदर्प से योद्धा के आकाश के जा अड़ने का वर्णन डिंगल-काव्यों में पारंपरिक है। यह शौर्य-वर्णन की एक प्रचलित काव्य-रूढि है। यथा—

1. ऊठिया कोपि आमळिय अङ्ग।[1]
   आकासि अड़ाविय उत्तिमङ्ग।
2. सुसंग्राम गजसिंघ सीस गयणंगण लग्गै।[2]

उपर्युक्त रूढि का उत्स कदाचित् वामनावतार-प्रसंग में है, जब वामन-रूपधारी विष्णु ने अपने अलौकिक पराक्रम से अपने शरीर को ब्रह्माण्डव्यापी बना लिया था—

महा रोस पूरियौ, जाणि ऊसस्सै वामन।[3]

डिंगल-कवियों को यह उपमा इतनी प्रिय हुई कि उन्होंने अपने चरित्रनायक के शौर्य-स्फीत रूप का चित्रण करने हेतु उसे भी आकाश के जा अड़ाया है।

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित संस्करण में 'आइ अड़यउ अहंकारि' पाठ है, परन्तु सिटी पैलेस जयपुर की 'क' प्रति सहित अन्य प्रतियों में उपलब्ध पाठान्तरों तथा डिंगल-काव्यों में प्रचलित एतद्विषयक काव्यरूढि को दृष्टिगत रखते हुए हमने प्रस्तावित पाठ ही स्वीकार किया है।

15. वात

तिणइ वेळा, तिणइ ताळि राव-राणा, सुहड—सावंत सहू को राजा अचलेश्वर हइं भेटइ छइ ।। 1 ।।

पहली भेट तउ त्यागियाँ राइ कउ जस-तिलक, अरथ-गढाँ, राइ-राजान-कउ भरतार पाल्हणसी बाला कउ। अवर ते पोमा, महिराज भीमा भोज द्यौ का। सूर धीर, आसल पुरिष-प्रसाद। पातळउ सीह पातळ, परस्त्री-परामुख ते राजा जउणसी और धीरा, बाहड, कल्याणसीह। [रामदे का माँहि जोतिपुरा रि (रौ ?) करमसीह। धाडुका माँहि खेढौ, पीथौ, धाडिग, मेलौ, जौलसी] कउलसी का माँहि उरजन, सुरजन, मेर, महवन, महिराज ।। 2 ।।

---

1. छंद राउ जइतसी रउ (57), पृ० 14, सं० डॉ० टैसीटरी।
2. गजगुणरूपकबंध, पृ० 238, सं० सीताराम लाळस।
3. प्राचीन राज० गीत, भाग 8, पृ० 72, सं० कविराव मोहनसिंह।

गोदाँ का माँहि राजा राजधर। सोलिक्यां माँहि तउ सत्रसाल। हाडां माँहि तउ बीभ्रउ उधरण एकलमल। [पडिहार माँहि भोज धाहरू को, [अ] उर ते सातसइ सुहड, साखैत, बापैता। त्याँ साखैतां माँहि गहीलौत तो सेजा [सेखा?] बैजलहर सारिखा। चंदेल तौ माधा [कुंता] कुंतल हरा] कछवाहा तउ [केसोदास रणमल का] रिणमलहरा। डोडां माँहि तउ नाथउ, नापउ। वागड़ी तउ डूंगर, कान्हड, सातल, सिरहर। मूँधावत तउ हामा, ऊधा, जोधा। [और ते सांखलां में जदगा। पंवाराँ मैं मुरार] इसा-हेक ते केतां हाकाँ का नांव लीजइ ? छतीस ही वंस। छतीस राजकुळी ।। 3 ।।

ब्राह्मणाँ माँहि तउ कवण-कवण? रिषि सारंग [रिष श्रीरांम] गुरु-नरायण। [व्यासां माँही कुंण-कुण ? रिखिराय, सारंगधर, गुरुदेव नारायण]। वाण्याँ माँहि तउ हरपति, [नरपति] लालउ, वैजउ, वालउ। चारणाँ माँहि माधउ, सादउ, नापउ। भाटाँ माँहि तउ गांगउ तिलोकसी कउ। [नायाँ माँहि नाराइण, नरसिंघ। बार्यस्याँ (?) माँहि बीदो, बालौ, बरस्यंध। बलाहताँ (?) माँहि हालु, हरराज। ढोल्याँ माँहि सेऊ, लाऊ। पैरोज दमांमी] इसाहेक ते केताहेकां का नांव लीजइ ? कनेस्ट वंस सूध छतीस ही वंस, छतीस ही राजकुळी, अेक-अेक हवइ लोहड़इ मिळी ।। 4 ।।

तितरइ तउ वात कहतां वार लागइ। अस्त्री जण सहस चालीस [इकवीस] कउ संघाट आइ संप्रापत हुवउ। किसी-एक ? बाळी-भोळी, अबळा, प्रउढा सोडस बरस की। राउ-राउ की बेटी राणी–रवतांणी। सोलही स्यंगार कीयाँ महादुरंग ऊपरै [बहदा-बहदी ही] आपणा-आपणा देवर, जेठ, भरतार को पुरखारथ [सत] देखती फिरइ छइ ।। 5 ।।

त्याँ माँहे वड महलि तउ बाई सफळादे, भोज की कांता, अचळ की जनेता। कुळबहु तउ बाई पुहपाई-राणा मोकळ की सारधू। गोत-सवासणी तउ बाई ऊदी ।। 6 ।।

अई-अई रे! अछरायण गढ़ गागुरण ती वेळा का किसउ एक नीकउ देखियइ छइ ? न जाइ कहणउ। पुन्याँ स्यौं पाखर्यउ। अगणंत अजीत तोरण मइ धजा-पताख। सोवनमइ कळस आवास। चूडी-मंडप धवळिहर आवर्यउ। किरि, भी कणंगिरि रावण मंडलीक पुनरेपि अवतर्यउ ।। 7 ।।

तइ छत्र-पाट सिंघासण कउ राव राजा अचलेसवर चँवर ढुळतउ किसउ-अेक नीकउ देखियइ छइ ? फिरि सातळ, सोम, हमीर विसेखियइ छइ । तिणि वेळा का गढ़ गागरोण सूतेन भवसते ।। 8 ।।

व्याख्या—

(1) उस समय, उस घड़ी राव, राणा, सुभट, सामंत आदि सब कोई राजा अचलदास से मिलते हैं (यहाँ राजा अचलदास और उसके पक्ष के प्रमुख सामंतों तथा योद्धाओं का नामोल्लेख हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है) ।। 1 ।।

(2) पहली भेंट तो दानियों के राजा (दानवीरों में शिरोमणि), यशस्तिलक, धन-वैभव तथा गढ़ों के अधिपति एवं राव-राजाओं के स्वामी बाला के पुत्र पाल्हणसी की । अन्य सामन्तों में पोमा, महिराज तथा भीमा भोजदेव का । सब परम शूरवीर और धीर । पौरुष के सच्चे प्रतीक और प्रतिरूप ! भूखे सिंह-सा क्रुद्ध और भयंकर पातल्ल (प्रताप) । परस्त्री-विमुख (चरित्र के धनी) ऐसे राजा जूणसी, धीरा, बाहड़ और कल्याणसिंह । [रामदेव (?) के वंशजों में जोतिपुरा का करमसिंह । धाड़ूकों में खेढ़ा, पीथा, धाड़िग, मेला, जौलसी] । कमलसिंह [के वंशजों] में अर्जुन, सुर्जन, मेर, महवन और महिराज ।

(3) गोदों में राजा राजधर । सोलंकियों में तो सत्रसाल (शत्रुसाल) । हाडावंशीय क्षत्रियों में बींझा ऊधरण, जो अकेला ही अनेक शत्रुओं से लोहा लेने में समर्थ था [अथवा, बींझा, ऊधरण और एकलमल] । [पड़िहारों में भोज, धारू का] तथा उसके साथ सात सौ सुभट, जो सभी कुलीन या वीरता की साख वाले (प्रतिष्ठित, यशस्वी) तथा प्रचण्ड शूरवीर थे । ऐसे उन यशस्वी शूरवीरों में गहलोत तो बैजल का वंशज (या पौत्र) सेजा (सेखा?) जैसा । चंदेल तो कुंतल का वंशज या पौत्र माधा (अथवा माधा व कुंता) । कछवाहों में [केशवदास, रणमल का अथवा] रणमल का वंशज या पौत्र । डोडों में नाथा और नापा । बागड़ी तो डूंगर, कान्हड़, सातल और सिरहर । मूँधावत तो हामा, ऊधा और जोधा । [और साँखलों में जदगा एवं पँवारों में मुरार] । ऐसे वे कितने ही, जिनमें किस-किस के नाम लिए जाएँ ? छत्तीस ही वंशों के छत्तीस ही राजकुली वहाँ उपस्थित थे ।

(4) ब्राह्मणों में कौन-कौन ? ऋषि सारंग [ऋषि श्रीराम] और गुरु नारायण। [व्यासों में कौन-कौन ? ऋषिराय, सारंगधर, गुरुदेव नारायण]। बनियों में तो हरपति [नरपति], लालो, बैजो और बालो। चारणों में माधो, सादो और नापो। भाटों में तो गांगो—तिलोकसी का। [नाइयों में नारायण और नरसिंघ। बार्‌यस्यों (?) में वीदा, बाला व वरसिंघ। बलाहतों (?) में हालू और हरराज। ढोलियों में सेऊ और लाऊ। फीरोज दमामी]। ऐसे कितनों के नाम लें ? छोटे-बड़े छत्तीस ही राजवंशों सहित छत्तीस राजकुली क्षत्रिय-वीर वहाँ एक-एक कर तलवारों से कट मरे (कट-मरने हेतु आ उपस्थित हुए हैं)।

(5) इतने में तो बात कहने भर की देर थी। चालीस [इक्कीस) हजार स्त्रियों का समूह [जौहर-व्रत का अनुष्ठान करने हेतु] वहाँ आ पहुँचा। कैसी-कैसी ? बालाएँ, भोली-भाली किशोरियाँ, युवतियाँ, प्रोढाएँ, षोडशियाँ। राव-राजाओं की बेटियाँ (राजकन्याएँ), रानियाँ तथा रवताणियाँ (सामन्त-वधुएँ)। सोलह शृंगार किए उस विशाल दुर्ग पर से [अहमहमिका से] अपने-अपने देवर, जेठ और पति के अद्‌भुत पराक्रम को देख रही हैं।

(6) उनमें बड़ी रानी (राजमाता) तो सफलादे (सुफलादेवी), भोज की भार्या, अचलदास की जननी है। कुलवधू तो रानी पुष्पावती है, मेवाड़ के महाराणा मोकल की पुत्री। गोत्र की [बहिन या बेटी] बाई ऊदी है।

(7) अरे ओ रे ! उस समय अप्सराओं (अथवा अप्सरा-सी सुन्दर राजाङ्गनाओं) से मंडित गढ़ गागरोण कैसा शोभन दिखाई दे रहा है ? उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मानों पुण्यों से परिवेष्टित हो ! अगणित अजेय तोरण-द्वार नाना ध्वजा-पताकाओं से सज्जित हैं। गोल-गुम्बदों से युक्त अधिवास (राजमहल) स्वर्ण कलशों से अभिमंडित हैं। मानो स्वर्णगिरि-स्थित लंका में मंडलेश्वर रावण पुनः अवतरित हुआ हो। अर्थात् युद्ध-सज्जा से सज्जित गढ़ गागरोण उस समय अपनी शोभा में स्वर्णपुरी लंका से स्पर्द्धा कर रहा था तथा राजा अचलदास अपने वैभव में मंडलेश्वर रावण से।

(8) वहाँ छत्र-युक्त राजसिंहासन पर आसीन तथा दोनों ओर चँवर ढुलाया जाता हुआ राजा अचलदास कैसा शोभन दिखाई दे रहा है ? मानो सातल, सोम और हम्मीर ही सुशोभित हो ! उस समय के गढ़ गागरोण की शोभा सर्वथा अभूतपूर्व थी, ऐसी कि न कभी पहले हुई है, न भविष्य में होगी।

शब्दार्थ—

(1) **ताळि**=समय। **सुहड़**=सुभट, योद्धा। **हइं**=से (विभक्ति)।

(2) **जसतिलक**=यशस्तिलक, सर्वाधिक यशस्वी। **पाल्हणसी बालाकउ**=बाला का पुत्र पाल्हणसी। यह पाल्हणसी अचलदास के एतद्नामधारी पुत्र पाल्हणसी से स्पष्ट ही भिन्न कोई अन्य ऐतिहासिक व्यक्ति है, जिसकी पहचान नहीं हो पाई है। सम्भवतः यह अचलदास का कोई प्रमुख सामन्त अथवा उसकी सहायतार्थ आया कोई स्वतंत्र नरेश हो। **आसल पुरिष**=सच्चे पौरुष या पराक्रम का प्रतिरूप ? 'आसल' किसी व्यक्ति विशेष का नाम होना भी सम्भव है। **पातळउ सीह**=भूखा सिंह, भूख के कारण पतला, अतः क्रुद्ध और भयंकर सिंह। डिंगल-काव्यों में रोषोन्मत्त उद्भट शूरवीर की उपमा प्रायः भूखे अथवा 'लांघणिये सिंह' (लंघन किए हुए सिंह) से दी जाती है, जो शत्रुदल को देखते ही उस पर टूट पड़ता है—

लांघणियौ भूखियौ सीह किरि डांणा हूलौ।[1]

परामुख=विमुख अर्थात् चरित्रधनी। डिंगल-काव्यों में इसके लिए 'काछ-वाच निकलंक' शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

(3) **एकलमल**=अकेला ही अनेक शत्रुओं से जूझने या लोहा लेने वाला दुर्धर्ष योद्धा। उदा०—

दात्रिड़िआळ वडौ तूं डारण,
तूं **एकलमल** भूत अथाह।[2]

साखैत=कुलीन या वीरता की साख वाले, यशस्वी शूरवीर। **रिणमलहरा**=रणमल का पौत्र या वंशज। **राजकुळी**=राजकुल के।

(4) **कनेस्ट**=कनिष्ठ, छोटे। **सूध**=सहित। **लोहड़इ मिळी**=तलवारों से टुकड़े-टुकड़े होगए। उदा०—

अरजुण गौड़, तणौ सारौ अंग
लड़तां गयौ **लोहड़ाँ लाग**।[3]

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 53, सं० सीताराम लाळस।
2. पीरदान लाळस ग्रन्थावली, पृ० 94, सं० अगरचन्द नाहटा।
3. गीत अरजुण गौड़ रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 5, सं० हनुवंतसिंह देवड़ा।

(5) **अस्त्री जण**=स्त्रियाँ। **संघाट**=समूह, दल। **बाली**=बालाएँ। **महादुरंग**=विशालगढ़ (दुरंग=दुर्ग)। [बहदा बहदी ही=अहमहमिका से] **पुरखारथ**=पुरुषार्थ, पराक्रम।

(6) **वड महलि**=बड़ी रानी, राजमाता। **बाई**='बाई' शब्द राजस्थान में सामान्यतः बहिन-बेटी के लिए ही प्रयुक्त होता है परन्तु यहाँ यह कुलवधुओं के लिए व्यवहृत हुआ है। **कांता**=प्रिया, पत्नी। **जनेता**=जननी। **सारधू**= पुत्री। सं० दुहिता से प्राकृत में धीआ, धूदा, धिया, धूआ आदि रूप प्रचलित हुए।[1] राजस्थानी 'धू' एवं 'धी' भी इसी दुहिता से व्युत्पन्न हैं। **सवासणी**= बहिन (सं० स्वसा?) या बेटी। उदा०—

धांधल मो धीजेह, सुधि बाहिरा हुँ **स्वासणी**।[2]

विवाहादि मांगलिक अवसरों पर आरती आदि का नेग प्रायः 'सवासणियों' (बहिन-बेटियों) को ही दिया जाता है। यथा—

"आरती होवै। आरती री मोहर **सवासणी** नूं दीजै।"[3]

'गोत सवासणी' से यहाँ अभिप्राय बाई ऊदी से है, जो कदाचित् अचलदास की बहिन [या बेटी] हो। 'सारांदे' नामक एक लोकगीत में 'गोत सवासणी' ननद या पति की बहिन के लिए ही प्रयुक्त हुआ है—

"म्हारै तो लागै छै **गोत सुवासणी** जी म्हारा राज"[4]

(7) **अछरायण**=अप्सरागण। कवि-परम्परानुसार प्रसिद्ध है कि युद्ध छिड़ने पर स्वर्ग से अप्सराएँ वीरों का वरण करने हेतु आ अवतरित होती हैं। अथवा, इसे सोलह शृंगार किए जौहर हेतु उद्यत लावण्यमयी राजललनाओं के लिए भी प्रयुक्त माना जा सकता है, जिनका उस समय का दिव्य रूप अप्सराओं से तुलनीय था।

नीकउ=शोभन, रुचिर। **अजीत**=अजेय। **तोरण**='बहिर्द्वारं तु तोरणम्'— हेमचंद्र। **धजा-पताख**=ये समानार्थक शब्द नहीं हैं, जैसाकि प्रायः समझा

---

1. प्राकृत भाषाओं का रूप-दर्शन, पृ० 74, सं० आचार्य नरेन्द्रनाथ।
2. पाबूजी रा दूहा, (238) लधराज-कृत, डॉ० नारायणसिंह भाटी।
3. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, पृ० 463, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
4. राजस्थानी कथागीतों का पर्यालोचन; डॉ० मनोहर शर्मा; परम्परा, भाग 53-54, पृ० 79।

जाता है। वंशभास्कर के टीकाकार बारहठ कृष्णसिंह शोदा के अनुसार एक वस्त्र वाली 'पताका' तथा अनेक वस्त्र वाली 'ध्वजा' कहलाती है।[1] पं० रामदीन पाण्डेय के अनुसार, "ध्वजा का शाब्दिक अर्थ है—'ध्वजति (गच्छति) इति ध्वजः' —जो फहराती है, वह ध्वजा है। पताका की व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'पत्यते (बोध्यते) योद्धादि भेद अनया सा पताका।' वह चिह्न, जिसके द्वारा योद्धादि भेद व्यक्त हो, पताका कहलाता था। ध्वज और पताका का अर्थ त्रिकोण या चतुष्कोण वस्त्र है। पताका त्रिकोणी होती थी और ध्वजा चतुष्कोण। पिछले युग में यह भेद लुप्त हो गया था।"[2]

हमारे विचार से मूलतः 'ध्वजा' और 'पताका' शब्द भिन्नार्थक थे परन्तु कालांतर में अर्थ-भेद लुप्त होजाने से ये प्रायः पर्याय रूप में प्रयुक्त होने लगे।

सोवनमइ=स्वर्णमय। **चूड़ी-मंडप**=गोलाकार मंडप, गोल गुम्बदों से युक्त। **धवळिहर**=[सं० धवलगृह] श्रेष्ठ अधिवास, राजप्रासाद। **आवर्‌यउ**=आवृत्त, अभिमंडित। **कणैगिरि**=कनकाद्रि; यहाँ प्रसंग से कदाचित् स्वर्णपुरी लंका के त्रिकूटाचल से आशय है। वैसे 'कनकगिरि' सुमेरु पर्वत तथा 'जालोर' (स्वर्ण गिरि, जहाँ शासन करने के कारण वहाँ के चौहान-नरेश 'सोनगरे' कहलाए) का भी वाचक है परन्तु सुमेरु पर्वत का अर्थ यहाँ उद्दिष्ट नहीं है, जिसकी स्थिति उत्तर में है—

उत्तर दिसा सुमेर है, उत्तर मांहि कुबेर।[3]

जालोर के लिए भी 'कणयाचल' [कनकाचल] का प्रयोग मिलता है—

कणयाचल जगि जाणीइ, ठाम तणउ जावालि।[4]
तहीं लगइ जगि जालहुर, जण जंपइ इणि काल।।

वंशभास्कर में भी इस आशय का उल्लेख हुआ है—

"जिण जालोर रो दूजो पर्याय आर्यावर्त में विदित सोनगिरि इसौ कहावै।"[5]

---

1. वंशभास्कर, पृ० 4252।
2. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पृ० 7, ले० पं० रामदीन पाण्डेय।
3. बाँकीदास ग्रन्थावली, भाग 3, पृ० 83, सं० श्री मुरारीदान कविया व महताबचंद्र खारैड़।
4. कान्हड़देप्रबन्ध, पद्मनाभ, पृ० 2, सं० प्रो० कांतिलाल ब० व्यास।
5. वंशभास्कर, पृ० 1187।

परन्तु यहाँ रावण के नामोल्लेख के संदर्भ में इसका अर्थ त्रिकूटाचल स्थित स्वर्णपुरी लंका करना ही समीचीन प्रतीत होता है।

मंडलीक=मंडलेश्वर। रावण मंडलेश्वर था। उदा०—

रावण मंडलेश्वरु, तूठो ईश्वरु।[1]

शुक्रनीति में मांडलिक या मंडलेश्वर की परिभाषा देते हुए बताया गया है कि भूमि से जिसकी एक लाख कार्षापण की वार्षिक आय हो, वह सामन्त तथा जिसकी 3 से 10 लाख तक आय हो, वह मांडलिक या मंडलेश्वर कहलाता है।[2]

(8) **तइ**=उस। **किरि**=मानों। **सातल-सोम**=सिवाणा दुर्ग की वीरतापूर्वक रक्षा करते हुए वीरगति पाने वाले चौहान वीर। **भवसते**= भविष्यति।

विशेष—

उपर्युक्त 'वात' में अचलदास के पक्ष के प्रमुख सामन्तों एवं योद्धाओं का नामोल्लेख हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। स्वीकृत पाठ के अतिरिक्त हमने उन पाठान्तरों को भी समाविष्ट कर लिया है, जिनमें किसी न किसी पात्र का नामोल्लेख हुआ है। ऐसे संदिग्ध पाठ को हमने कोष्ठकान्तर्गत अंकित कर दिया है, ताकि इतिहास के अन्वेषी इनकी तथ्यात्मकता पर विचार कर सकें।

बाँकीदास की ख्यात में अचलदास की माता का नाम एक स्थान पर 'सकलादे'[3] तथा अन्यत्र 'सलहदे'[4] दिया है। अचलदास की मेवाड़ी रानी का नाम उक्त ख्यात में भी 'पोहपावती' ही है,[5] जैसा कि वचनिका में है। वचनिका में जहाँ चारणों में 'नापउ' नाम मिलता है, वहाँ ख्यात में 'चांपा' है।[6] शेष दो नाम दोनों में समान है। बनियों के नामों में भी ख्यात और वचनिका में अन्तर है। वचनिका में गांगा और तिलोकसी को भाट बताया गया है, जबकि ख्यात में

1. सभाशृंगार, पृ० 40, सं० अगरचन्द नाहटा।
2. शुक्रनीति, श्लोक 182 से 186, पृ० 28, सं० पं० ब्रह्मशंकर मिश्र।
3. बाँकीदास री ख्यात, पृ० 142, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
4. वही, पृ० 143
5. वही।
6. वही।

इन्हें 'वाणिया'[1]। वचनिका में सेऊ और लाऊ को ढोली कहा गया है, जबकि ख्यात में राऊ और सेऊ का 'डूंब' के रूप में उल्लेख हुआ है।[2] वचनिका और ख्यात में प्राप्य इन नामों की समानता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जाति सम्बन्धी विसंगति के बावजूद भी इनकी ऐतिहासिकता विचारणीय है।

इस सम्बन्ध में, हमें स्मरण रखना चाहिए कि गागरोण के उक्त युद्ध-प्रसंग पर विशद प्रकाश डालने वाला एक मात्र ग्रंथ हमारी वचनिका ही है। अतः इसमें उल्लिखित नामों को हमें प्राथमिक महत्व के ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

16. गाथा

बारह लक्ख त छइ वड पइदळ ।
मदिमत्ता चवरासी मइंगळ ।।
साहण सहस तीस अर तेरह ।
आलमसाह अड़ी चउ फेरह ।।

व्याख्या—

अलपखां (होशंगशाह) की सेना का वर्णन है—[आलमशाह की सेना में] बारह लाख तो विशालकाय पैदल (सैनिक) हैं। मदोन्मत्त चौरासी हाथी हैं। तियालीस हज़ार घोड़े हैं। इस तरह आलमशाह (होशंगशाह) की वह विशाल सेना चारों तरफ आ डटी है।

शब्दार्थ—

वड=वड़े या विशालकाय। **पइदल**=पैदल, पदातिक। **मइंगल**=मस्त हाथी (सं. मदकल)। **साहण**=घोड़े। **अड़ी**=आ डटी।

17. विड़द

बारह साहि झाड़, साहि विभाड़। बळियाँ साहि कंधि-कुदाळ, सबळ, साहि जड़ाँ-उपाड़। निबळ साहि थापनाचारिज। संग्राम साहि जगहथ [जयहथ ?]; रिणभाजणा साहि जइतखंभ। गढ गिलण, कोट मैवटण। सुरिताण दूसरउ अलावदीन। किसइ अेक आरंभि-पारंभि आइ टिक्यउ छइ ।। 1 ।।

---

1. बाँकीदास री ख्यात; पृ० 143; सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
2. वही।

पगि-पगि पउलि-पउलि हसत्यां की गजघटा। ती ऊपरि सात-सात सइ जोध घनखधर साँवठा। तीन-तीन ओळि वाग जोड़ि पाखर्‌या, सो न दीसै राति द्यौस ऊतर्‌या। सात-सात ओळि पायकां को बइठी, सात-सात ओळि पायकां की ऊठी। खेडा-उडण-मुदफर-फरी, चुंह चकि जंत्र अने ठांइ-ठांइ ठठरी। इसी एक त्या पटउडी चत्र दिस पड़ी, तिण वाजित कइ निनादि धर-आकास धड़हड़ी ।। 2 ।।

बाप-बाप हो ! थारा आरंभ-पारंभ लागि गढ लेयणहार, किनां बाप-बाप हो ! थारा मत-तेज-अहंकार राइ द्रुग राखणहार ।। 3 ।।

व्याख्या—

(1) वह आलमशाह (होशंग) बारह शाहों को झाड़ने वाला (पराभूत या प्रताड़ित करने वाला) है। शाहों का संहार करने वाला है। बली शाहों के कंध-मूल काटने हेतु कुदाल-रूप है। सबल शाहों का समूल उच्छेदन करने वाला है। निर्बल शाहों को स्थापित करने वाला सर्वोपरि सुल्तान है। संग्राम में [अपने अनुगत] शाहों के लिए जगत-हस्त (सर्व सहायक) है तथा रण छोड़ कर भागने वाले शाहों के लिए जय-स्तंभ (अटल एवं विजयी शूरवीर) है। यह गढ़ों को निगल जाने वाला (समूल नष्ट करने वाला) तथा किलों को मटियामेट करने वाला है। यह सुल्तान दूसरा अलाउद्दीन है। [ऐसा यह प्रतापी सुल्तान] कैसी विकट युद्ध-सज्जा के साथ आ डटा है !

(2) पद-पद, पौलि-पौलि पर हाथियों की गजसेना नियत है। उस पर [उसकी रक्षार्थ] सात-सात सौ शक्तिशाली वीर धनुर्धर तैनात हैं। तीन-तीन कतारें बागों द्वारा थामे गए (मुँहजोर) पाखर-सज्जित अश्वों (अश्वारोहियों) की हैं, जो रात-दिन कभी उतरते दिखाई नहीं देते (अहर्निश सन्नद्ध रहते हैं) सात-सात सौ पंक्तियाँ पदातिकों (पैदल सैनिकों) की बैठी हुई हैं, सात-सात सौ पंक्तियाँ पदातिकों की खड़ी हुई हैं। खेड़े, ढाल, मुदफर व फरसों आदि के ढेर लगे हैं तथा चतुर्दिक यंत्र (युद्धोपकरण) एवं बाण रखने की चमड़े की थैलियाँ बिखरी पड़ी हैं। उधर एक ऐसी पटह-ध्वनि (रण-दुंदुभि) चारों दिशाओं में गूँज रही थी कि उस रणवाद्य के प्रचण्ड घोष से धरती-आकाश कंपित हो रहे थे।

(3) बाप रे बाप ! तेरी इस भीषण युद्ध-सज्जा को देखकर तो लगता है कि तू गढ़ लेकर ही रहेगा। पर बाप रे बाप ! तेरे सत्व (साहस), तेज और दर्प से

टक्कर लेने वाला राजा (अचलदास) भी अपने दुर्ग की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाए बैठा है। अर्थात् दुर्ग के लिए अब दोनों पक्षों के बीच घमासान युद्ध अवश्यम्भावी होगया है।

शब्दार्थ—

(1) **बारह**=भावार्थ में अनेक। कुछ प्रतियों में 'वाहरि' पाठ है परन्तु हमने प्राचीनतम प्रति का ही पाठ स्वीकार किया है। 'वाहरि साह' पाठ मानने पर अर्थ यों भी किया जा सकता है—यह (होशंगशाह) 'वाहर' चढ़ने वाले (अर्थात् दूसरों का पक्ष लेने वाले) शक्तिशाली राजाओं को भी प्रताड़ित करने वाला है। उदा०—

जे चढ़ता वाहर, तेह थया छोड़ी कायर।[1]

विभाड़=संहार करने वाला। उदा०—

जळ मांहै जगदीस विढै मधकीट **विभाड़ै**।[2]

बळियाँ=बलवान्। **कंधि-कुदाल**=कंधे के लिए कुदाल-रूप। मिलाइए—

करिमाळ झाळि **केवी कुदाळ**।[3]

थापनाचारिज=स्थापनाचार्य, स्थापित या प्रतिष्ठापित करने वाला। मिलाइए—

1. सस्त्रबंध खत्रियों के आचारिज।[4]
2. सबळ रायथांन उथापण।[5]
   निरजोर राय सहाय करि थापण॥

जगहथ—जगत के हाथ; अर्थात् सर्वसहायक, शक्तिशाली पक्षधर। यहाँ शुद्ध पाठ कदाचित् 'जयहथ' हो; अर्थात् 'विजय-श्री दिलाने वाले हाथ'।

यथा—

जैतहथा आया जैतावत।[6]

---

1. सभाशृंगार, पृ० 84, सं० अगरचन्द नाहटा।
2. पीरदान लालस-ग्रंथावली, पृ० 52, सं० अगरचन्द नाहटा।
3. छंद राउ जइतसी रउ, (17) पृ० 5. सं० डॉ० टैसीटरी।
4. राजरूपक, पृ० 625, सं० पं० रामकर्ण आसोपा।
5. वही, पृ० 626
6. वही, पृ० 725

जइतखंभ=जयस्तंभ, स्तंभ के समान जो रण में अविचल स्थित होकर विजयी होते हैं तथा जिससे शत्रु भयत्रस्त हो भाग खड़े होते हैं। उदा०—

खूमांण जुडतौ **जैत-खंभ**।[1]
थाटां विच होळी हुऔ थंभ॥

गिलण=समूचा निगल जाने वाला, अर्थात् केवल नामशेष कर देने वाला। **मैवटण**=मिटाने या नष्ट करने वाला। डिंगल में 'मैवट' या 'मैवट्ट' बड़े या महान का भी वाचक है परन्तु प्रसंगानुसार यहाँ 'मैवटण' प्रस्तावित अर्थ में ही प्रयुक्त है।

(2) **पगि-पगि**=पद पद पर। **साँवठा**=शक्तिशाली। **ओळि**=पंक्ति, श्रेणी। **वाग जोड़ि**=वागों (वल्गा) या लगामों से लैस। **पाखर्या**=पाखर-सज्जित अश्व, (या लक्षणा से अश्वारोही) उदा०—

पाखरीया नी श्रेणि हेषारव मेल्हती।[2]

सो न....ऊतरया=अहर्निश पाखर-सज्जित अश्वों की पीठ पर आरूढ़ वे अश्वारोही शत्रु पर बाग उठाने हेतु सतत सन्नद्ध थे।

खेडा=शस्त्र-विशेष, जो खड्ग या तलवार का ही एक भेद प्रतीत होता है। एक डिंगल कोशानुसार यह खड्ग या तलवार का वाचक है[3] परन्तु प्राचीन काव्यों में 'खेडा' व 'खांडा' का एक ही पंक्ति में अलग-अलग उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्टतया सिद्ध होजाता है कि 'खेडा', खांडा व तलवार से भिन्न शस्त्र है। उदा०—

1. अंगा टोप रंगाउलि खांडा, **खेडां** पटा कटारी।[4]
2. खडग तणा खाटक। **खेडां** तणा झाटक।[5]
3. **खेडां खांडा** पड्यां जूजूआ, भाला सांगि कटारी।[6]

कान्हडदे-प्रबन्ध में हुए उक्त प्रयोगों से यह स्पष्ट होजाता है कि 'खेडा' व 'खांडा' एक नहीं है, जैसाकि नागराज डिंगल कोस में बताया गया है। इस सम्बन्ध में कान्हडदे-प्रबन्ध में प्राप्य कुछ अन्य प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं—

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 220, सं० सीताराम लालस।
2. सभाश्रृंगार, पृ० 78, सं० अगरचन्द नाहटा।
3. नागराज-डिंगलकोस।
4. कान्हड़दे-प्रबन्ध, पृ० 40, सं० कांतिलाल ब० व्यास।
5. वही, पृ० 48।
6. वही, पृ० 55।

1. **खेडां** तणी ठाठरी मांडी, धुरि, हवसी आव्या ।[1]

2. तरुआरे सोनहरी मूंठी, करड़ा **खेड़ां** घालइ पूंठि ।[2]

उडण=ओडण, ढाल । उदा०—

ओडण पुड येक येक पुड असमर ।[3]

ओडण का ही रूपभेद 'उडण' है, जो अनेक प्रतियों में पाया जाता है ।[4]

मुदफर=एक शस्त्र विशेष । इसका एक पाठान्तर 'मदगर' भी मिलता है[5] परन्तु वचनिका की संवत् 1631 की प्राचीनतम प्रति में 'मुदफर' पाठ है, जो हमें शुद्ध व संगत प्रतीत होता है । कारण, वेगड़गच्छ के जिनसमुद्रसूरि-कृत पाबूजी सम्बन्धी पद्यों में, शस्त्र-प्रसंग में, एक स्थान पर 'मदफरी' का प्रयोग मिलता है, जो शस्त्रवाची है—

खेड़ो **मदफरी** सेल, खडग हुलस मेल ।[6]

पाठान्तर में प्राप्य 'मदगर' तो मुग्दर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ ही है—

मदगर, गुरज, सावल, खडग, फरस, कटारां, चक सहि ।[7]

फरी=(सं० परशु) फरसी या फरसा । उदा०—

जड़लग्ग **फरी** खडखडइ जौड़ ।[8]

पटहोड़ां वाजिय पूरि पौड़ ।।

'लावारासा' में उसके संपादक महताबचन्द्र खारैड़ ने इसका अर्थ 'डांड-पटा' किया है ।[9]

चुंह चकि=चारों दिशाओं में (चकि<चक्र=दिशा), चतुर्दिक । **जंत्र**= युद्धोपकरण । उदा०—

यंत्र मगरबी गोला नाखइ, द्रू सांधि सूत्रहार ।[10]

---

1. कान्हड़डेप्रबन्ध, पृ० 122, सं० कांतीलाल ब० व्यास ।
2. वही, पृ० 171 ।
3. महाराणायशप्रकाश, पृ० 25, सं० ठा० भूरसिंह मलसीसर ।
4. सभा-शृंगार, पृ० 72 (फुटनोट) : सं० अगरचन्द नाहटा ।
5. सवाई मानसिंह संग्रहालय, जयपुर की प्रति ।
6. 'वरदा' अक्टूबर-दिसम्बर, 1973 में अगरचंद नाहटा का लेख ।
7. माताजी री वचनिका, पृ० 85, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
8. छंद राउ जइतसी रउ (365), पृ० 82, सं० डॉ० टैसीटरी ।
9. लावारासा, पृ० 13, सं० महताबचन्द्र खारैड़ ।
10. कान्हड़देप्रबन्ध, पृ० 89 सं० बलदेवराम कांतिलाल व्यास ।

ठठरी=ऊँट के चमड़े की बनी बाण रखने की बड़ी थैली ? उदा०—

बाणां रा ऊँट, **ठाठंड्यां** का थाट ।[1]

'लावारासा' में भी 'ठठुरी' का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ संपादक ने 'तोप का ठाठा' किया है—'ठठुरीनि जुरि तोप टकी,

भरि पेटिय संमिल सोरन की ।[2]

त्या=वह । **पटउडी**=पटह-ध्वनि ? दुन्दुभि ? इस शब्द के निश्चित अर्थ के विषय में संदेह है । श्री सीताराम लाळस ने इसे 'पटकुटी' से व्युत्पन्न मानते हुए इसका अर्थ छोटा तम्बू या छोलदारी किया है[3] परन्तु प्रसंगानुसार यह अर्थ अनर्गल है । कारण, इसके आगे हुए उल्लेख, 'तिण वाजित कइ निनादि धर-आकास धड़हड़ी' की तंबू या छोलदारी के साथ क्या संगति है ? तद्विपरीत, हमारे विचार से यह यहाँ किसी रणवाद्य का वाचक प्रतीत होता है, तंबू या छोलदारी का नहीं ।

हमारा अनुमान है कि 'पटह' के आगे 'ड़ी' प्रत्यय लगकर कदाचित् 'पटहड़ी' [रूपभेद 'पटउडी'] शब्द बन गया है, वैसे ही जैसे बेल से बेलड़ी, नीम से नीमड़ी आदि । **चत्र दिस**=चारों दिशाओं में । **तिण**=उस । **वाजित**=[सं० वाद्ययंत्र] रणवाद्य से आशय है । **धर**=धरा । **धड़हड़ी**=धड़धड़ा उठी, कंपित होगई । उदा०—

धुड़हड़िय दमामा धुविय ढोल ।[4]

[3] **आरंभ-पारंभ**=युद्धाभियान, युद्धोपक्रम । उदा०

मारू नरिंद महिकर दिसा, **पारंभ-आरंभ** कीध पह ।[5]

सत=[सं० सत्व] शक्ति व साहस । **तेज**=प्रताप । **अहंकार**=दर्प, वीरोचित अमर्ष । **द्रुग**=दुर्ग ।

---

1. प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघोत री वात, पृ० 40 रा० सा० सं० भाग 2, सं० डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।
2. लावारासा, पृ० 42, सं० महताबचन्द्र खारैड़ ।
3. राजस्थानी सबद कोस, तृ० जिल्द, प्र० खं०, पृ० 2311-2312, सं० सीताराम लाळस ।
4. छंद राउ जइतसी रउ, (134) पृ० 31, सं० डॉ० टैसीटरी ।
5. गजगुणरूपकबंध, पृ० 70, सं० सीताराम लाळस ।

18. रसावळा

बिहुँ छेह बाणावली, सर पुणग सलल्ली ।
अणी अणी अत्तुळी, खग्ग खग्गा खळी ।
रूधिर धर रळतळी, मंस ग्रीधां मिळी ।
बहु नाचइ कमंध महाबळी, आळूझइ अंत्रावळी ।। 1 ।।

आलम अचळेसरि रळी, सेन बिन्हे इम संमिळी ।।
एक-एक ऊपरी, असुर लख ऊभरी ।।
लागि लागई खरी, ठांह-ठांह ठाठरी ।।
दिन-राति न जाणइ दूसरी, नींद-भुख-त्रिस वीसरी ।
खउंदाळिम खीची खरी, सेन बिन्हे इम संघरी ।। 2 ।।

व्याख्या—

दोनों ओर से बाण-वर्षा होरही है। वर्षा की बूँदों के समान प्रखर शर-झड़ी लगी है। दोनों ही सेनाएँ अतुलनीय हैं। खड्ग से खड्ग टकरा रहे हैं। रक्त से धरा कीच-युक्त होगई है। गृद्धों को प्रचुर नर-मांस मिल गया है। महाबली कबंध (मुण्ड रहित धड़) नाच रहे हैं। [घायल वीरों के] पैरों में अंतड़ियाँ उलझ रही हैं ।। 1 ।। आलमशाह और अचलदास—दोनों की सेनाएँ परस्पर गुँथ गई हैं। यों वे दोनों सेनाएँ एक दूसरे से आ भिड़ी हैं। [अचलदास के] एक-एक सैनिक पर लाख-लाख यवन टूट पड़े हैं। खरी चोटें पड़ रही हैं। जगह-जगह बाण रखने की 'ठाठरियां' बिखरी पड़ी हैं। [अविरत युद्ध के कारण] दिन और रात के भेद का पता ही नहीं चल रहा है। सब अपनी नींद, भूख और प्यास भूल गए हैं। सुल्तान होशंग और अचलदास खीची—दोनों की ही प्रचण्ड सेनाएँ यों एक दूसरे का भीषण संहार कर रही हैं ।। 2 ।।

शब्दार्थ—

बिहुँ=दोनों। **छेह**=ओर, तरफ। **पुणग**=बूँद, जलकण। उदा०—

पुणगां घण नीर क तीर पड़ै ।[1]

बाण-वर्षा की, जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है, प्रायः प्रखर जलवृष्टि से उपमा दी जाती है। इस आशय के कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. गुण-विजै-व्याह, परंपरा, पृ० 53, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।

1. "छीदा-छीदा, आछा-आछा कमणैतां रा हाथां सूं तीर सरणकै छै। ....सो जाणैं सूधी धारां निमाछळौ मेह पड़ै छै।"[1]

2. घूघटी बे घटा घोर मातो घणो।[2]
मेहणी मेह ज्युं तीर गोली तणो।।

'पुणग' का अर्थ 'पन्नग', अर्थात् साँप मान कर अर्थ यों भी किया जा सकता है कि तीर साँप की भाँति सरसराते चल रहे हैं परन्तु हमें वर्णन-परंपरा की दृष्टि से प्रथम अर्थ ही संगत प्रतीत होता है।

सलल्ली=चली। उदा०—

सहसफणां सलल्लै सुजड़ भळहळै सहंसा।[3]

अणी=सेना (सं० अनीकं)। उदा०—

मेळण **अणी** खवा आमोड़ै।[4]

खग्ग खग्गा=तलवार से तलवार। मिलाइए—

खाग खागां सरिसि खान खाना खसै।[5]

खळी=टकराई, संहार किया, उदा०—

ऊजलै चित्त धरियां उरड़[6]
खलै सत्र वौळौ खगां।

'खळी' का अर्थ शत्रु भी होता है।

रळतळी=रक्त से कीचयुक्त हुई। **कमंध**=सिर रहित धड़। युद्ध–प्रसंग में कवन्धों के नाचने का वर्णन महाकवि कालिदास ने भी किया है—

मिथोऽर्धचन्द्र निर्लून मूर्धानौ रथिनौ रुचा।[7]
खेचरौ भुवि3नृत्यन्तौ स्वकबन्धान पश्यतम्।।

रळी=घुल-मिल गई, परस्पर गुँथ गई (सेनाएँ)। **बिन्हें** दोनों। **ऊभरी**= उभर आए, घिर आए, टूट पड़े। **त्रिस**=(सं० तृषा) प्यास। **संघरी**=संहार कर रही थी।

---

1. प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघोत री वात, पृ० 56, सं० डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया।
2. रूपमणी-हरण, पृ० 49, सं० वही।
3. राजरूपक, पृ० 779, सं० पं० रामकर्ण आसोपा।
4. वही, पृ० 729।
5. पीरदान लालस-ग्रंथावली, पृ० 87, सं० अगरचंद नाहटा।
6. वखतौ खिड़ियौ, रा० स० को०, प्र० खं०, पृ० 597, सं० श्री सीताराम लाळस।
7. कुमारसंभव, 16 (49)।

19. गाहा

इण परि सहस सहस दुइ तुट्टइ।
पगि-पगि अड़इ, न पग अवहट्टइ ।।
आलम-अचल-सेन आवट्टइ।
कनक जिहीं रहि-रहि कसवट्टइ ।।

व्याख्या—

इस प्रकार दोनों ओर के सहस्र-सहस्र योद्धा एक दूसरे पर टूट पड़े हैं। वे पद-पद पर डटे हुए हैं तथा पैर पीछे नहीं हटा रहे हैं। इस प्रकार सुल्तान होशंग और अचलदास की सेनाओं के बीच युद्ध होरहा है। मानो स्वर्ण को रह-रहकर कसौटी पर कसा जा रहा है। (अर्थात् जैसे सोने को कसौटी पर कसने से ही उसकी शुद्धता का पता चलता है, वैसे ही शूरों का शूरत्व रूपी स्वर्ण भी इस रण रूपी कसौटी पर प्रतिपल कसा जाकर अपनी निष्कलुष-दीप्ति से उद्भासित होरहा है)।

'आवट्टइ' को नष्ट या क्षय होने के अर्थ में ग्रहण करने पर व्याख्या यों भी की जा सकती है—

आलम व अचलेश्वर की सेनाएँ निरन्तर क्षय होती जारही हैं, जैसे कसौटी पर सतत घिसते रहने से कंचन। उक्तार्थ में इसके प्रयोग का उदाहरण :—

असी सहस तुरक **आवटचा**, तीस सहस हींदू दळि घटचा।[1]

शब्दार्थ—

दुइ=दोनों ओर के। **अवहट्टइ**=हटाते। **आवट्टइ**=युद्ध कर रहे हैं, **आवट्ट**=युद्ध। उदा०—

1. हुवै **आवट्ट**, खपै खळ खट्ट।[2]
2. **आविटिसै** असरांण धमंक लेसै धीकारां।[3]
3. इन अग्गैं फुनि **आहुटैं**, ह्वै पतिसाहि हारि।[4]

---

1. कान्हड़देप्रबंध, पृ० 191, सं० कां० ब० व्यास।
2. राउ जैतसी रौ रासौ, राज० भारती, मार्च 1949, पृ० 82, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
3. पीरदान लालस-ग्रंथावली, पृ० 66, सं० अगरचन्द वाहटा।
4. राजविलास : मान-कृत (9-121) पृ० 115, सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

20. दूहड़ा

आलम अचळेसर अड़चा एही एक अवक्क ।
पिड़ि जेता हींदू पड़इ, तेता सहस तुरक्क ।।

व्याख्या—

आलमशाह और अचलदास—दोनों के परस्पर युद्ध में भिड़ने पर यही एक आश्चर्य था कि रण में जितने हिन्दू धराशायी होते थे, उतने ही सहस्र यवन। अर्थात् हिन्दुओं की तुलना में सहस्र गुने यवन मारे जाते थे ।

शब्दार्थ—

अवक्क=अर्थ संदिग्ध । कदाचित् अकथनीय या अनोखी बात ? आश्चर्य ? यदि यह 'अवक्र' का अपभ्रष्ट हो तो अर्थ होगा 'अनुकूल' । अर्थात् एक अनुकूल बात यही थी कि हिन्दुओं से कहीं अधिक संख्या में यवन हताहत होते थे । एक प्रति में 'अेह सकति अवक' पाठ है, जिसकी उक्तार्थ में संगति बैठ जाती है । अर्थात् 'यह शक्ति की ही कृपा या अनुकूलता थी ।' जो हो, अर्थ अन्वेष्य है । **पिड़ि**=युद्ध में । **पड़इ**=धराशायी होते थे । **तुरक्क**=यवन ।

विशेष—

प्रस्तुत दूहा किंचित् रूपान्तर के साथ 'राजान राउत रो वात-वणाव' में भी मिलता है, जिसके रचयिता ने इसे 'आगले कवेसरै कहियौ' टिप्पणी के साथ अपनी रचना में उद्धृत कर दिया है—

सुर असुरा रण आहुडै, आही एक अवक्क ।[1]
पिड़ि जितरा हिन्दू पड़ै, तेता सहस्स तुरक्क ।।

हमारे यहाँ प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्यों में ऐसे लोकप्रिय छंदों, सुभाषितों आदि के परस्पर आदान-प्रदान की एक व्यापक परम्परा रही है, जो प्रेमकाव्यों में विशेष रूप से देखी जाती है । जिसे भी जो भा गया है, उसने उसे ही अपनी रचना में समाविष्ट कर लिया है । इसे 'साहित्यिक चोरी' नहीं, अपितु उस छन्द या भाव विशेष के प्रति कवि की वैयक्तिक रुचि, किंवा उसकी सहृदयता एवं रसज्ञता का ही ज्ञापक मानना चाहिए । स्वयं वचनिकाकार भी इस प्रवृत्ति का अपवाद नहीं है, जैसाकि छन्द-संख्या 7 की टिप्पणी में बता आए हैं ।

---

1. राजान राउत रौ वात-वणाव, पृ० 39, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी ।

लगता है, हमारे कवियों की, स्वपक्ष के योद्धाओं की तुलना में प्रतिपक्षी योद्धाओं के अधिक हताहत होने का वर्णन करने की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है। हम्मीररासो के रचयिता महेश कवि ने भी लिखा है—

रष्या करै हमीर की, संकर, सकति 'र भान ।[1]
असी सहस वलषी पडै, सहंस येक चौहान ।।

जाडा मेहडू रचित 'सादूळ पमार रौ छंद' की ये पंक्तियाँ भी तुलनीय हैं—

तेगां धार उभै दळ त्रुट्टै ।[2]
आधौ असुर कटक आवट्टै ।।

21. वात

इसी परि त्याँ लड़ताँ-लागताँ, मरताँ-मारताँ, जिण महाअष्टमी भारथ जुध मातउ थउ, त्याँ दूसरी अस्टमी आणि संप्रापति हुयी। जत्र-तत्र ग्रध मसाँण, करक की वाडि। अरधो-अरधी दुवइ दळ आवटचा ।। 1 ।।

एक घायल लड़ै था ते घाय घूमै। धूळै, लोड़ै, लड़थड़ै। जाँणै मतिवाळा मतवाळै मिळै। पाछिला रहिया सु लोह झरिया। लोह भरिया। किसा एक नीका देखीजै छै? जाँणि वसंत रिति केसू फूल्या ।। 2 ।।

व्याख्या—

इस भाँति, वहाँ लड़ते-करते, मरते-मारते जिस महाष्टमी से वह भीषण संग्राम ठना था, वहाँ दूसरी अष्टमी आ पहुँची (अर्थात् पूरे पन्द्रह दिन वह महाभीषण युद्ध चलता रहा)। जहाँ-तहाँ बिखरे असंख्य शवों, उन पर मँडराते गृद्धों तथा चतुर्दिक अस्थिपंजरों के ढेर से बनी बाड़ के कारण वह रणक्षेत्र महाश्मशान-सा प्रतीत होता था। यों (पन्द्रह दिन के इस युद्ध में) दोनों ही ओर की आधी-आधी सेना कट मरी।

अब [अवशिष्ट सेना में] कोई योद्धा घायल हुआ ही लड़ रहा था तो कोई घावों से क्षत-विक्षत हुआ रणोन्माद में झूम रहा था। ऐसे वे घायल योद्धा, भूमि पर गिरते-पड़ते, झूमते, लड़खड़ाते भी परस्पर जूझ रहे थे, मानो एक मतवाला दूसरे मतवाले से मिल रहा हो! पीछे जो बचे थे, उनके शरीर से

---

1. हम्मीररासो, पृ० 56, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त।
2. कवि जाडा मेहडू-ग्रंथावली, पृ० 20 (63), सं० सौभाग्यसिंह शेखावत।

अविरल रुधिर झर रहा था। वे रक्त से लथपथ थे। ऐसे, लहू से सने वे योद्धा कैसे शोभन दिखाई दे रहे थे? मानो वसन्त-ऋतु में पलाश फूले हों। अर्थात् जैसे वसन्तागम पर पलाश-वन लाल-लाल फूलों से लहक उठता है, कुछ वैसा ही दृश्य उस रणक्षेत्र में वे रक्त-रंजित योद्धा प्रस्तुत कर रहे थे।

शब्दार्थ—

इसी परि=इस भाँति। **त्याँ**=वहाँ। **भारथ जुद्ध**=भीषण युद्ध। **मातउ थउ**=मचा था, ठना था। उदा०—

दखिण खेत कुरुखेत, महाजुध भारत **मत्तै**।[1]

करक=करंक, अस्थिपंजर। उदा०—

दादू हंस मोती चुगै, मानसरोवर न्हाय।[2]
फिर फिर बैसे बापड़ा, काग **करंकां** आय॥

तथा—

पिक अंब डार, काक **करंक** ही जात है।[3]

आवटचा=नष्ट हुए। **घाय**=घावों से।

विशेष—

घावों से घायल होकर भी रणोन्माद में घूमना (झूमना) तथा रोष में भर बड़बड़ाना वीर-व्यक्तित्व का भूषण माना गया है। मिलाइए—

मतिवाळा घूमै नहीं, नहँ घायल बरड़ाय।[4]
बाळ सखी ऊ द्रंगड़ौ, भड़ बापड़ा कहाय॥

नोट—इसके आगे श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित संस्करण में निर्देशित 'बी' प्रति में निम्नांकित पाठ अधिक है, जो वचनिका की प्राप्य अन्य किसी भी प्रति में नहीं मिलता। इससे लगता है कि यह अंश प्रक्षिप्त है। तथापि इसके साहित्यिक महत्व तथा उससे भी बढ़कर इसमें गर्भित कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाओं—जैसे होशंग द्वारा अचलदास की पुत्री माँगे जाने आदि के कारण हमने इसे अविकल रूप में उद्धृत कर देना उचित समझा। उद्धृत अंश को

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 88, सं० सीताराम लाळस।
2. दादूदयाल।
3. सुन्दरदास, दादू-शब्दावली, पृ० 98, सं० जगदयाल दादू।
4. हाला-झाला रा कुण्डळिया, सं० डॉ० मोतीलाल मेनारिया।

विद्वान् सम्पादक श्री दीनानाथ खत्री ने जिस रूप में सम्पादित किया है, यत्किंचित् आवश्यक संशोधनों के साथ उसी रूप में साभार प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठगत संदिग्धता के कारण इस अंश को कोष्ठकान्तर्गत रखा गया है—सम्पादक।

पाठान्तर

[रात-दिवस दीसै समान। महुरत दिया, गढि ढोवा किया। तीन लाख भड़ आया। इसा, मीरी (मीनी ?) आंख, मुख मांकड़ जिसा। करै घात, बोलै पारसी, वगतर तवा झिखै, जाणै आरसी। कबाणां कुजां जिम कुरवरिया, बीलख मेहा जिम ओसरिया। नाळी निवाह, गोळा वुहाव। गढ सिखर उडी, कायरां का जीव तुडी। सूरां उछरंग, जोध चौ जंग। गाहडिमल भुरज गंगाहिड, चतुरंगणि वंका, चंगा चाहड। आडा अचल तणा अणियाळा, पनरै सहस जोध पौचाळा। सौह संग्राम का समरा, अणी का भमरा। गाहडि का गाडा, फौजां का लाडा। चाचरली का वींद, नरां का नरींद। चौईस आखडी चालण, सु तौ राव ताल्हण। महाराज मांगियो सो पायो, वाचाबंधो सुरताण पातसाह आयो। रावजी खत्री धरम रो क्रितारथ कीजै, लंका प्रमाण गढि गागुरण लीजै। मीर मुगल साके आण धमधमो उठायो, गढि प्रमाण मोरचो वणायो। धारा पनडा वखडा उजडा, पमाय तेल ले हाय पड्या। इग्यारै हजार नर खलहाण, हिन्दू मुसलमाण। राव ताल्हण-हूं गढ मोरचै लड़ै, तो सूरां-सोहड़ां समवड़ै। जो हूं गढ पोळ्यां मरूं तो च्यार जुगां लग उबरूं। उबरै सो उबरो, मरै सो मरो। गढ खवै अधारो, राव ताल्हण पधारो।

दूहा

ताल्हणसी त्रिजड़ा हथो, सामो दळै स गाह।
खाड पड़ी ओडण खवा, रिण चलियौ रिम-राह॥

वचनका

तिण ताळ पूगा राव, पूगो राव ताल्हण। पौहर दूजै, गढ़ि धड़क धूब का धड़हड़ धूजै।

दूहा

काय धूजै गढ गागुरण, सिर धूजंतै सेस।
अचळ चलेवा आंखड़ी, माथै उदक महेस॥

वचनका

रण-वंको राव बोलियौ सो निरवाह्यौ, अस कै सिर उदक वाह्यौ। राजा कै मोहत रहै पडगाहियौ रावतै.........अहमद उठ तरवार तोल, तरकस उबक उठ। दिन कूं बोलियै, निसि कूं विहायै, पातसाह लागै सगा सिहायै, तीसरो वरस जाये। साम आण साम्हा सेलार; सपूतां कौ माण, खांडा की धार। परमल पेम पोहराव, घण दळां दियण घाव। रंग-रूप दिखायो, इंद्राणियाँ रथ आंया। सूरा सुहाया, मने-भाया रंग-राग सुणाया। तब जाय बोलाया। राव रयण उरम नरवर नरेस; पौली वागड पंडवेस।

खिति वाग राखै खत्री खंडा धार, सूरमा पयार। राजा कौ यसी विचारी, प्री तौ सरग की दारी, सुणौ वात हमारी।

दूहा

सती पराक्रम राव सुण, नेह कळपे जीव।
कर जोड़े विनती करै, साम्हौ आप दईव ।।

वचनका

कुल-वंस वधारै, साथ सुधारै, तीन पख तारै। महाराज सतिया पर मोह कीजै, आपणी कर लीजै। महाराज गढ रिणथंभरि अलावदीन पातसाह अड़्या, राव हंमीर बारह बरस विग्रह लड़्या। पातसाह परदळ खूटा; दिनमान तूटै गढ तूटा।

बोलियो बगड़ी सूरसाह, दूसरौ विजेराव, घण दळां, दियण घाव। वहतो आपणी त्यागै, ओडिया तन अणी आगै। जुध जुड़ै कुलण जागै, राव ताल्हण अरथ लागै।

दूहा

दुरंग वडाई दाखवे, झाटक्के कोसीस।
अचळ लड़ेवा ऊठियौ, अंबर लागौ सीस ।।
नवरंग टोप वहादरां, अर हज्जारी तार।
राव पधारौ गढ़ सिरै, खळ मिलिया सेलार ।।

वचनका

जगजोत जाण, ऊगो क भाण। मुख चे प्रमाण, महिराण मान। लाखा सु दिन, करताब करन। अहिंकार राण, दूजेण माण, अरजन बाण।

सूरांह सीम, भारथ भीम, नरपति नीम। सेनाधिपत, हमीर मत, सातलह चित। पातलहै पाण, चौईस साखपति राव चहुवाण।

दूहा

चहुवाणां घर रीत श्रे, कंध न नम्मै राण।
सो क्यूं जायै मेदनी, मो ऊभै बाखाण ।।

वचनका

सुरताण-चा संभारौ, खंड-कौ जुध-भारथ निवारौ, पातसाह पौळ पधारौ, मानै रजपूत कर मारौ।

दूहा

असपति वचन उचारियौ, कर पेखवै कुराण।
वडा विलाती ओट वै, पाखतियां सुरताण ।।

वचनका

भाई खुर जार (बरखुरदार ?) जासैं तिसिं मीमाड व्रह्मसाह, पतसाह लगा, खानदेस भगा। सोखी उठाये, मार घायें, जोर पाये, सोह जु आये।

दूहा

जीवंतौ गढ़ समपहु, मरै त पाधर आव।
अचळा वयण उचारियौ, गहवंत गोरी राव।
गढपत गोरीवे तणा, कहियौ श्रेह कहाव।
देस समप्पे पातसा. धीय समप्पै राव ।।

कवित्त

धीय न दी चहुवाण, खान सूं साहे खंडौ।
धीय न दी धारुवै, अभंग पतसाहा अड्डो।
धीय न दी हम्मीर, सु तौ धर धीर कहावै।
ओ नथ अग्गा लगे, तेण कुळ कलंक न लावे ।।
अचळेस कहै अहमद्द सूं, वदे न कथयण वक्करै।
पतसाह पुत्री परणी नहीं, कंवर वीर करिणया गरै ।।]

---

22. वचनका

तितरई बात कहतां वार लागइ। बोलतउ हुवउ छइ राजा जवणसी। राजा अचलेसवर प्रति इसउ कहइ छइ— राजाजी ! यइ ऊबरत कित्र काजि ?

तराँ राजा अचलेसवर राजा जवणसी प्रति इसउ कहइ छइ—भाई हो ! अम्हे तो छाँ बाळा-भौळा । राजिआँ, तस राजी अयांणा । राज छो सबै बात सयांणा । सबै बात पयांणा । सबै बात सामरथीक ।। 1 ।।

यसा माँही राजा जवणसी अचलेसवर प्रति कहइ छइ [दूसरौ गूधल] जौं राजा हम मोटा तउ पिण तुहारा ही घर का रजपूत अर तुहारा हीं घर का उलिगांणा । तुहारा ही घर का चाड वायक । यउ तउ आवरत अनिवरत हुयबा लागउ । रुधिर का बाहळा नदी मैं मिल्या । पाणी बिटलिया । घायल था ते घाय भीनां । राति-द्यौस न मीना । महाप्रब अर महारसि आयौ ।। 2 ।।

तितइई बोलतउ हुवउ छइ पाल्हणसी बालाकउ । राजा अचलेसवर प्रति कहइ छइ—इसउ कांयउ क्तित ही रहिबउ ? मरण तउ छइ अेक बार । नाउ इसउ प्रब पाइबउ वार-वार । इवइ यउं कीजइ । साहण-वाहण, अरथ-भंडार संभाळिजइ । जळइ सु जउहर जाळिजइ । नही त्यउ खांडइ निखाळिजइ । अवघू पुरखारथ कीजइ । अवघू पुरखारथ करतां-मरताँ दीजइ रुहिर का पिंड । इण विधि हुइजइ खंड-विहंड ।। 3 ।।

इतरइ आसउदे न उ गाँगो रणउ कहि छइ—सो नाहि हो ठाकुरे ! इसउ कीजइ, अेक धाराळाँ की धार खिरी छइ, ते पुनरपि धरावजइ । घांअे पाटा बांधिजइ । दुहथि उठिजइ । मूळ उडइ चालिजइ । गजदळ गाहिजइ । पिसुण आलमसाह सारिखउ चाहिजइ । नांऊं आपुणपउ निर कांही सू डाविजइ ? ।। 4 ।।

तितरइ नाथू डोड, डूँगर वागड़ी कहइ छइ—इसउ नहीं हो ठाकुरे ! इसउ कीजइ—गळइ साच सइ साळिग्राम तुळसी की माळा घातिजइ, राजा अचळेसर का आवास-थइ लोहड़उ करतां-करतां गोरी राजा का गूडरहइ जाइजइ । जितरा-जितरा पग दीजइ, तितरा-तितरा अस्वमेघ ज्याग का फळ लीजइ । इणि विधि जीव निवेदिजइ, तउ सूरिज-मंडळ भेदिजइ ।। 5 ।।

तितरउ बोलतउ ही हुवउ छउ राजा अचलेसवर । कहइ छइ—भाई हो ! या तउ वात तम्हे कही छइ चालती चड़वड़ी; सु अम्हारइ मनि न हुइ छइ अेक ही घड़ी । या तो छइ भाव नी आस; ज्यउँ जाणउं त्यउँ मरउ आस-जास ।। 6 ।।

तितरइ वात कहताँ वार लागइ। अस्त्री जण चाळीस [पंचास] कउ संघाट आइ संप्राप्ती हुवउ छइ। किसी हेक—बाळी, भोळी, अबला, प्रउढा, सोडस-वारषी राणी-रदताणी बहदा-बहदी ही आपणा-आपणा देवर-जेठ भरतार का सत देखती फिरइ छइ ।। 7 ।।

वड-महिली तउ बाई सफळादे [सुकळादे], भोज की कांता; अचल की जनेता। कुळ-बहू तउ बाई पुहपाई; राणा मोकल की सारधू। गोत-सवासणी तउ बाई ऊदो। अे तउ कहीजइ—वाबुला आप. कारिजी; आप सवारथी। आपणपउ ही ज कियउ क्रित जाणइ; आपणपउ ही ज बोल आगी आणइ। पिण कथीर न जीपइ कनक हइ। अे तउ नं जीपइ हम हइ। सिव-सगती, सम जुगती। सिव हार्यउ, जीत्यउ सगति। अे वडी वडाइ हइ कवण गति, जू अम्हे मूवां की गैल मराँ, माइ-बाप वीसराँ, तीनि परव ऊधरां; अबइ यउ अभिमान कउण सउ कराँ? इन कउ सत, तेज, अहंकार देखतां दिहाड़इ बस अवरु वीस हुवा छइ। न अे हमारउ सत, तेज अहंकार देखइ न हम हू संभारइ ।। 8 ।।

इणि बोलि राजा अचलेसवर साम्हा आय हाथ जोड़ि जुजवा प्रणाम कर बोलता हुवा। राजा कहइ छइ—मानवी को कहा रे, बावळी हो! तेतीस कोड़ि देवता सहित सिरजणहार, त्यउ तुहारइ कउतिग देखणहार। हउं तउं छउं चिता-वसत; तमे काइ मानउ आपणाँ मन माहि अहित। अबइ तम्हइं यउँ करउ ज्यउँ जोगइ जोगाइत-कइ घरि जउहर हूवा, तिलक-छपरि गहिलोतां कै धरि जउहर हूवा; सीहउरि रोलू कइ घरि जउहर हूवा; कालिह कइ दीहाड़इ रिणथंभउरि राजा हमीरद्यौ कइ घरि जउहर हूवा। तिणू जउहरां जिका वात ऊणी हुयी हुवइ, त्या तम्हइ पूरी करि दिखाळउ। पूरी हुयी हुवइ, त्या पुनरपि बाहुड़ि उजाळउ। हउं तउं छउं. चिता वसतु; तिणि कारणइ छउं दुचित; तम्हइ कांइ मानउ आपणा मन माँहि अहितु ।। 9 ।।

इणइ बोल राजा अचळेसवर कउ राजलोक हस्यउ। हे माइ! मरण चाली अर सुकुर सामहउ। अई जी! पूछउ न इ इबै चिता छइ त्या कउण चिंता छइ? [तरां राजा अचळेसवर कहइ छइ—च्यंता सु राज्य-च्यंता]। तितरइ आगला चारण कउ दूहड़उ छइ—

जस जावड़मल जाह, पूत न होई पाहरू।
तिण ताटीहर ताह, जळियउ जाइलहर धणी ।। 10 ।।

अेवडउ सांडसींघण कउ घर, जिकउ गागुरणि सारीखउ भीतिहर । त्या अेक पुरिख का पछौपा बाहिरउ जाण्यइ-बीण्यइ हुवइ छइ ताटीहर ।। 11 ।।

राजा अचलेसवर कहइ छइ—यउ तउ बोलियउ करि विचारिजइ। अेक पुरिख सउ पुरिख कइ पछोपइ उबारिजइ । सु तउ हुं नीसरउ न दीसउ नीकउ । चाँदइ तउ गज-घटा न फूटै । पामा पातल तउ घाइ भारी । धीरउ उहाँ राणा मोकळसी पासि गयउ थउ, तउ न जाणउँ उहाँ ही रह्यउ, न जाणउँ आवतउ किहीं बीच ही अडाळराल्यउ थयउं हो । उहाँ धीरउ ऊबरै, इहाँ पाल्हणसी परीछायउ परीछइ तउ राजा अचळेसर कहइ छइ, भाई हो ! सबूरी रहै हमारी, नांहि तर, राजा अचळेसर कहइ छइ, भाई हो ! सबूरी गयी हमारी ।। 12 ।।

पाल्हणसीहै परीछावइ छइ रणवास; अवरू लोक उदास । पाइँ लागइ छइ बाई सफळादे, भोज की कांता; अचळ की जनेता । कुलबहू तउ आयी बाई पहपाई, राणा मोकळ की सारधू । सकळ ही परिवार । हेता दियइ अपार । पाल्हणसी परीछायउ परीछइ नहीं गंवार ।। 13 ।।

पाल्हणसी रे ! कण तउ सुकण सांचिजइ; बीज तउ सु-बीज बीजिजइ । पाछउपइ त्यउ रहाणिजइ; जी थे ऊधरती जाणिजइ ।। 14 ।।

पणि तूँ तउ कायर कापुरिस । तूँ हइ तउ यउ ही वडउ मिस [जु मरिस्यँउ] । थारउ कियउ पाछउपा कउ गळग्रह न चालइ ।। 15 ।।

पाल्हणसी भला-भला लोकां का कह्या करणाचार सांभळ्या । [लोकां का कथनां परीछ्यौ; पतीनौ । राजा अचलेसर को मन रळ्यउ । अवर लोक हरखित हुवउ । पाल्हणदेहै राजा अचलेसर तिलक काढयउ] आँसू पूंछि अंकमाळ लियउ । वीजइ थंभ वागड़ी की नांई सकळ ही प्रिथमी प्रतपिज्यउ । यउ गढ़ लीजउ । हमारउ वइर सुरिताण गोरी राजा सउं कीज्यउ ।। 16 ।।

[श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका में निर्देशित 'बी' प्रति में 'ब्रह्म वागड़ी की नाई' तथा 'ईसा माहीं राजा अचळेसुर बोलता हुवा' के बीच निम्नांकित अंश अधिक है—

दूहा—पाल्हणसी पाधारीयौ, अचल अनमी पास ।
रावजी वंश रहेसी मोरहा, नाम रहै सीवदास ।।

वचनका—माधा, नापा, सादा अै तो मरवा ही का ठाम, रावजी सीवदास राखीयौ अवसीं घणौ काम; क्यों हो सीवदास आख भरै लोई, रजपूत को मर(ण), छोरुडो चारण निकळ्यो पखै जिसो लुण वना रसोई।

कवित्त– सतियां री आसीस

जा अगजीत अगणीकै, जा सत तेज लहै हम।
पीठ पुठ ना फिरे, मेर माथै मडै तम॥
सती दीयै आसीस, सहु परवार सुहावै।
तो ऊभै गढ़ धणी, कमण वळ वीयो कहावै॥
मार की वार मझि मारका, ओलै लख दळ उखरै।
सत्र सेन तुझ सांगणहरा, मुहि मावै सोई मरै॥]

व्याख्या—

[1] इतने में बात कहने भर की देर थी। राजा जवणसी बोल पड़ा। राजा अचलदास को सम्बोधित कर वह यों कहता है—राजाजी ! इस [युद्ध से] अब कैसे उवरा जाए? तव राजा अचलदास राजा जवणसी को प्रत्युत्तर में कहता है—हे भाई ! हम तो आपके सामने भोले वालक हैं (आप बुजुर्ग हैं, हम तो आपके आगे बच्चे हैं)। राजा हैं, परन्तु आप जैसे अनुभवी राजा के समक्ष अज्ञानी हैं। आप सब भाँति चतुर और समझदार हैं। सब भाँति समर्थ हैं। (अतः इस विषम युद्ध-परिस्थिति में करणीय क्या है—यह आप ही वताएँ)॥ 1॥

[2] ऐसे में (इस पर) राजा जवणसी [जो दूसरा गूघल है], राजा अचलदास से कहता है--जो हम बड़े राजा हैं सो ठीक, परन्तु हैं तो हम आपके ही घर के राजपूत (अर्थात् आपके ही अधीनस्थ सामन्त हैं), आप ही के सेवक हैं तथा सदा आपकी सहायता के लिए वचनबद्ध हैं। यह महाभीषण युद्ध तो अब अविराम ठन गया है (अर्थात् इसका कोई अन्त नजर नहीं आता)। रुधिर के नाले नदी में जा मिले हैं, जिनसे नदी का जल दूषित होगया है। जो घायल थे, वे घावों से मूर्च्छित हैं। रात-दिन और महीनों का कुछ भी बोध नहीं रहा है। यह तो महापर्व और महा आनन्द की घड़ी आगई है (अर्थात् दुर्लभ मरण-पर्व आगया है। अतः अब शत्रु से लड़ते हुए वीरगति पाना ही एकमात्र विकल्प है)॥ 2॥

[3] इतने में बाला के पुत्र पाल्हणसी ने कहना शुरु किया। राजा अचलदास को सम्बोधन कर वह कहता है- ऐसा कोई [शूरोचित] कृत्य करें तभी [यशोकाया के रूप में अमर] रह सकेंगे। मरना तो एक बार है ही। ऐसा [मरण] पर्व बार-बार नहीं पाएँगे। [अतः] अब यों कीजिये—अश्व, वाहन तथा द्रव्य-भंडार (राजकोष) को सँभालिए (एकत्र कीजिए)। इनमें जो जल सके, उसे जौहर की ज्वाला में जला दीजिए अन्यथा खड्ग-धारा के हवाले कर दीजिए (तलवार के घाट उतार दीजिए ताकि शत्रु के हाथों में न पड़े)। [तदनन्तर घर-बार, धन-धाम आदि की चिन्ताओं से मुक्त हो प्राणों का मोह त्याग] अवधूत की भाँति [निश्शंक हो दुर्ग से निकल पड़ें तथा अपने] उद्भट पराक्रम [से शत्रु का संहार करते हुए वीरगति प्राप्त] करें। इस प्रकार अवधूत की भाँति अद्भुत पराक्रम दिखलाते हुए तथा [तिल-तिल घावों से घायल होकर] मरते हुए [पूर्वजों को] अपने रुधिर का पिण्ड-दान दें। यों [वीरता से लड़ते हुए] खंड-खंड होजाएँ ।। 3 ।।

[4] इतने में आसदेव से वह गांगा का [प्रधान ?] कहता है —यह नहीं, हे ठाकुर ! ऐसा करो कि एक तो जिन खड्ग और तलवारों की धारें टूट गई हैं, उनके फिर से धार लगवाई जाए (शत्रु पर टूट पड़ने के लिए अपने क्षत-कुंठित शस्त्रों को पुनः तीक्ष्ण किया जाए)। अपने घावों के पाटे बाँध लिए जाएँ। तलवारें उठाई जाएँ (या दोनों हाथों में तलवारें ली जाएँ)। मूल (प्रारम्भ) से ही शत्रु पर सवेग टूट पड़ा जाए। गजदलों को रौंद डाला जाए। शत्रु तो आलमशाह (होशंगशाह) जैसा ही [बलवान] होना चाहिए (जिससे युद्ध कर अक्षय कीर्ति की प्राप्ति हो) अन्यथा लोगों में (इस संसार में) अपना नाम कैसे अमर रहेगा ? ।। 4 ।।

[5] इतने में नाथू डोड़ और डूँगर वागड़ी कहते हैं—ऐसा नहीं है ठाकुरो ! यों करो कि गले में सत्यनिष्ठा से [मरण संकल्प के प्रतीक] शालिग्राम तथा तुलसी की माला धारण की जाए। [तदनन्तर] राजा अचलेश्वर के महल से तलवार वजाते हुए गोरी राजा के डेरे तक जाया जाए। जितने-जितने कदम रखेंगे, उतने ही अश्वमेध-यज्ञ का फल पाएँगे। (अर्थात् पद-पद पर अश्वमेध-यज्ञ का-सा महान् पुण्य-लाभ मिलेगा)। इस भाँति, लड़ते हुए [यदि] अपने प्राण उत्सर्ग करेंगे तो सूर्यमंडल का भेदन करेंगे ।। 5 ।।

[6] इतने में राजा अचलेश्वर ने कहना प्रारम्भ किया। कहता है—हे भाई ! तुमने जो यह बात कही है, वह तो चलती (सामान्य) और

लड़ने-लड़ाने की है (अर्थात् दूरदर्शितापूर्ण नहीं है) सो घड़ी भर के लिए भी (किंचित् भी) मेरे मन नहीं भाई है। [जहाँ तक मरने की बात है सो] यह तो अपनी भावना और इच्छा की बात है कि जो जैसे उचित समझे, वैसे ही अपने प्राण निछावर करे (भाव यह कि हमारे मरने के बाद वंश की रक्षा करने, शत्रु से अपने बैर का बदला लेने तथा गढ़ को पुनः अधिकृत करने हेतु क्या उपाय किया जाय—इन पर विचार किए बिना ही केवल मरने-मारने की बात करना कोई दूरदर्शिता नहीं है।) ॥ 6 ॥

[7] इतने में बात कहने भर की देर थी। चालीस [पचास] सहस्र स्त्रियों का समूह [जौहर करने हेतु] वहाँ आ पहुँचा। कैसी-कैसी ? भोली-भाली बालाएँ, अबलाएँ, प्रौढ़ाएँ, सोलह वर्षीया ललनाएँ, रानियाँ और रवतानियाँ (सामंत-वधुएँ) अहमहमिका से अपने-अपने देवर, जेठ और पति का पराक्रम देखती-फिरती हैं ॥ 7 ॥

[8] [इनमें] बड़ी रानी तो बाई सफलादे [सुकलादे], भोज की स्त्री, अचलदास की माँ। कुलबहू तो बाई पुष्पावती, राणा मोकल की बेटी। गोत की बहिन-बेटी बाई ऊदी। ये कहती हैं—दादुर अपने ही काम की सोचते हैं। अपना ही स्वार्थ देखते हैं। अपने किए हुए काम को ही सुकृत्य मानते हैं। अपनी ही बात को सबसे आगे लाते हैं (सर्वोपरि समझते हैं)। परन्तु जस्ता कभी सोने को नहीं जीत सकता (स्वर्ण के महत्व को नहीं पहुँच सकता) [वैसे ही] ये (पुरुष) भी [वीरोचित मृत्यु का वरण करने में] हमें [स्त्रियों को] नहीं जीत सकते। शिव और शक्ति, [दोनों की] समान महिमा है [तथापि] शिव हारे हैं, शक्ति जीती है। (अर्थात् आद्या शक्ति के बिना शिव जड़ और निस्पन्द हैं, शक्ति ही शिव को चेतना से उच्छ्वसित करती है, स्पन्दित करती है) इसमें भला क्या बड़ी बड़ाई है, जो हम मरों के पीछे मरें ? (पुरुष रण में कट मरें तब हम ज़ौहर करें)। [जौहर करते समय] हम जो अपने माता-पिता को भूल कर [मात्र पतिकुल की लाज की रक्षा के लिए अग्नि-स्नान कर] अपने तीनों पक्षों (कुलों) का उद्धार करती हैं—उन्हें उज्ज्वल करती हैं—यह गर्व तब हम किसके समक्ष करें ? (भाव यह कि हम पुरुषों के जीते जी ही जौहर करेंगी ताकि वे हमारे इस अपूर्व मरण-पर्व को देखें तथा हमें भी उनके समक्ष ही अपने वीर-व्रत-पालन का गर्व हो)। इनका (पुरुषों का) सत्य, तेज और दर्प देखते-देखते हमें दस-बीस दिन होगए हैं और

अब ये हमारा सत्य, तेज और दर्प देखें। तथा [मरणोपरान्त] हमें याद करें ।। 8 ।।

[9] ये वचन सुन राजा अचलेश्वर उन सती-ललनाओं के सामने आ, हाथ जोड़कर, सबको (व्यक्तिश:) अलग-अलग अभिवादन करते हुए बोला। राजा कहता है—अरे, तुम बावली हो! (जो हमारे जीतेजी ही जौहर करने का हठ कर रही हो)। अरे, मानवियों की कौन कहे, तेंतीस करोड़ देवताओं सहित स्वयं सृष्टिकर्ता भी तुम्हारे इस कौतुक (अदभुत वीर-कृत्य) का द्रष्टा है (अर्थात् हमारी तो बिसात ही क्या, स्वर्ग के देवताओं सहित स्वयं परमेश्वर भी तुम्हारे इस महान् उत्सर्ग के दृश्य को देखने हेतु लालायित रहता है)। मैं तो हूँ चिन्ता के वशीभूत; [अत: तुम मेरे कहे का] अपने मन में बुरा क्यों मानती हो? अब तुम वैसा ही करो, जैसा जोगी जोगाइत के घर जौहर हुआ। तिलक-छपरि गहलोतों के घर जौहर हुआ। सीहोर रोलू के घर जौहर हुआ। कल के दिन रणथंभोर के राव हम्मीरदेव के घर जौहर हुआ। तीनों जौहरों में जो बात अधूरी रह गई हो, वह तुम पूरी कर दिखाओ। जो पूरी हो गई हो, उसे पुन: लोक में दिखाकर उजागर कर दो। मैं तो हूँ चिन्ता के वशीभूत, इसीलिए खिन्न हूँ। तुम अपने मन में बुरा क्यों मानती हो? ।। 9 ।।

[10] इस कथन पर राजा अचलेश्वर की रानियाँ हँस पड़ीं। [बोलीं—] हे माई!' [आपने तो यह कथावत सिद्ध करदी कि] 'मरने चले और पूछते हैं कि शुक्र सामने है क्या?' (अर्थात् जब मरने का ही निश्चय कर लिया है तो ग्रहों के शुभाशुभ या योगायोग का क्या विचार? राजा! अब चिन्ता कैसी?)। ओ जी! अब इनसे पूछो न कि इन्हें जो चिन्ता है, सो कौनसी चिन्ता है? [तब राजा अचलेश्वर कहता है—चिन्ता है, सो राज्य की चिन्ता है।] तभी [राजा ने कहा—] किसी पुराने चारण का कहा हुआ दूहा है—

'जावड़मल का यश चला गया क्योंकि उसके पीछे उसका कोई पुत्र प्रहरी या पृष्ठरक्षक (नामलेवा) नहीं रहा। फलत: हे जायलराज! (खीची राजा!) उनका वह घर कूस के झोंपड़े की तरह जल गया (अर्थात् नामशेष होगया)' ।। 10 ।।

[11] ऐसा उस सांडसींघण का घर (वंश, संस्थान), जिसके गागरोण सरीखा दुर्ग है, वह आज एक पृष्ठरक्षक के बिना, जाना-बूझा भी साधारण

झोंपड़ा होरहा है। (अर्थात् सबके मरण-व्रत का पालन करने पर, किसी सबल और समर्थ उत्तराधिकारी के अभाव में यह सुदृढ़ और दुर्जेय गागरोण गढ़ भी साधारण घास-फूस के झोंपड़े के समान शत्रु के हाथों सदा के लिए नष्ट होने जारहा है; यह कैसी विडम्बना है !) ।। 11 ।।

[12] राजा अचलेश्वर कहता है—इसने तो बहुत सोच-विचार कर बात कही है (नीतियुक्त, उत्तम कथन किया है)। एक [सु] पुरुष पीछे बचा रह कर सौ पुरुषों को उबार लेता है (अर्थात् वंश के एक सपूत के बचे रहने से सौ उबर जाते हैं)। [जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है] सो मैं तो [गढ़ छोड़कर] जाता हुआ अच्छा नहीं लगूँगा (अर्थात् गढ़ छोड़कर जाना मेरी प्रतिष्ठा के योग्य नहीं है)। चाँदा [शत्रु की] गजसेना को नहीं फोड़ सकेगा। पामा और पातल (प्रताप) के भारी घाव लगे हैं (जिसके फलस्वरूप शत्रु-सेना के घेरे को तोड़ कर निकलना उनके लिए कठिन होगा)। धीरा वहाँ (चित्तौड़) राणा मोकल के पास सहायतार्थ गया था, सो न मालूम तो वहाँ ही रह गया, न मालूम आते हुए को किसी ने बीच में ही कहीं रोक लिया (मार डाला ?)। [यदि] वहाँ धीरा बच जाए तथा यहाँ पाल्हणसी समझाने से समझ जाए (वंश-रक्षार्थ दुर्ग छोड़कर निकल जाने को राजी होजाए) तो राजा अचलेश्वर कहता है— हे भाई ! हमें सबूरी (तसल्लो) होजाए नहीं तो, राजा अचलेश्वर कहता है, हे भाई ! हमारी सबूरी गई (अर्थात् किसी वंश-रक्षक के न रहने से मेरा धैर्य जाता रहेगा।) ।। 12 ।।

[13] पाल्हणसी को रनिवास की सभी स्त्रियाँ समझा रही हैं। अन्य लोग उदास हैं। बाई सफलादे, भोज की रानी तथा अचलदास की माँ उसके पैरों पड़कर अनुनय कर रही है। कुलवधू बाई पुष्पावती, राणा मोकल की बेटी भी उसे समझाने आई। सारा ही परिवार उसे असीम स्नेह-प्रबोधन दे रहा है (बहुत प्यार भरे अनुरोध कर रहा है) परन्तु पाल्हणसी समझाए समझ नहीं रहा है मूर्ख ।। 13 ।।

[14] [पाल्हणसी को सारा राज-परिकर यों कहकर समझा रहा है—]

पाल्हणसी रे ! कण [संचय करना हो] तो उत्तम कण का ही संचय करना चाहिए। बीज [बोना हो] तो अच्छे बीज को ही बोना चाहिए। (अर्थात् जैसे अच्छे बीज से ही अच्छी फसल होती है, वैसे ही वंश-रक्षा के लिए भी किसी सुयोग्य और समर्थ शूरवीर को ही रखा जाना चाहिए, जिससे

वंशलता सतत वृद्धिगत होती रहे।) अतः पीछे के [दायित्व-निर्वाह] के लिए यदि तू रहेगा तो उससे हमें भविष्य में गढ़ के उद्धार की आशा बँध जाएगी ।। 14 ।।

[15] परन्तु तू तो कायर, कापुरुष है। तुझे तो यही एक बड़ा बहाना मिल गया है [कि मैं युद्ध में मरूँगा]। (अर्थात् तू भविष्य में गढ़ के उद्धार के गुरुतर दायित्व से बचने के लिए ही इस आसन्न युद्ध में मरने का बहाना खोज रहा है। स्पष्ट ही, यह तेरी कायरता है)। तेरे ऐसा करने से (अभी मरने से) पीछे गले में पड़ा गढ़ के उद्धार का यह बोझ और किसी से नहीं खिच पाएगा ।। 15 ।।

[16] पाल्हणसी ने भले-भले लोगों के कहे हुए करणीय आचार के ये वचन सुने। [लोगों के समझाने से वह समझा; सहमत हुआ। इससे राजा अचलेश्वर का मन आह्लादित हो उठा। अन्य लोग भी हर्षित हुए। राजा अचलेश्वर ने उसके ललाट पर उत्तराधिकार का सूचक तिलक किया तथा] अपने आँसू पोंछ कर उसे गले लगा लिया। [तदनन्तर उसे यों आशीर्वाद दिया—] विजयस्तंभ बागड़ी की भाँति इस अखिल भूमण्डल पर अपने प्रचण्ड पराक्रम और प्रभुत्व के तेज से शासन करना। यह गढ़ वापस लेना और सुल्तान गोरी (अलपखाँ) से हमारे बैर का बदला लेना ।। 16 ।।

शब्दार्थ—

(1) **तितरई**=इतने में। **ऊबरत**=उबरें। **अयांणा**=अज्ञानी। **पयांणा**=प्रवीण।

(2) **मोटा**=बड़े, पद-प्रतिष्ठा में वरिष्ठ। **उलिगांणा**=राजसेवक। बहुत पुराना शब्द है। 'ओळग' (सेवा) से बना 'उलिगाणा' (सेवक) शब्द हमारे प्राचीन एवं मध्ययुगीन साहित्य में बहुशः प्रयुक्त हुआ है। उदा०—

चालियउ **उलगाणउ** कातिग मास।[1]

चाड=सहायता। **वायक**=वचन (वाक्य)। 'चाड वायक' से आशय कदाचित् स्वामी के वचन या आदेश पर उसकी रक्षार्थ दौड़ पड़ने वाले सेवक से है। **आवरत**=(आवर्त) भयंकर युद्ध, विशेषतः मंडलाकार युद्ध [शत्रु द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर] महाभीषण संग्राम। उदा०—

महाजुध मत्तं। इसौ **आवरत्तं**।[2]

---

1. बीसलदेवरास (67); पृ० 149, सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त।
2. गजडुणरूपकबंध, पृ० 31, सं० सीताराम लाळस।

अनिवरत=अनवरत, निरन्तर। **बाहळा**=नाले। **बिटलिया**=दूषित होगया।

जैसाकि लोक-प्रवाद है, सुल्तान ने नदी के जल में गोमांस मिलवा कर उसे दूषित कर दिया था। कर्नल टॉड ने भी इस घटना का उल्लेख किया है परन्तु उन्होंने भूल से सुल्तान होशंग की जगह उसे अल्लाउद्दीन से जोड़ दिया है—

"It was only by polluting the waters with the blood of the sacred kine, that Alla, the sanguinary (Khooni) took it about five centuries ago from the valiant Kheechie, Achildas....".[1]

(3) **क्रित**=कृत्य। **नाउ**=नहीं। **प्रब**=पर्व, युद्ध का मांगलिक अवसर। **निखाळिजइ**=काट दिया जाए, नष्ट कर दिया जाए। उदा०—

"बाकरा फूलधारा मुहे **निखालीजै** छै, बाकरा उधेड़ीजै छै।"[2]

अवधू=अवधूत, वीतराग परमहंस। डिंगल-काव्यों में माया-मोहादि से मुक्त, मरण-संकल्पधारी शूरवीर को अवधूत या योगीन्द्र से उपमित किया गया है, जो अपने प्राण हथेली पर लिए संग्राम में उद्भट पराक्रम दिखलाता हुआ वीरगति प्राप्त करता है। उदा०—

1. "च्यारि चक्क नव खंड-प्रिथी रा जगजेठ जोधार जमदूत राजेन्द्र **जोगेन्द्र** रूप करि उजेणि खेत नर हैवर धेंधिगर आय चौदंत हुवा[3]।"
2. "जडे सीलहा जोध **जोगिंद्र** हूआ।"[4]

रुहिर का पिंड=रणभूमि में तिल-तिल घावों से घायल होकर गिर पड़ने पर जब योद्धा को अपनी मृत्यु का निश्चय होजाता था तो वह अपने शरीर से प्रवाहित रक्त तथा उससे सिंचित मिट्टी के गोले बना-बनाकर अपने पास रखता जाता था। रक्त और मिट्टी से बने इन गोलों को ही 'पिंड' कहा जाता था एवं इस प्रकार पिंडदान की क्रिया को 'पिंड सारणौ' या 'पिंडाण सारणौ'।

---

1. Annals & Antiquities Of Rajasthan; Vol. II; Page 590; M. N. Publishers; New Delhi.
2. राजान राउत रो वात-वणाव, पृ० 47, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
3. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री, पृ० 210, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।
4. गजगुणरूपकबंध, पृ० 186, सं० सीताराम लाळस।

घायल योद्धा अपने जीते जी ही पितरों को रुधिर के पिंड अर्पित करने में अपना परम अहोभाग्य समझता था। उदा०—

1. "वढै वप वीजळ खंड विहंड ।[1]
   पडै धर तांम किया **रत पिंड** ।।"

2. "घायलियै सिंघ ज्यू घूमै छै, सावचेत हुवै छै जद तो एक दोय **पिंड रुधिर का भरै छै**। रुधिर री धारा सरीर मांयां सूं प्रवाळ री सीकां वह नै रही छै।"[2]

3. "राजा उम्मेदसिंह व रावत पहाड़सिंह बहादुरी के साथ काम आए। जिस वक्त राजा उम्मेदसिंह जांकन्दनी की हालत में **अपने खून और मृत्तिका से पिंड बना रहे थे,** उस वक्त एक मरहठे सवार ने राजा की छाती में बाँस मार कर कहा कि इसने बहुत सिपाहियों की जान ली है। उसी वक्त मरहठी फौज के एक अफसर ने उस सवार को डाँटकर कहा कि तेरा बाबा खड़ा था, उस वक्त बाँस मारता तो बहादुरी थी।"[3]

वीरभूमि राजस्थान को छोड़कर वीरोचित आदर्श का ऐसा अनूठा उदाहरण क्या कहीं अन्यत्र मिल सकेगा ? मरते-मरते भी अपने पितरों की तृप्ति के लिए अपने ही हाथों से रक्तपिंड-दान का ऐसा रोमांचक विधान विश्व के किस देश के इतिहास में मिलेगा ? राजस्थान की वीर-प्रसविनी भूमि का कण-कण ऐसे ही उद्भट शूरवीरों के रक्त से रंजित है !
खंड-विहंड=टुकड़े-टुकड़े ।

(4) **हो ठाकुरे !** =हे ठाकुरो ! प्राचीन व मध्ययुगीन डिंगल-काव्यों में 'ठाकुर' के बहुवचन के रूप में 'ठाकुरे' शब्द के प्रयोग की व्यापक प्रवृत्ति रही है। यथा—

1. "**ठाकुरे !** वो म्होकमसिंघ कोट में उड पडचो।"[4]

---

1. सूरजप्रकास, भाग 3, पृ० 69, सं० सीताराम लाळस ।
2. दयालदास री ख्यात, भाग 2, पृ० 236, सं० डॉ० दशरथ शर्मा ।
3. वीरविनोद, कविराजा श्यामलदास, पृ० 1557-58 ।
4. प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघ री बात, रा० सा० सं०, भाग 2, पृ० 24 ।

2. "ताहरां हांसू कह्यो—**ठाकुरे** ! वाहर आयी....."[1]
3. "साबता **ठाकुरे** ! चढो पेहरो सलह ।"[2]
4. "इतरा में सहस फुण धारी, कुरम रौ असवार, धरती रौ धरणहार बोलियौ— **ठाकुरे** ! दांणवा तो भुजाडंड करी अडंडा नै डंड लगाया ।"[3]
5. "धीमा-धीमा **ठाकुरे** ! जमी न भागी जाय ।"[4]

धाराळां=तेज धार वाले शस्त्र-तलवार, खड्ग, खङ्ग । तलवार के पर्यायवाची अर्थ में इसका उदाहरण—

तेग रूक **धाराळा** तेगो, बाढाली सारंग विजड़[5]

वंशभास्कर की स्व-कृत टीका में सूर्यमल्ल ने इसका अर्थ खङ्ग किया है ।[6]
खिरी छइ=टूट गई है [सं० क्षरित] । **पाटा**=बड़ी व चौड़ी पट्टी ।
दुहथि=1. तलवार ? दो हाथ लम्बी होने के कारण ? अथवा—
2. दोनों हाथों में, जिससे डिंगल का 'दुवाह' शब्द सार्थक होता है ।
पिसुण=शत्रु [सं० पिशुन] । **नांऊं**=नाम । **आपुणपउ**=अपना ।

(5) **साच सइ**=सत्य निष्ठा से । **साळिग्राम**=श्यामवर्ण पत्थर की चक्रांकित बटिया, जो विष्णु-रूप में पूजित होती है । मध्ययुग में जो वीर यह संकल्प करके रण में जाता था कि या तो वह विजय-श्री प्राप्त करेगा या रण में धराशायी होजाएगा परन्तु जीतेजी युद्ध से पलायन नहीं करेगा, वह अपने इस अटल मरण-संकल्प की सूचक तुलसी-मंजरी की माला गले में तथा शालिग्राम की बटिया मस्तक पर धारण कर लेता था । मिलाओ—

"गळै माळ तुलच्छी, अनै **साळिग्राम**"[7]

विदित हो कि तुलसी व शालिग्राम का परस्पर देवी-देवता का जोड़ा है, जिनका देश के कुछ भागों में प्रति वर्ष विवाह भी रचाया जाता है ।[8] इसीलिए दोनों की एक साथ पूजा होती है ।

---

1. बात कंगरै बलोच री, राज० वातां, भाग 1, सं० सौभाग्यसिंह शेखावत ।
2. रुषमणी-हरण, पृ० 34, सं० डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ।
3. माताजी री वचनिका, पृ० 31, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।
4. वीरसतसई, सूर्यमल्ल (32), पृ० 46, सं० डॉ शंभुसिंह मनोहर ।
5. डिंगल-कोष, मुरारिदान, (63) ।
6. वंशभास्कर; पृ० 2967 ।
7. गजगुणरूपकबंध, पृ० 201, सं० सीताराम लाळस ।
8. Encyclopaedia Of Religion; M. A. Canny.

घातिजइ=डाल ली जाए, पहन ली जाए। **लोहड़उ करतां**=तलवार चलाते हुए। **गूडरहइ**=डेरे या तंबू तक। **जितरा-जितरा....अस्वमेध ज्याग का फळ लीजइ**=वीरों का यह वीरोचित विश्वास था कि रणक्षेत्र में उद्भट वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आने से पद-पद पर अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है। मिलाओ—

1. "अर आघा वधता पांवडा देणा। तिको पांवडै-पांवडै अस्वमेध रौ फळ पावां"[1]
2. "आप रा उमरावां रा वैर घेरां। क्रम-क्रम असमेद ज्याग रौ फल ल्यां। दांणवां रौ कुळ उजवाळां।"[2]

सूरिजमंडळ भेदिजइ=युद्ध में अनुपम वीरता प्रदर्शित करते हुए वीरगति पाने वाला योद्धा सूर्यमंडल का भेदन करता है—ऐसा महाभारत का वचन है—

द्वाविमौ पुरुष व्याघ्र सूर्यमंडल भेदिनौ।[3]
परिव्राट्योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखोहतः॥

डिंगल-काव्यों में युद्ध-वर्णन के प्रसंग में वीरों द्वारा सूर्यमंडल-भेदन करने तथा उससे भी आगे परमज्योति में विलीन होने का बहुशः उल्लेख हुआ है, जिसकी परम्परा, जैसाकि बता चुके हैं, महाभारत जितनी ही पुरानी है। इस आशय के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

1. "भिद मंडळ भाण, रहिमांण सूं जाय मिळ,
   यह विकट सूरमां तणा पेडा।"[4]
2. "भालि भेदियो सूरिजमंडल।"[5]
3. "भिड़ता भड़ सूरजमंडल भेदै, भूल भरै रंभ भूझ झला।"[6]
4. "गौ मधुकर कणियागरौ, सूरिज जोति समाय।"[7]

---

1. प्रतापसिंघ-म्होकमसिंघ री वात, रा० सा० सं० भाग 2, पृ० 51, सं० डॉ० पुरुषोत्तम-लाल मेनारिया।
2. माताजी री वचनिका, 82, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
3. महाभारत, उद्योगपर्व, 32, 65
4. गीत जोधा राठौड़ रौ, प्रा० रा० गी०, भाग 7, पृ० 54, सं० कविराव मोहनसिंह।
5. प्रा० रा० गी०, भाग 11, पृ० 25, सं० कविराव मोहनसिंह व सांवळदान अशिया।
6. गजगुणरूपकबंध, पृ० 27, सं० सीताराम लाळस।
7. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री, (107) : सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।

(6) **चड़वड़ी**=निरर्थक ? लड़ने-लड़ाने की ? **चड़भड़णौ**=क्रुद्ध होकर लड़ पड़ना। उदा०—

"तरै तोत करनै रावळ नै लाडक चड़भाड़िया।"[1]

(8) **दादुला**=दादुर ? मेंढक ? भावार्थ में जो ग्रपने ही स्वार्थ की रट लगाते हैं। **कथीर**=जस्ता। **तीनि पख**=मातृकुल, पितृकुल ग्रौर पतिकुल।

(9) **चिंता वसत**=चिंतावश। **ऊणी**=ग्रधूरी, ग्रपूर्ण। **दुचित**=खिन्न, उदास।

(10) **राजलोक**=रानियाँ, राजललनाएँ। **मरण चाळी ग्रर सुकुर सामहउ**=शास्त्रों में शुक्र सम्मुख होने पर प्रस्थान करना वर्जित माना गया है, जैसा कि डॉ० पी० वी० काणे महोदय ने लिखा है—

"शुक्र सम्मुख हो तो प्रस्थान नहीं करना चाहिए। यह विश्वास बहुत प्राचीन है। यह शान्तिपर्व एवं कालिदास में भी उल्लिखित है।"[2]

ग्रागला=पुराने, वृद्ध। **पाहरू**=प्रहरी, रक्षक। उदा०—

"चोर न कीजे **पाहरू**, ब्रहस्पती रा बैण।"[3]

ताटीहर=झोपड़ा, घासफूस या टहनियों ग्रादि से बनाया हुग्रा घर (रूपभेद=त्राटीहर)। उदा०—

"**त्राटीहर** भीति जिहां नावि,
घटइ वास चित्रांम रे।"[4]

जाइळहर=खीचियों का पूर्व संस्थान भदाणा ग्रौर जायल में था। ग्रतः जाइल के खीचियों का वंशज=ग्रचलदास।

(11) **भीतिहर**=भित्तिगृह : दुर्ग; गढ़। उदा०—

"ग्रागे खेड़ो थो, जीठै **भेतहर**, बाजार सखरौ थौ।"[5]

पछौपा=पृष्ठ-रक्षा, पृष्ठरक्षक। सबके मरने के पीछे दायित्व-निर्वाह करने वाला उत्तराधिकारी। **बाहिरउ**=विना।

---

1. नैणसी री ख्यात, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 4 : पृष्ठ 305; काणे।
3. बांकीदास-ग्रन्थावली।
4. नलदवदंतीरास।
5. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, पृ० 345, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।

(12) **हउं**=मैं। **गजघटा**=गजसेना का घेरा, व्यूह। **फूटै**=टूटै। **परीछायउ**=समझाने से, उदा०—

"मद पांणी, कांमी, लंपट, अति लोभी वर वीर।[1]
परचाया परचै नहीं, परत न उपजै धीर॥"

सबूरी=धीरज, संतोष।

(14) **हेता**=स्नेहपूर्ण प्रबोधन। **सुकण**=उत्तम धान्य कण।

(15) **तूं हइ**=तेरे। **मिस**=बहाना। **गळग्रह**=गले में बँधा बोझ, भावार्थ में दुर्ग को शत्रु से मुक्त करा पुन: उस पर अधिकार करने का गुरुतर दायित्व।

(16) **करणाचार**=करणीय कर्त्तव्य विषयक कथन। **पतीनौ**=विश्वास करना, सहमत होना (पतीजणौ ?)। **अंकमाळ**=स्नेहालिंगन, गले लगाना। **प्रतापिज्यउ**=प्रतापी होना, प्रभुत्वशाली होना (आशीर्वचन)।

विशेष—

'ताटीहर' साधारण तृणगृह एवं 'भीतिहर' (भित्तिगृह) सुदृढ़ दुर्ग का वाचक है। यहाँ कवि का आशय यह है कि भींत ही भवन के भार को झेल सकती है; घास-फूस की टाटी नहीं। उसी भाँति, दुर्ग के पुनरुद्धार का दायित्व भी सबल व योग्य उत्तराधिकारी ही वहन कर सकता है। मिलाइए—

"भीति सदाइ झालइ भार, त्राटी बळि नइ थाइ छार।"[2]

अचलदास का पाल्हणसी को सुल्तान से अपने बैर का बदला लेने हेतु प्रबोधन देना राजपूती परम्परा और वीरोचित आदर्श के सर्वथा अनुरूप है। इस सम्बन्ध में कर्नल टॉड का कथन द्रष्टव्य है—

"In these principalities the influence of revenge is universal. Not to prosecute a feud is tantamount to an acknowledgement of self-degradation. ....To sheathe the

---

1. राजा भोज री पनरवीं विद्या री वात, व्यास भवानीदास कृत, पृ० 8, हस्तप्रति पं० कृपाशंकरजी तिवारी के सौजन्य से।
2. गोरा-बादिल-चरित्र, पृ० 38 कवि हेमरतन, सं० मुनि जिनविजयजी।

sword till 'a feud is balanced' (their own idiomatic expression) would be a blot never to be effaced from the escutcheon."[1]

23. दूहा

पाल्हणसी पुहविहि रह्यउ, अनि संमह्या सरग्गि ।
तिणि वेळा हीया भरी, राइ-राइ रोवण लग्गि ।।

व्याख्या—

पाल्हणसी (अचलदासोत) [पीछे के दायित्व-निर्वाह हेतु] पृथ्वी पर बचा रहा तथा शेष अन्य स्वर्ग के लिए सन्नद्ध हुए । उस समय (पाल्हणसी के दुर्ग से विदा होते समय) भाव-विह्वल हो सब राज-परिवार रोने लगा ।

शब्दार्थ—

पुहविह=पृथ्वी पर । **अनि**=अन्य । **संमह्या**=सन्नद्धया तैयार हुए । **हीया-भरी**=हृदय भर आने से ।

24. वात

पाल्हणसी ऊठतइ ही हसत्यां का गजभार अवहर्‌या । पाखर्‌या था, ते ठेल्ह पाड़्या । अेकि मार्‌या, अेकि मोड़्या, जाणि क जड़्या किंवाड़ ऊघड़्या ।।

व्याख्या—

पाल्हणसी ने उठते ही [दुर्ग के बाहर घेरा डाले पड़ी शत्रु की] गजसेना के विशाल हाथियों का दलन किया । वे पाखरों (लोहे की झूलों) से मंडित थे, सो उन्हें ठेल कर गिरा दिया । एक को मारा तो एक को मरोड़ डाला (और यों उस विकट व्यूह को चीरकर अपने जाने का मार्ग बना लिया) मानों दृढ़ता से जुड़े हुए विशाल कपाट सहसा खुल पड़े हों ।

(अर्थात् गढ़ से सटी उस गजसेना ने वज्र-कपाट के समान मार्गावरोध कर रखा था । अतुल बली पाल्हणसी ने उस भीषण गज-व्यूह को तोड़कर अपने निष्क्रमण का मार्ग प्रशस्त कर लिया) ।

---

1. Annals & Antiquities Of Rajasthan : Vol. I, Page 147, M. N. Pub., New Delhi.

शब्दार्थ—

गजभार = गजसेना, गजसमूह। उदा.—

1. "खळहळता डांणां खंभूठाणां, गोड करंता **गजभारं**"[1]

2. "जीपणो अरि थाट जुधि जुधि, भांजणो **गजभार**।"[2]

पाखर्‌या = कवचित। युद्ध में हाथी-घोड़ों की रक्षार्थ पहनाए जाने वाले लौह-कवच को 'पाखर' कहते हैं। इरविन ने 'पाखर' का अर्थ "Armour of Elephants" किया है[3] परन्तु यह घोड़ों के रक्षा-कवच का भी वाचक है। **जड़्या** = बंद। **ऊघड़्या** = खुल गए।

25. कवित्त

पाल्हउ कवरण पड़इ, कउरण जम जातइ वारइ ?
कवरण वज्र झेलियइ, कउरण सिरि वीज सहारइ ?
अंबरि किरिण आंगिये, आभ कुरण ऊंडळ आरणइ ?
उवहि कवरण ऊलंघइ, कउरण जळ-संख्या जारणइ ?
अेतरी वात कुरण आंगमइ, कउरण जम्म सरिसउ जुड़इ ?
वालाउत बड दळ विकळ, कउरण आरिग बळि ऊहड़इ ?

व्याख्या—

कवि इस छंद में पाल्हरणसी (बालावत) की वीरता का गर्णन करते हुए कहता है कि—

ऐसा कौन है, जो [दुर्ग से बाहर जाते हुए] पाल्हरणसी को पकड़े? कौन है, जो जाते हुए यमराज को रोके? (उसका मार्ग अवरुद्ध करे?)। कौन है, जो वज्र को झेले? कौन है, जो अपने सिर पर गिरी गाज को सह ले? आकाश को कौन झेल सकता है? कौन है, जो उसे (आकाश को) अपनी भुजाओं पर उठा ले अथवा अपने बाहुपाश में भरले? समुद्र को कौन लाँघ सकता है? कौन है, जो उसके अपरिमित जल-भंडार की थाह ले सके? इतने कार्य कर सकने की सामर्थ्य किसमें है? कौन है, जो यमराज से भिड़ सके? किसकी शक्ति है, जो शत्रुदल को चल-विचल करने वाले ऐसे महाशूरवीर बाला के पुत्र पाल्हरणसी को आकर उसे बलपूर्वक रोके?

---

1. गजगुणरूपकबंध, पृ० 67, सं० सीताराम लालस।
2. गीत राठौड़ बाघा रौ, प्रा० रा० गीत, भाग 10, पृ० 128, सं० कविराव मोहनसिंह, सांवलदान आशिया।
3. The Army Of The Indian Moghals; Page 176; William Irvine.

शब्दार्थ—

पड़इ=पकड़े। **वारइ**=रोके। **वीज**=गाज। **सहारइ**=सहन करे। **आंगिये**=अंगीकृत करे, झेले। **ऊँडळ**=भुजाओं, भुजदंडों या बाहुपाश। उदा०—

1. "समत्था इसा **ऊँडळाँ** आभ साहै।"[1]
2. "ग्रहै आभ **ऊडळां** रहै भीड़ियां बगत्तर।"[2]

यह शृंगार-संदर्भ में भी भुजाओं या बाहों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"सज्जण केरा अंग सहु, लळवळ देवलताह।[3]
तोनूं लेनै ऊँडळइ, सहुलौ होइ रहतांह॥"

अर्थात् प्रियतमा कहती है कि हे साजन! तुझे अपनी बाँहों में भरकर मैं सुखी और तृप्त होजाती थी!

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका में 'कुंडल' पाठ है, जो भ्रान्त है। मिलाओ—

"आभ भुजा कुण ओढमै, कुण सायर जारै।"[4]

उवहि=उदधि, समुद्र। **जळ संख्या**=जल का परिमाण। **आंगमइ**=झेलना, स्वीकार करना। **सरिसउ**=से। **जुड़इ**=भिड़े। **ऊहड़इ**=रोके।

विशेष—

यहाँ पाल्हणसी के लिए 'बालाउत' (बाला का पुत्र) के प्रयोग से लगता है कि यह पाल्हणसी, अचलदास के पुत्र पाल्हणसी से भिन्न योद्धा है, जिसका वचनिका के छंद संख्या 22(3) में भी उल्लेख हुआ है तथा जो सम्भवतः अचलदास के पुत्र पाल्हणसी की रक्षार्थ उसके साथ ही दुर्ग का घेरा तोड़ कर निकला था।

तुलनीय—

"अगसत विण आंगमै, कवण सामंद्र पयाळै?[5]
अणसंका विण हणू, कवण लंका परजाळै?
कवण अखैवड़ विगर, प्रलै सागर सिर सोभै?

---

1. वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री (47), सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।
2. राजरूपक, पृ० 98, सं० पं० रामकर्ण।
3. प्रेम-पत्री रा दूहा : परम्परा, पृ० 60, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी।
4. वीरवांण, पृ० 46, संपादिका—रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत।
5. राजरूपक, पृ० 53-54, सं० पं० रामकर्ण।

कवण विनां सुखदेव, देव माया नह लोभै ?
सिसमार चक्र ध्रुव विण सु तो, भजै न कुण रिसी गण भ्रमण ?
अंगमै साह अवरंग सूं, कमधाँ विण चालौ कवण ?"

पृथ्वीराजरासो में भी ठीक इसी भाव का वर्णन हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि वीरों के प्रशस्ति-वर्णन की यह शैली कवियों की प्रिय रही है—

"को अंगमै सु जम्म, क्रम्म को करै संघाटन ।[1]
को मुर्वी कर धरै, मेर महि कौन उपारन ।।
को दरिया दुस्तरै, नभ्भ ढंकै रवि चाहै ।
को सुन्यहि संग्रहै, कौन उत्तरि अवगाहै ।।
को करै पंग सों जंग जुरि, दन्नु देवतन नाग नर ।
कलिकाल कलन कंकह कहर, उदधि जानि उलटिय गहर ।।"

26. वात

पाल्हणसी नीसर्यउ, निरवळउ । नीसाणि घाव वळ्यउ ।
पाछिली चिंता भागी । आगिली चिंता लागी ।।

व्याख्या—

पाल्हणसी अकेला ही निकल गया । नगाड़े पर चोट हुई । पिछली चिन्ता दूर हुई । आगे की चिन्ता लगी ।

शब्दार्थ —

निरवळउ=अकेला, यथा प्रयोग में–'न्यारो-निरवाळो ।' **नीसाणि**= नगाड़ा ।

पाठान्तर

[श्री दीनानाथ खत्री द्वारा सम्पादित वचनिका में निर्देशित 'बी' प्रति में वात 25 के बाद दूहा नं० 22 है तथा उसके बाद एक और दूहा है, जो किंचित् रूपान्तर के साथ सवाई मानसिंह संग्रहालय जयपुर की प्रति 'क' (संवत् 1748, ई० सन् 1691) तथा 'ख' (अनुमानित लिपिकाल 18वीं शताब्दी) में भी मिलता है । 'क' प्रति में वात 25 के अन्तर्गत इस दूहे से पहले वात 21(9) का कुछ अतिरिक्ति गद्यांश भी समाविष्ट है । सवाई मानसिंह संग्रहालय की

---

1. पृथ्वीराजरासो, तृतीय भाग, पृ० 412, सं० कविराव मोहनसिंह ।

'क' व 'ख' प्रतियों में उपलब्ध उक्त दूहे का रूप श्री खत्री द्वारा निर्देशित 'बी' प्रति में उपलब्ध रूप की अपेक्षा कुछ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है। 'क' प्रति में उपलब्ध वह दूहा है—

रावतीयां रत ऊतरो, सिर हूंता लग पाव।
भारथि भोजाणी भणौ, पाणी पुणिग म जाव।।

तथा 'ख' प्रति में—

रावतियाँ रित उतरउ, सिर हूंता लग पाव।
भारथि जोजाणी (भोजाणी ?) भणौ, पांणी पुणग म जाव।।]

विशेष—

पूर्व छन्द में पाल्हणसी बालावत के व्यूह तोड़ कर निकलने का वर्णन हुआ है, जबकि उपर्युक्त छन्द में कदाचित् पाल्हणसी अचलदासोत से आशय है, जो अचलदास के पुत्रों में अकेला ही दुर्ग के घेरे से बाहर निकला था। इससे स्पष्ट है कि वचनिका में पाल्हणसी नामधारी दो भिन्न व्यक्तियों का उल्लेख हुआ है। छन्द संख्या 15(2), 21(3) और 24 में उल्लिखित पाल्हणसी बालावत (बाला का पुत्र) है, जबकि वंश-रक्षार्थ दुर्ग से निष्क्रमण करने वाला पाल्हणसी अचलदासोत है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजकुमार पाल्हणसी की सुरक्षार्थ उसके पृष्ठरक्षक के रूप में वीर पाल्हणसी बालावत को भी उससे साथ भेजा गया हो, जिसने सघन गज-व्यूह को भेद कर उसके निष्क्रमण का मार्ग प्रशस्त किया हो।

26. बडा दूहा

चींतवियउ चहुवाणि, जउहर की मांडउ जुगति।
हव हुइस्यां हरि-पुर दिसा, वेगावेगि विहाणि।। 1।।

व्याख्या—

[पाल्हणसी के सुरक्षित निकल जाने पर] चौहान (अचलदास) ने [आगे की स्थिति पर] विचार कर कहा—अब जौहर की तैयारी करो। अब प्रातःकाल होने के साथ ही जल्दी से जल्दी बैकुण्ठ के लिए विदा होंगे।

शब्दार्थ—

मांडउ=करो। **जुगति**=तैयारी, उपक्रम। **हव**=अब। **हुइस्यां**=होंगे (विदा)। **हरि-पुर**=बैकुण्ठ। श्री खत्रीजी द्वारा सम्पादित वचनिका में

'हर-पुर' पाठ है, जिसके अनुसार अर्थ होगा 'शिवलोक'। परन्तु काव्य-परम्परा वीरगति-प्राप्त योद्धा के प्राय: 'हरिपुर' अर्थात् विष्णुधाम या बैकुण्ठ जाने का ही उल्लेख करती है। यथा—

1. "ब्रह्मा विसन महेस इन्द्र सुर साथि आया। ....पौहप वरिखा करि वधाया। विवांणै पाव धारौ। वैकुंठ पधारो।"[1]

सवाई मानसिंह संग्रहालय की दोनों प्रतियों तथा राजस्थान शोध संस्थान की प्रति में भी 'हरिपुर' पाठ है।

विहाणि=प्रात:काल; (सं० विहान)।

विशेष—

जौहर शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतभेद है। कुछ के अनुसार यह सं० 'यमगृह' (प्रा० जमहर) से व्युत्पन्न है,[2] जबकि अन्य मतानुसार इसका मूल रूप 'जतुगृह' (लाख का बना रासायनिक भवन) है।[3] पाण्डवों के दहन के लिए कौरवों ने ऐसा ही लाक्षागृह बनवाया था। इसकी व्युत्पत्ति-प्रक्रिया सम्भवत: यों रही होगी--जतुगृह>जउघर>जौहर। लाक्षागृह में पाण्डवों के सामूहिक दहन के कारण सम्भवत: जौहर शब्द कालान्तर में सामूहिक दहन का पर्याय बन गया हो एवं चूंकि सामूहिक दहन स्वेच्छया स्त्रियाँ ही करती आई हैं—अत: यह उनके सामूहिक आत्मदहन के अर्थ में रूढ़ होगया हो।

इस सम्वन्ध में विदित हो कि राजपूतों में तो जौहर की प्रथा थी ही, विषम परिस्थितियों में मुस्लिम महिलाओं द्वारा भी जौहर किए जाने के उदाहरण इतिहास में मिलते हैं। उदाहरणत: तैमूर द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने पर मेरठ के दुर्गाध्यक्ष इलियासखाँ ने जौहर का अनुष्ठान किया था।[4] इसी भाँति, तैमूर द्वारा भटनेर (वर्तमान हनुमानगढ़) पर

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंहजी-महेसदासोत री; पृ० 362; सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।
2. सदयवत्स वीर प्रबंध, टिप्पणी, पृ० 194; सं० डॉ० मंजुलाल मजमुदार।
3. जैनविद्या : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन; पृ० 59; जैनविद्या-संस्थान; श्री महावीरजी; राजस्थान।
4. Twilight Of The Sultanate; Page 43; Kishori Raman Lal.

आक्रमण किए जाने पर वहाँ की मुस्लिम महिलाओं ने अपने को जौहर की ज्वाला के समर्पित कर दिया था।[1]

दिखि आजूणउ दीह, मूझ तणउ, खीची मुणइ।
सुणिसी डूंगरसी सदा, सुणिसी मोकळसीह ॥ 2 ॥

व्याख्या—

खीची (अचलदास) कहता है—मेरे वीर-धर्म-पालन का यह आज का दिन स्मरण कर डूंगरसी और मोकलसीह बारम्बार इसकी चर्चा सुनेंगे (सगर्व इसका बखान करेंगे)।

शब्दार्थ—

दिखि=देखकर, स्मरण कर। **आजूणउ**=आज का। **मुणइ**=कहता है।

राउळ गइपउ राउ, वळि वीरजी वखाणिसी।
मइं कीधउ जेहडउ मरण, जंपइ भोजा-जाउ ॥ 3 ॥

व्याख्या—

भोज के पुत्र (अचलदास) ने कहा मैंने आज जैसे [वीरोचित] मरण का वरण किया है, [उसकी चर्चा सुन] रावल गेपाराव और वीरजी भी उसका बखान करेंगे (मुक्तकंठ प्रशंसा करेंगे)।

शब्दार्थ—

वळि=भी। **वखाणिसी**=बखान करेंगे। **जेहड़उ**=जैसा। **जंपइ**=कहता है, कहा (सं० जल्प)। **जाउ**=पुत्र (सं० जातः राज० जाव)। सुपुत्र के लिए 'सुजाव' शब्द डिंगल में अति प्रचलित है—

"सूर सुजाव हठौ ससमाथां, हाथी सहत गिळै खळ हाथां।"[2]

हाडा खीची हेक, सोळिंकी सूरिज-वंसी।
सुणिस्यइ त्रित माहरउ सदा, अवरे राइ अनेक ॥ 4 ॥

---

1. Twilight Of The Sultanate; Page 269; K. R. Lal.
2. राजरूपक, पृ० 730, सं० पं० रामकर्ण।

व्याख्या—

हाडा और खीची, जो एक ही (चौहान वंश के) हैं तथा सोलंकी व सूर्यवंशी तथा अनेकानेक अन्य राजागण भी मेरे इस [वीचोचित] मरण की बात सुनेंगे।

शब्दार्थ—

हेक=एक; हाडा और खीची—एक ही मूल चौहान वंश की शाखाएँ हैं। **म्रित**=मृत्यु।

[सवाई मानसिंह संग्रहालय की 'क' प्रति में इन दोहों के क्रम में पर्याप्त अन्तर है। उपर्युक्त दोहा उक्त प्रति में 15वें नम्बर पर है। इससे आगे वाला दूहा स० मा० सिं० सं० की 'क' प्रति तथा रा० शोध संस्थान की प्रति दोनों में नहीं है]

सदा भाइ सजगीस, कहि-कहि अचळेसर कहइ।
वड पह मूझ वखाणिस्यै, सुणियां वंस छतीस ॥ 5 ॥

व्याख्या—

राजा अचलदास पुनः कहता है—जिन्हें युद्ध सदा ही प्रिय है (अर्थात् जो रण-रसिक शूरवीर हैं)—ऐसे सभी छत्तीस वंशीय क्षत्रिय [मेरे द्वारा इस वीरोचित मृत्यु का आलिंगन करने की बात सुन] मुझे एक 'बड़ा राजा' या 'शूर-शिरोमणि' कहकर मेरा अभिनन्दन करेंगे।

अथवा

छत्तीस वंशीय क्षत्रियों में बड़े-बड़े राजा या उद्भट शूरवीर मेरी प्रशंसा करेंगे।

शब्दार्थ—

सदा=नित्य। **भाइ**=भाता है, प्रिय है। **सजगीस**=1. युद्ध। उदा०—

"सीस धरणि चौ गळै माळ साझै,
सिंघ तणौ विढियो **सजगीस**।"[1]

अथवा—2. युद्धेच्छु या जयाभिलाषी शूरवीर (जिगीषु)।

---

1. जसवंत सोनगरा रौ गीत।

कहि-कहि=पुन: कहता है । **वड**=बड़ा, श्रेष्ठ । **पह**=(सं० प्रभु]
1. राजा, 2. योद्धा, शूरवीर । उदा०—
"कारण कटक न कीध, सखरा चाहीजै **सुपह** ।"[1]
मूझ=मेरा । **सुणियाँ**=सुनकर । **वंस छतीस**=छत्तीस वंशीय क्षत्रिय ।

पह वेढ्यो परवारि, परि जउहर परिजाळतउ ।
चाल्यउ ग्रचलेसर चढ्यौ, विरतउ घर घर-बारि ।। 6 ।।

व्याख्या—

ग्रपने परिवार के जौहर की ज्वाला में जलने की तैयारी के साथ ही राजा [ग्रचलदास] ने [ग्रपने जीवन का निर्णायक] युद्ध किया । तदर्थं ग्रपने राज्य ग्रौर घर-बार से सर्वथा विरक्त हो (चिन्तामुक्त हो) तथा ग्रश्वारूढ़ हो वह जौहर-स्थल की ग्रोर चल पड़ा ।

शब्दार्थ—

पह=राजा (ग्रचलदास) । **वेढ्यो**=लड़ा, युद्ध किया । **परि**=में (ग्रव्यय) । **परिजाळतउ**=जलने की तैयारी करते हुए । **विरतउ**=विरक्त होकर । **घर**=राज्य, संस्थान ।

राउ रणथंभ तणाह, जउहर जउहर जेहवा ।
कीया भोजा कइ कंवरि, वधता वीस गुणाह ।। 7 ।।

व्याख्या—

[कवि-वचन—] रणथम्भोर के राव (हमीर) के जौहर तथा ग्रौर भी ग्रनेकानेक राजाग्रों के जितने जौहर हुए हैं—भोज के कुँवर (पुत्र) ग्रचलदास ने उन सबसे बीस गुना बढ़कर जौहर कर दिखाया ।

शब्दार्थ—

तणाह=के । **जेहवा**=जितने, जैसे । **वधता**=बढ़कर ।

तइ खत्र खीची खोड़ि, नाचणि लग लागी नहीं ।
उत्तिम, मध्यम, नेकठा, कीधा जउहर कोड़ि ।। 8 ।।

व्याख्या—

उस क्षत्रिय-वीर खीची ग्रचलदास के यहाँ हुए जौहर में [ग्रंत:पुर की ललनाग्रों की तो बात ही क्या] उसकी नर्तकियों तक ने भी कोई लांछन नहीं

---

1. राजिया रा सोरठा ।

लगने दिया (अर्थात् उन्होंने भी अंतःपुर की मर्यादा के अनुरूप जौहर-व्रत का पालन किया)। यों तो उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—सभी प्रकार के करोड़ों जौहर किए गए [परन्तु राजा अचलदास के घर हुआ जौहर तो अपनी निष्कलुषता के कारण सर्वथा उत्कृष्ट और अपूर्व था]।

शब्दार्थ—

तइ=उस। **खत्र**=क्षत्रिय। **खोड़ि**=दोष, त्रुटि। **नाचणि**=नर्तकी।

उदा०—

"भरिहि भाई नाचणि पउ धरइ, ताल विनोद कला अणुसरइ।"[1]

इस सम्बन्ध में, स्मरणीय है कि दुर्गों में राजाओं के मनोरंजनार्थ नर्तकियाँ व पात्रादि भी रहा करती थीं। हम्मीरायण में 'धारु' (धारादेवी) नामक प्रसिद्ध नृत्याङ्गना का उल्लेख हुआ है। 'पात्र' (राज० 'पातर') का दर्जा नर्तकी से ऊँचा होता था। कारण, नृत्यशास्त्र में अभ्यासादि से निष्णात होने पर ही नर्तकी को 'पात्र' पद प्राप्त होता था, जैसाकि 'पात्र' की परिभाषा से ज्ञापित है—'समस्ताभ्यास संयुक्ता, नर्तकी पात्र मुच्यते।'[2]

लग=तक या तनिक। **नेकठा**=निकृष्ट, अर्थात् निम्न कोटि के।

विशेष—

इस दोहे के द्वितीय चरण में एक प्रति में 'लग लांछण लागै नहीं' पाठ है, जिसके अनुसार अर्थ होगा 'अचलदास के यहाँ हुए जौहर में कोई त्रुटि न होने से तनिक भी लांछन नहीं लगा'। परन्तु वचनिका की प्राचीनतम प्रति सहित अन्य प्रतियों में भी 'नाचणि' या 'नचणि' पाठ है, जो प्रामाणिक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक सन्दर्भ की दृष्टि से भी अतीव महत्वपूर्ण है। अतः हमने यही स्वीकार किया है।

विदित हो कि इस प्रकार के जौहर का आयोजन किए जाने पर अंतःपुर की ललनाएँ तो निरपवाद रूप से जलकर भस्मशेष हो जाती थी किन्तु कभी-कभी दासियाँ, नर्तकियाँ आदि, जो जौहर में नहीं जलती थीं, शत्रु के हाथों पड़ जाती थी। ऐसा जौहर आदर्श जौहर नहीं कहला सकता था।

---

1. प्रद्युम्न-चरित, पृ० 7, सं० पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
2. संगीत-सारोद्धार; सुधाकलश-विरचित।

उदाहरणत: गागरोण के ही दूसरे साके में, जो महमूद खिल्जी द्वारा गागरोण पर फिर से अधिकार करने हेतु पाल्हणसी के समय में हुआ था—पुन: जौहर का अनुष्ठान किया गया था। इस साके में यद्यपि अंत:पुर की ललनाएँ तो अनलकुंड में जलकर भस्म होगई थीं, तथापि अनेक रूपवती दासियाँ और नर्तकियाँ, जो जौहर में नहीं जली थीं, शत्रु के हाथों पड़ गईं, जिसका समसामयिक फारसी इतिहासकार शिहाब हकीम ने मआसिर-इ-महमूदशाही में सटीक वर्णन किया है। उसके हवाले से उक्त जौहर के तत्काल बाद के दृश्य का उल्लेख करते हुए जनाब ए० एच० निजामी लिखते हैं—

"There was neither a moving soul nor a person to bar their path. They immediately indulged in plunder and loot. Those who could not run away were made prisoners. Some beautiful slave-girls and free-girls, purified gold and raw silver, furnitures, houses and cattle fell into the hands of warriors beyond estimate."[1]

इस सन्दर्भ में 'नाचणि' (नर्तकी) पाठ की अर्थ-संगति तथा उस तक पर कोई लांछन न लगने का मर्म हम समझ सकते हैं। फलत: वचनिका का कवि यदि अचलदास द्वारा किए गए जौहर को एक उत्तम एवं आदर्श जौहर मानता हो, तो अयुक्त नहीं है। इसीलिए वात 21(9) में वह अपने चरित्र-नायक स्वयं अचलदास के मुख से, जौहर हेतु एकत्र अंत:पुर की ललनाओं को पहले हुए जौहरों का स्मरण कराते हुए, कहलवाता है कि जौहर तो पहले और भी कई हुए हैं परन्तु उनमें कोई त्रुटि या कमी रह गई हो तो तुम आज उसे पूरी कर दिखाओ। ये कथन अपने में तद्‌युगीन परिस्थितियों का जो सत्य छिपाए हैं, उसे हृदयंगम किए बिना हम इनका सम्यक् महत्वांकन नहीं कर सकते।

---

1. **Gagron Fort : The Second Saka; A Research-Paper By A. H. Nizami.**

[इस दोहे के आगे एक दोहा श्री खत्री द्वारा सम्पादित वचनिका में निर्देशित 'बी' प्रति, सवाई मानसिंह संग्रहालय की 'ख' प्रति एवं राज० शो० संस्थान जोधपुर से प्राप्त प्रति में भी किंचित् रूपान्तर के साथ मिलता है। हम नीचे इसका सम्पादित रूप दे रहे हैं—

सूराँ गुरु सत सीम, परि जमहर परजाळतै।
अचलेसुरि गढ़ आपरौ, सभीयो सीसा जेम ॥]

व्यामोह्यौ वर वीर, घरि-घरि सत देखे घणउ।
आयउ राइहर आपरइ, समहर अचळ सधीर ॥ 9 ॥

व्याख्या—

घर-घर में सती-धर्म-पालन की उत्कट उमंग देखकर वीर श्रेष्ठ (अचलदास) हर्ष-मुग्ध होगया। समर में अविचल और धीर राजा अचलदास [अपने अन्त:पुर की ललनाओं का जौहर देखने हेतु] स्वयं भी वहाँ आगया।

शब्दार्थ—

व्यामोह्यौ=विमोहित, हर्ष-मुग्ध। **सत**=सती-धर्म-पालन। **राइहर**= राजा। उदा०—

अनि रायहर छणै ओछंडिया[1]
खांनजिहां सिर लोह सुख।

समहर=समर, युद्ध (में)। **अचल**=अचलदास अथवा अविचल।

मोटउ सत महि माहि, अचळेसर आयइ हुवइ।
सींघणहरि हुइ सांघुळी, वहुवां ति किरि विवाहि ॥ 10 ॥

व्याख्या—

राजा अचलदास के आ जाने पर संसार के उस महान् सती-धर्म (जौहर) का अनुष्ठान हुआ। उस समय सींघण के वंशजों की वे कुलवधुएँ वहाँ जौहर करने हेतु एकत्र हुई ऐसी उल्लसित दिखाई दे रही थीं, मानों वे किसी विवाह-समारोह में सम्मिलित होने हेतु वहाँ आई हों।

1. ईसरदास साँदू।

शब्दार्थ—

मोटउ = बड़ा, महान् । **सत** = सती-धर्म-पालन का अनुष्ठान् । **सींघरणहरि**=सींघरण के वंशजों की । **सांघुळी**=इकट्ठी । **किरि**=मानो ।

वेळा तिरिण विसवागि, धड़हड़ती धूंवा पखइ ।
तरणै अंतेवर ऊठिसी, अंगहूं जारणइ आगि ।। 11 ।।

व्याख्या—

[चिता-प्रवेश की] उस दारुण दुःख-घड़ी में जब वे (सतियाँ) उसमें निश्शंक प्रवेश करेंगी तो उन अन्तःपुर की ललनाओं के दिव्य तेज से निर्धूम अग्नि-ज्वाला मानो स्वतः ही उनके अंगों से फूट पड़ेगी ।

शब्दार्थ—

विसवागि=(सं० विषवाद) दुःख, शोक । राजस्थानी में 'द' की ध्वनि कभी-कभी 'ग' में परिवर्तित होजाती है । यथा **पद>पग** । यहाँ प्रयुक्त 'विसवागि', 'विसवाद' का ही रूपभेद है, जो दुःख का वाचक है । उदा०—

"इस्ट वियोग पडचां किया रोदन **विसवाद** ।"[1]

राठौड़ रतन-महेसदासोत री वचनिका में भी कवि सती होते समय की दुःख-घड़ी को 'विष की लहर' कहकर ज्ञापित करता है—

घणूँ कहर वीती घड़ी, **जहर लहर** विधि जाम ।[2]

धड़हड़ती=धड़धड़ाती हुई, निश्शंक । **धूंवा पखइ**=निर्धूम (अग्नि) । **तरणै**=के (विभक्ति) । **अंतेवर**=(सं० अंतःपुरिका) अन्तःपुर की ललनाएँ, राजांगनाएँ । 'अन्तःपुर' एवं 'अन्तःपुरिका', दो अलग-अलग शब्द हैं । प्रथम रानियों के निवास-स्थान का तथा द्वितीय स्वयं रानियों का वाचक है । साधु सुन्दरगणी-विरचित उक्ति-रत्नाकर में अनेक देश्य शब्दों की उनके मूल तत्सम रूपों सहित व्युत्पत्ति दी गई है । उसमें 'अन्तेउर' और 'अन्तेउरि'—दोनों शब्द

---

1. समयसुंदर-कृति-कुसुमांजलि,
2. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री, पृ० 391, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर ।

आते हैं,[1] जो क्रमशः अन्तःपुर व 'अन्तःपुरिका' से व्युत्पन्न हैं। परन्तु यहाँ प्रयुक्त 'अंतेवर', 'अंतेवरि' का ही रूपभेद है, जिसका अर्थ है—राजललनाएँ, रानियाँ। प्रस्तावित अर्थ में इसके प्रयोग का उदाहरण—

1. राव रिणमल रो **अन्तेवर** राणी भटियाणी।[2]
2. मोटा राय तणी कूंयरी, परणी पांचसइ **अन्तेउरि**।[3]
3. अचरिज सहु रहियउ **अन्तेवरि**।[4]

ऊठिसी=उठेगी, प्रज्ज्वलित होगी।

विशेष—

लोकविश्वास है कि सती-नारी के दिव्य तेज से अग्नि-ज्वाला उसके अंगों से स्वतः फूट पड़ती है; उसकी चिता को अग्नि देने की आवश्यकता नहीं पड़ती। 'वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासेत री' में भी सती होने के प्रसंग में कविवर खिड़िया जगा ने इसी लोकविश्वास को अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है कि राजा रतनसिंह की रानियों ने 'हरि-हरि-हरि' नाम-स्मरण के साथ चिता में प्रवेश किया और उसके साथ ही चिताग्नि प्रज्ज्वलित करली—

> म्रित मंदिर पैठी मल्हपि, बैठी अंदिर जाइ।[5]
> हरि-हरि-हरि तिणिवार हुइ, **लै सुरमुक्ख लगाइ**॥

इस लोकविश्वास की पुष्टि रासमाला में उल्लिखित सिद्धराज जयसिंह और राणकदेवी के प्रसंग से भी होती है। गुजरात के प्रतापी राजा सिद्धराज जयसिंह से युद्ध कर जब सोरठ का शासक राव खंगार वीरगति को प्राप्त हुआ तो उसकी रानी राणकदेवी ने बढवाण में सती होने का निश्चय किया। राणकदेवी सिद्धराज की मंगेतर थी। अतः सिद्धराज उसे अपनी रानी बनाना चाहता था। परन्तु राणकदेवी ने सिद्धराज के लाख अनुनय-विनय के बावजूद भी उसके प्रणय-प्रस्ताव को ठुकरा दिया तथा बढवाण में भोगावा नदी के तट पर चिता तैयार करवा कर वह उस पर जा आरूढ़ हुई। इस पर सिद्धराज ने

---

1. उक्ति-रत्नाकर, पृ० 9 व 19, सं० मुनि श्री जिनविजयजी।
2. नैणसी-री-ख्यात, भाग 3, पृ० 31, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
3. हम्मीरायण, व्यास भांडा-कृत, पृ० 3, सं० भँवरलाल नाहटा।
4. महादेव-पारवती-री-वेलि, पृ० 50, सं० रावत सारस्वत।
5. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री, पृ० 390, सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।

उसे अपने संकल्प से विरत करने का अन्तिम प्रयास करते हुए उसके पातिव्रत्य की परीक्षा की एक शर्त रखी, जिसका रासमाला में यों उल्लेख हुआ है[1]—

"सिद्धराज ने उसको जीवित रखने का अन्तिम प्रयत्न करते हुए कहा—"यदि तुम सच्ची सती हो तो बिना आग लगाए ही चिता जल उठेगी।" यह सुन कर राणकदेवी घुटने टेक कर बैठ गई और सूर्य की प्रार्थना करने लगी। फिर उठ कर बोली—

विदा नगर बढवाण, भोगावा सरिता बहै।
भोगी राव खंगार, अब भोगै भोगावां नदी॥

'जहाँ भोगावा नदी बहती है, उस बढवाण नगर से अब विदा लेती हूँ। मेरे शरीर का उपभोग या तो राव खंगार ने किया अथवा अब भोगावा नदी करे।'

फिर उस समय इतनी गरम हवा चली कि चिता अपने आप जल उठी। अब राणकदेवी ने कहा—

धन-धन ! ताती वाय, चाली माटी परजळै।
ऊभो पट्टणराय, सोरठणी रो सत लखै॥

मैं धन्य हूँ कि गरम हवा चलने लग गई और इससे मिट्टी (रेत अथवा मृत शरीर) प्रज्ज्वलित होगई। पट्टण का राजा खड़ा-खड़ा सोरठणी के सतीत्व की परीक्षा ले रहा है।"

आपण सुवर अजीत, मांहे जमहर मल्हपती।
कुळ-वहुवां दीसइ कंवल, ऊगां किरि आदीत॥ 12॥

व्याख्या—

अपने अजेय शूरवीर पतियों का स्मरण कर या उनके देखते, अनलकुण्ड की ओर मंद-मस्त गति से अग्रसर होती हुई उन कुल-वधुओं का मुखकमल अलौकिक दीप्ति से ऐसा दमक रहा था मानों सूर्य का उदय हुआ हो ! अथवा सतीत्व के दिव्य तेज से मंडित उनका मुखमण्डल वैसा ही शोभायमान होरहा था, जैसे सूर्योदय होने पर कमल प्रफुल्लित हो उठता है।

---

1. रासमाला; प्रथम भाग (उत्तरार्द्ध), पृ० 87-88, अनु० पं० गोपालनारायणजी बहुरा।

शब्दार्थ—

आपण=अपने । **सुवर**=श्रेष्ठ वर, पति । उदा०—
सारंग नयण, उमया सुवर, सीस गंग धारंग सिव ।[1]

अजीत=अजेय । **जमहर**=जौहर का अनल-कुण्ड । **मल्हपती**=1. कूदती, छलांग लगाती । 2. मंद-मस्त गति से लीलापूर्वक चलती, जो सतियों के आंतरिक मनोल्लास का ज्ञापक है । 'मल्हपती' शब्द द्वयर्थक है । यहाँ उक्त दोनों ही अर्थ घटित किए जा सकते हैं परन्तु प्रसंगानुसार द्वितीय अधिक संगत है ।

ते चाली तिणि ठाइ, आइसि अचळेसर तणइ ।
ससि-वयणी सिव-सिव करइ, पइसइ पावक माइ ।। 13 ।।

व्याख्या—

इस प्रकार राजा अचलदास की वे कुलवधुएँ चलकर उस स्थान तक आ पहुँचीं [जहाँ अनल-कुण्ड धधक रहा था] । चन्द्रमा से मनोज्ञ मुख वाली वे राजललनाएँ मुख से 'शिव-शिव' कहती हुई अग्नि में प्रवेश कर रही थीं ।

शब्दार्थ—

ते=वे (कुलवधुएँ) । **तणइ**=की । **ससिवयणी**=शशिवदनी, चन्द्रमा से सुन्दर मुख वाली । **पइसइ**=प्रवेश कर रही थीं । **पावक**=अग्नि ।

छूटि न जायइ छेह, माहे जउहर मल्हपत्यइ ।
आइ-आइ चडइ उतावळी, पटराणी पागेह ।। 14 ।।

व्याख्या—

[इस आशंका से कि अपने पति के साथ विवाह के अवसर पर जोड़ा गया] गंठजोड़ा (अंचल-बंध) कहीं यहीं न छूट जाए, जौहर में जलने को उद्यत हुई पटरानी (पुष्पावती ?) सबसे पहले आकर व्यग्रता से उस चितागृह पर चढ़ गई ।

शब्दार्थ—

छेह=गंठजोड़ा, जो पाणिग्रहण के अवसर पर वर-वधू के बाँधा जाता है । उदा०—

---

1. सूरजप्रकाश, भाग 1, (6) पृ० 4, सं० सीताराम लालस ।

1. धीर धरके ऊठियो, छोड़े दुलहण छेह ।[1]
2. हथळेवौ जुड़ायो छै, छेहड़ौ बांधियौ ।[2]

मल्हपत्यइ=सवेग चलती । उदा०—

खंड दल खंड पती, माल्हीयौ मयंद गती ।[3]

'मल्हपती' का अर्थ, जैसाकि कह आए हैं, मस्ती में झूमती चलती भी होता है परन्तु प्रसंगानुसार (पंक्ति में प्रयुक्त 'उतावळी' क्रिया तथा स्वर्ग में पति से मिलने में एक पल का भी विलम्ब न होने देने के संदर्भ में) हमें यहाँ प्रस्तावित अर्थ ही उद्दिष्ट प्रतीत होता है ।

नोट—श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका सहित कुछ प्रतियों में इसके स्थान पर 'मेछल' व मेछलै' पाठ है परन्तु हमने स० मा० सिं० सं० की सन् 1691 की प्रति में उपलब्ध 'मल्हपत्यइ' पाठ स्वीकार किया है, जो संगत व प्रामाणिक प्रतीत होता है ।

उतावळी=शीघ्रता से, व्यग्रता से । **पागेह**=पावक-गेह ? या पावक-गृह ? चितागृह ? वचनिका की संवत् 1631 की प्रति सहित प्रायः सभी प्रतियों में 'पागेह' पाठ है । केवल स० मा० सिं० सं० की 'क' प्रति में 'पावेह' पाठ है । परन्तु 'आगेहि' पाठ किसी में भी नहीं है, जैसाकि श्री खत्रीजी ने स्वीकार किया है । अतः हमारा अनुमान है कि यह कदाचित् चितागृह का वाचक है । यों 'पागेह' का 'पैदल ही' भी किया जा सकता है परन्तु अर्थसौकर्य की दृष्टि से यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता ।

विशेष—

मध्ययुगीन राजपूत वीरांगना सती होकर स्वर्ग में अपना 'सतीपुर' या 'अमरपुरी' बसाने तथा वहाँ अपने दिवंगत पति के साथ शाश्वत सौभाग्य का लाभ प्राप्त करने में सच्चे मन से विश्वास करती थी तथा इसी विश्वास से प्रेरित हुई वह हँसते-हँसते 'काठ पर चढ़ जाती थीं। ।' सतियों द्वारा स्वर्ग में 'सतीपुर' वसाए जाने सम्बन्धी उल्लेख डिंगल-काव्यों में प्रचुर मिलते हैं । यथा—

---

1. रूपग गोगादेजी रो, (121) सं० रानी लक्ष्मीकुमारीजी चूंडावत ।
2. लालां मेवाड़ी री बात ।
3. गजगुणरुपकबंध ।

बसायौ सती आगे सदन, बाधा कांकण डोरला[1]

तथा—

सतीपुरै विच सदन सरब वरिणया सोनारा ।[2]

सोलह शृंगार से सज्जित हो सती होने के मूल में यही विश्वास निहित है कि स्वर्ग में सती का अपने दिवंगत पति से पुनर्मिलन होगा। अतः वह सौभाग्य-परिधान पहने ही चितारोहण करती है, ताकि उसी वेशभूषा में वह स्वर्ग में अपने पति से जा मिले। उसके लिए सहगमन लौकिक सुहाग की इयत्ता न होकर परलोक में शाश्वत सौभाग्य की प्राप्ति का ही मंगल-पर्व होता है। यही कारण है कि सहगमन में पल भर का भी विलम्ब उसे सह्य नहीं होता। उपर्युक्त दोहे में मध्ययुगीन नारी के इसी वीरोचित विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है, जिसका आज के युग में कोई औचित्य नहीं है।

जउहर मइं जळिवाह, इसइ छोह पइसइ अनळ ।
पहिली थी, रहि पाछिली, पग अेकि पड़खइ नाह ।। 15 ।।

व्याख्या—

जौहर में जलने हेतु वे इस उमंग से अग्नि में प्रवेश कर रही थीं कि [विवाहोपरान्त पतिगृह में प्रवेश करते समय] जो पीछे रही थीं, वे ही आज [चितारोहण कर स्वर्ग जाने में पति से] पहले थीं। मानों [स्वर्ग में] एक कदम पहले रखकर (वहाँ पंहले पहुँच कर) वे अपने स्वामी की प्रतीक्षा किया चाहती थीं।

उत्तरार्द्ध का अर्थ यों भी किया जा सकता है—वे इस अहमहमिका से अग्नि में प्रवेश कर रही थीं कि जो [पंक्ति में] पहले (आगे) थीं, वे पीछे रह गईं। मानो [स्वर्ग में] उनसे एक कदम पहले रखकर वे वहाँ अपने पति की प्रतीक्षा करना चाहती थीं (अर्थात् उनसे पहले स्वर्ग पहुँचना चाहती थीं)।

परन्तु हमें प्रथम अर्थ अधिक संगत एवं भावपूर्ण लगता है, जो कवि-वर्णन-परंपरा से भी पुष्ट है, जैसाकि हमने आगे टिप्पणी में स्पष्ट किया है।

1. पाबूप्रकाश, पृ० 338; आशिया मोडजी-कृत ।
2. पाबूप्रकाश, पृ० 338-339, आशिया मोडजी-कृत ।

शब्दार्थ—

छोह = उमंग, उत्साह। **पइसइ**=प्रविष्ट होरही थीं। **अनळ**=अग्नि। **पड़खइ** = प्रतीक्षा करना, (सं० प्रतीक्षते[1]) उदा०—

क्षण एक पड़खुं अहीइं मुनिवर ।[2]
महिसी दोही ल्यावूं दुग्ध ए ।

नाह = (सं० नाथ) पति ।

विशेष—

विवाहोपरान्त गठजोड़े से पतिगृह में प्रवेश करते समय वर आगे तथा वधू पीछे रहती है परन्तु आज जौहर करते समय वीर ललना अपने पति से पहले ही स्वर्ग जाने हेतु आकुल थी ताकि वहाँ अपने पति के वीरगति प्राप्त कर स्वर्ग पहुँचने पर वह उनके स्वागत में पलक-पाँवड़े बिछाए पहले से ही मौजूद रहे। स्वर्ग में अपने प्रिय से अविलम्ब एवं शाश्वत मिलन की कैसी स्तुत्य साध है। इसी भाव का द्योतक महाकवि सूर्यमल्ल का दोहा है—

हूं पाछे, आगे हुवै, आणी नाह घरेह ।[3]
जे वाल्ही धण जीव हूं, आगे मूझ करेह ।।74।।

सुकुल तिके सजगीस, अनइ सुवर एकाक्रमी ।
तपियउ अचळेसवर तणउ, अइ जउहर जगदीस ।।16।।

व्याख्या—

वे सुकुलांगनाएँ [स्वर्ग में अपने पति के शाश्वत संयोग की] कामना से युक्त तथा अपने श्रेष्ठ पतियों की सहगामिनी थीं।

हे ईश्वर! राजा अचलदास की रानियों द्वारा किया गया ऐसा महान् जौहर [पृथ्वी पर युग-युग तक] तपे। अर्थात् इसकी कीर्ति सदा अक्षुण्ण रहे।

कवि की मंगलाशंसा है।

शब्दार्थ—

सुकुल=शुद्ध कुल की, कुलांगनाएँ। **तिके**=वे। **सजगीस**=इच्छा, कामना। यह युद्धवाची भी है। **अनइ**=और। **सुवर**=श्रेष्ठ वर। **एकाक्रमी**=

---

1. उक्तिरत्नाकर, पृ० 41 (2), साधु सुन्दरगणी, सं० मुनि जिनविजयजी।
2. नल-दमदंती-रास।
3. वीरसतसई : सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।

एक साथ चलने या गमन करने वाली, सहगामिनी । **तपियउ**=तपा, शोभित हुआ, यहाँ शोभित हो, तपे । अर्थात् इसकी कीर्ति सदा अक्षुण्ण रहे ।

विशेष—

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित संस्करण में पूर्वार्द्ध का पाठ यों है-- 'सुकलत ते सजगीस, अनइ सुवर अेकाखमी ।' हमने अन्य प्रतियों के आधार पर संशोधित पाठ स्वीकार किया है ।

जउहर जालणहारि, अनइ जळइ ताइ ऊचरै ।
हरि-हरि-हरि-हरि होइ रह्यउ, विसन-विसन तिणि वारि ।।17।।

व्याख्या—

उस समय जौहर की ज्वाला को प्रज्ज्वलित करने वाले तथा जौहर में जलने वाले—दोनों ही के द्वारा 'हरि-हरि', 'हरि-हरि' एवं 'विष्णु-विष्णु' का महोच्चार होरहा है ।

शब्दार्थ—

जालणहारि=प्रज्ज्वलित करने वाले । **अनइ**=और । **जळइ**=जलने वाली ललनाएँ । **ऊचरै**=उच्चार कर रहे हैं । **तिणिवार**=उस समय ।

विशेष—

मिलाओ—

1. है है कार पुकार हुइ, राम-राम भणि राम ।[1]
2. साहस प्रभावि एतली आहि, राणी पइठी जमहर माहि ।[2]
   राम राम वाणी उच्चरइ, सजन लोक सवि आँसू बिरइ ।।

पुहवि न पारावार, गढ अनियै गावां तणा ।
सुर तेंतीसइ सम धरणि, दणियर देखणहार ।।18।।

व्याख्या—

उन राजललनाओं के जौहर को देखने हेतु गढ गागरोण सहित पृथ्वी भर के अन्य गाँवों के लोगों का कोई पार नहीं था (अर्थात् दूर-दूर के गाँवों के

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री, पृ० 391, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर ।
2. कान्हडदे–प्रवन्ध : पृ० 94, सं० प्रो० कांतिलाल बलदेवराम व्यास ।

संख्यातीत लोग जौहर के उस दृश्य को देखने हेतु वहाँ आ एकत्र हुए थे)। पृथ्वी के समान, तेंतीस करोड़ देवताओं सहित स्वयं सूर्य भी उसे देख रहे थे।

शब्दार्थ—

पुहवि=पृथ्वी। **पारावार**=पार। **दणियर**=(सं० दिनकर) सूर्य।

विशेष—

राठौड़ रतनसिंह–महेसदासोत की रानियों के सती होते समय भी कुछ ऐसा ही दृश्य देखने में आया था—

सुर नर मिळिया जात सह, पेखै गात प्रवीत।[1]
तिण वेळा धनि धनि त्रिया, ईख कहै आदीत।।

सींघणहरै सछोहि, आमोलिक घर आपणउ।
जउहरि आधउ जाळियउ, लुणियो आधउ लोहि।।19।।

व्याख्या—

यों सींघण के वंशज [वीर अचलदास] ने वीरोचित उमंग और उल्लास से अपना वह अनमोल घर आधा तो जौहर की ज्वाला में जला दिया और आधा तलवार के घाट उतार दिया।

अर्थात् परिवार के आधे सदस्यों (स्त्रियों) ने अपने को जौहर की ज्वाला में विसर्जित कर दिया और शेष आधे (पुरुष) लोह बजाते हुए तिल-तिल तलवारों से कट मरे।

शब्दार्थ—

सींघणहरै=सींघण के वंशज। **सछोहि**=जोश या उमंग में भर। **आमोलिक**=अनमोल। **लुणियो**=काट डाला। उदा०—

कलपव्रक्ष मनोकामना पूरै,
एक बार बावै, इकतीस वार लूणै।[2]

लोहि=लोह; तलवार या शस्त्र-प्रहार।

पेख्या तिण परि जाइ, रायंगिणि रांणी तणइ।
उत्तिम लोही आपरइ, खूंचइ खीचीराइ।।20।।

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी–महेसदासोत री, पृ० 387, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर।
2. राठौड़ वंश री विगत; सं० डॉ० फतेहसिंह।

व्याख्या—

तदनन्तर (राजा ने) रानियों के राजप्रासाद स्थित प्रांगण में जाकर जौहर-अनुष्ठान का वह महान् दृश्य देखा। खीची राजा अचलदास आज अपने उत्तम रक्त से धरा को रंजित-सिंचित कर रहा है। अर्थात् आज भूमि उसके रक्त-अर्घ्य से तृप्त हो रही है।

शब्दार्थ—

पेख्या=देखा। **रायंगिणि**=राजप्रासाद का प्रांगण। **खूंचउ**=अर्थ अस्पष्ट। रंजित, सिंचित या प्रवाहित करना ?

एक वीरगीत में 'खुचंती' प्रयोग मिलता है, जिसका वीरगीतसंग्रह के संपादक ने 'चुभाती, धंसाती' अर्थ किया है, जो यहाँ हमें संगत नहीं लगता—

खुचंती खुरी रुधिर खीची री, घणा असुर घंचै घण घाय।[1]

× × ×

खोपर लगै खुचंती खीची, आप रुहिर पर रुहिर अपार।

विढतउ वीरति-वाट, चालिया राइ चालै हुवइ।
कह खुंचइ कह खिलसतउ, लोह्या लोह मराट ॥21॥

व्याख्या—

[तदनन्तर] 'चलो-चलो' का उद्घोष होने के साथ ही राजा [अचलदास] अपने परंपरागत वीरोचित कुल-मार्ग के अनुसार युद्ध (केसरिया) करने हेतु चल पड़ा।

कहीं [भूमि को रक्त से] रंजित करते हुए तथा कहीं रण-क्रीड़ा करते हुए वह दुर्धर्ष वीर शत्रु को तलवार के घाट उतारता चला गया।

शब्दार्थ—

विढ़तउ=लड़ता हुआ, लड़ने। **वीरति-वाट**=वीरोचित कुलमार्ग (केसरिया करना)। **चालै हुवइ**='चलो-चलो' का उद्घोष होते ही; शत्रु पर टूट पड़ने का सूचक। **कह**=कहीं। **खुंचइ**=रंजित करते? सिंचित करते? **खिलसतउ**=रण-क्रीड़ा करते हुए? अर्थ अस्पष्ट। **लोह्या**=धराशायी कर दिया। **लोह**=तलवार, शस्त्र। **मराट**=दुर्धर्ष वीर, मारने वाला। उदा०—

1. गीत कुम्भा खीची रौ, रा०वी०सं०, भाग 1, पृ० 111; सं सौभाग्यसिंह शेखावत।

मांझी मोह **मराट**, 'पातल' रांण प्रवाड़मल ।[1]
घण दळ घणूं घणांह, सरजाल्यौ संभरि-धणी ।
वेढ्यउ ग्रचळेसर विढे, भायां-भात्रीजांह ।। 22 ।।

व्याख्या—

शत्रु के ग्रपार ग्रौर सघन सैन्य-समूह को चौहान राजा ने ग्रपनी प्रचण्ड बाण-वर्षा से दग्ध (नष्ट) कर दिया । इस तरह राजा ग्रचलदास युद्ध में ग्रपने भाई-भतीजों सहित वीरतापूर्वक लड़ा ।

शब्दार्थ—

घण दळ=सघन सैन्य-समूह । **घणूं घणांह**=ग्रपार, ग्रपरिमित । **सरजाल्यो**=शरजाल से या शरज्वाला से नष्ट कर दिया । **संभरिधणी**=चौहान राजा । साँभर पर राज करने के कारण चौहान राजाग्रों का विरुद । **वेढ्यउ**=लड़ा ।

ग्राया ग्रेक-मताह, गढ हूंता गढ तळहटी ।
सत लोही सींधणहरा, गोडा लग गळताह ।। 23 ।।

व्याख्या—

ग्रपने राज्याधिप ग्रचलदास के नेतृत्व में सब एक मत होकर (मरने-मारने का ग्रटल संकल्प धारण कर) गढ़ से तलहटी पर उतर ग्राए । शत्रु के प्रहारों से रक्त-रंजित वे सींधण के वंशज घुटनों तक घावों से क्षत-विक्षत (या क्षरित) हो रहे थे ।

तृतीय चरण का ग्रर्थ यों भी किया जा सकता है—जिनकी नसों में सच्चा क्षात्र-रक्त प्रवाहित था, ऐसे वे सींघण के वंशज········ ।

शब्दार्थ—

हूंता=से । **सत**=शत्रु । उदा०—

1. **सत** हर करइ ताइ विडंड ।[2]
2. **सत** खग-धारां सेव, परम तणी पर पूजियौ ।[3]

---

1. सूरायच टापरियो : रा० स० को० तृ० खं०, तृ० जि०, पृ० 3582 सं० सीताराम लाळस ।
2. महादेवी पारवती-री-वेलि, 212, पृ० 71, सं० रावत सारस्वत ।
3. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री : पृ० 312, सं० डॉ० शम्भुसिंह मनोहर ।

सींघणहरा=सांडसींघ के वंशज । **गोडां लग**=घुटनों तक ।

हैवै आपणइ हाथि, पाड़ै कंवर पंचाहरइ ।
अंत्रावळि आळूझती, भेळउ हुइ भाराथि ।। 24 ।।

व्याख्या—

बादशाह ने अपने ही हाथ से पंचा के वंशज—कुँवर को धराशायी कर दिया (अर्थात् वह बादशाह के हाथों मारा गया) यद्यपि उस वीर की अंतड़ियाँ पैरों में उलझ रही थीं, तथापि अप्रतिम वीरता से लड़ता हुआ वह युद्ध में तिल-तिल घावों से घायल हो रणभूमि की मिट्टी में जा मिला ।

विशेष—

'पंचा' या 'पांचा' का यह वंशज (अथवा पुत्र) कौन था, ज्ञात नहीं । सम्भवत: यह अचलदास के भाई-भतीजों में से कोई हो ।

शब्दार्थ—

हैवै=बादशाह, (हयपति>हइवइ>हैवै) । उदा०—

हैवै घड़ दुलहणि हुइ, धज तोरण गज ढाल ।[1]

पाड़ै=धराशायी कर दिया । **पंचाहरइ**=पंचा या पांचा का वंशज अथवा पौत्र । **भेळउ हुइ**=जा मिला । **भाराथि**=युद्ध ।

धीरठ वहती धार, पड़तइ कंवर पिटाळिजइ ।
आवध सगळा आपरा, वाह्या वीरति वार ।। 25 ।।

व्याख्या—

शत्रु की तलवार के वार से कुँवर धीरठ के धराशायी होते ही उसका पेट, अंतड़ियों सहित कट कर बाहर निकल पड़ा । परन्तु इस दशा में भी उस वीर ने एक-एक कर अपने सारे आयुध शत्रुओं पर चला दिए (अर्थात् अन्तिम क्षण तक वह वीर तिल-तिल घायल हुआ भी शत्रु दल से जूझता रहा) ।

शब्दार्थ—

वहती धार=तलवारों की चौकड़ी सिर पर पड़ते हुए । **पिटाळिजइ**=पेट (अंतड़ियों सहित बाहर निकल आया) उदा०—

---

1. वचनिका : राठौड़ रतनसिंघजी-महेसदासोत री, पृ० 248, सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर ।

1. "तठा उपरांति करि नै राजांन सिलामति वाकरां नै सूअरां रै साटरा सूळा जोळा—जोळा हुअै छै। सो किण भांति रा सूळा……कालिजै रा, **पेटाळिजै** रा।"[1]

2. "फुरल **पेटाळजा** कालजा फेफरा।[2]

आवध=आयुध, शस्त्रादि। **सगळा**=सारे। **ति वार**=उस समय।

विशेष--

दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका के संस्करण में इस दोहे में 'धीरठ' की जगह 'धीरउ' पाठ है, जो स्पष्ट ही भ्रांत है क्योंकि अचलदास के पुत्र धीरा को राणा मोकल के पास भेजे जाने का उल्लेख वचनिका के छंद 22 (12) में पहले हो चुका है। दूसरे, वचनिका की प्राचीनतम प्रति (सं० 1631) सहित कुछ अन्य प्रतियों में भी यहाँ 'धीरठ' (या 'धीरट') पाठ है। सम्भव है, इसका शुद्ध रूप 'धीरत' हो और यह अचलदास के भाई-भतीजों में से कोई हो, जैसाकि छंद संख्या 22 के अनुसार इन छंदों में अचलदास के भाई-भतीजों के लड़ने का वर्णन है। वचनिका की एक प्रति में यहाँ 'धीर ठवै अति धार' पाठान्तर भी मिलता है।

घणा असुर घण घाइ, पाड़े अचळेसर पड्यउ।
आपण दुरंग न अप्पियउ, जीवतइ जाइलराइ॥26॥

व्याख्या—

अनेक यवनों को अपने प्रचण्ड प्रहारों से धराशायी कर वीर अचलदास भी वीरगति को प्राप्त हुआ। उस खीची राजा ने जीते जी अपना दुर्ग शत्रु को नहीं दिया।

शब्दार्थ—

असुर=यवन। **घण**=प्रचण्ड। **घाइ**=प्रहार, चोट। **पाड़े**=धराशायी कर। **पड्यउ**=वीर गति को प्राप्त हुआ। **दुरंग**=दुर्ग, गढ़। **अप्पियउ**=दिया सौंपा। **जाइलराय**=राजा अचलदास। खीचियों का प्रमुख संस्थान पहले 'जायल' रहा है। अतः जाइलराइ। उदा०—'जायलवाडै खीची'।[3]

---

1. राजान-राउत-रो वात-वणाव, पृ० 47, सं० पं० नरोत्तमदास स्वामी।
2. रुषमणी-हरण, पृ० 50, सं० डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया।
3. राठौड़ां री वंशावली, पृ० 10, सं० डॉ० फतहसिंह।

अनि पह जिम गढ़ ऊठि, ऊजड़ करि आप्यउ नहीं ।
लइ गोरी राव गागुरणि, पड़्या भोजावत पूठि ।।27।।

व्याख्या—

उस वीर अचलदास ने अन्य राजाओं के समान अपना गढ़ छोड़कर तथा उसे उजाड़कर शत्रु को नहीं सौंपा । तद्विपरीत, गोरी राव (होशंग) ने गागरोण, भोजा के वीर पुत्र अचलदास के मरने पर ही लिया ।

शब्दार्थ --

अनि=अन्य । **पह**=राजा (राजाओं के समान) । **ऊठि**=उठकर, गढ़ छोड़कर, पलायन कर । **आप्यउ**= दिया । **पड़्यां**=मरने पर । **पूठ**=पीछे उपरांत ।

विशेष—

गागरोण के उस इतिहासप्रसिद्ध साके की ख्याति का रहस्य इस दूहे में निहित है । अन्य हिन्दू राजाओं के समान वीर अचलदास ने युद्ध के डर से जीतेजी शत्रु को अपना गढ़ नहीं सौंपा । वरन् अन्तिम क्षण तक शत्रु से लोहा लेते हुए उसने वीरगति प्राप्त की । अचलदास के मरने पर ही शत्रु उसे अधिकृत कर सका, उसके जीते जी नहीं । उच्चतम मूल्यों के लिए यह उत्सर्ग ही वीरत्व का सर्वोपरि आदर्श है, शौर्य का शृंगार है । इसीलिए इतिहास में वह सदा-सदा के लिए अमर होगया ! जिन्होंने भी ऐसा किया–वे सभी इतिहास में अमरत्व के अधिकारी होगए । वचनिकाकार ने अपने काव्य के अन्तिम छंद में (आगे) ऐसे सभी वीरों का स्मरण करते हुए उन्हें भी अपनी वाणी का अर्घ्य अर्पित किया है, जो सर्वथा उचित ही है ।

27. कवित्त

सातल सोम हमीर कन्ह जिम जउहर जाळिय ।
चढिय खेत चहुवाणि, आदि कुळ वट्ट उजाळिय ।।
मुगट चिहुर सिर मंडि वप्पि कंठ तुळसी वासी ।
भोजावत भुजबलहि करहि करिमर काळासी ।।
गढ़ खंडि पडंती गागुरण, दिढ दाखे सुरताण दळ ।
संसारि नांव आतम सरगि, 'अचल' बेवि कीधा अचळ ।।

व्याख्या—

कवि कहता है—यों, उस चौहान वीर अचलदास ने सातल, सोम, हमीर और कान्हड़दे के समान जौहर जलाया तथा रणक्षेत्र में वीरतापूर्वक शत्रु से लोहा लेते हुए अपने परम्परागत कुलमार्ग को उज्ज्वल किया। उसने अपने मस्तक तथा केशों पर मरण-संकल्प का प्रतीक मौड़ (सेहरा) धारण किया तथा कंठ में तुलसी की माला से अपने शरीर को मंडित किया। तदनन्तर उस भोज के पुत्र अचलदास ने अपने बाहुबल से क्रुद्ध काले नाग (अथवा काल भैरव) के समान अपनी तलवार से शत्रु-दल का सफाया कर दिया। गढ़ गागरोण पर भयंकर संकट पड़ा देखकर भी उसने [आत्मसमर्पण नहीं किया] वरन् सुल्तान की सैन्य-शक्ति का दृढ़ता से उत्तर दिया (वीरतापूर्वक लोहा लिया)। इस प्रकार उस वीरशिरोमणि अचलदास ने संसार में अपना नाम (कीर्ति) तथा स्वर्ग में अपनी आत्मा—दोनों को अमर कर दिया।

अर्थात् लोक में वह अक्षय कीर्ति का भागी हुआ एवं परलोक में अमर पद का अधिकारी! यों, उस वीर अचलदास ने अपने नामानुरूप इहलोक और परलोक—दोनों में अपना नाम अचल कर दिया।

शब्दार्थ—

सातल-सोम=सिवाणा दुर्ग की रक्षार्थ वीरतापूर्वक लड़ते हुए काम आने वाले चौहान वीर। **हमीर**=रणथंभोर का इतिहास-प्रसिद्ध शासक। **कन्ह**= कान्हडदे, जालोर का शासक। **कुळ-वट्ट**=कुल-मार्ग। अर्थात् प्राण दे देना पर जीतेजी शत्रु को अपना दुर्ग नहीं सौंपना। **मुगट**=(सं० मुकुट) मौड़, सेहरा। यह मरण-संकल्प का प्रतीक था, जिसे धारण करने वाला योद्धा या तो युद्ध में विजयी होकर लौटता था या वीरगति प्राप्त करता था। परन्तु पराजित होकर जीवित युद्ध से नहीं लौटता था। उदा०—

> कुसुम मौड़, केसर बसण, नेह न देह लसाय।[1]
> भाभी! कंत सकैक तो, ल्होड़ी सोक वसाय ॥104॥

चिहुर=(सं० चिकुर) केश। **वप्पि**=(सं० वपु) शरीर। **करिमर**=कृपाण, तलवार। उदा०—

---

1. वीरसतसई, पृ० 121, सं० डॉ० शंभुसिंह मनोहर।

समचै एम सधर नर सीहौ,[1]
करिमरि धूणंतौ सुकरि ।

काळासी=1. काले नाग के समान, जो डिंगल-काव्यों में उद्‌भट वीर का प्रतीक है ।

2. काले भैरव के समान भयंकर ।

खंडि=संकट, खंडित या नष्ट होने की आपदा । अन्य प्रतियों में यहाँ 'भीड़' व 'भंग' पाठ है । **बेवि**=दोनों । **अचळ**=अमर ।

श्री दीनानाथ खत्री द्वारा संपादित वचनिका के संस्करण में निर्देशित 'b' प्रति में उपर्युक्त छंद के बाद यह कवित्त अधिक है, जो स० मानसिंह सं० की 'ख' प्रति में भी किंचित् पाठ भेद के साथ उपलब्ध है—

निवै सहस त्री जले, पड़े सौ सहस सुपहि रिण ।
बीस सहस में गुड़े[1], वहै हैमर लेखै विण ।।
भोज तणै भुजबळां असुर दहवट्टां कीया ।
अचलदास गागुरण कोट माथै सूं दीया ।।
परमाण बांधि राखण प्रथी[2], पाल्हणसी नीसारियो ।
चहुवाण राण साँभर-धणी[3], प्रमपुर अचल पधारियो ।।

स. मानसिंह सं० की प्रति में उपलब्ध पाठांतर—

1. गै चौरासी गुड 2. परियण पौधि राखण प्रसिधि 3. अपछर बरे ।

इति श्री अचलदास खीची री वचनिका सिवदास गाडण री कही संपूर्ण । शुभं भवतु । कील्यांणमस्तु ।

---

1. सीहा निरवांण रौ गीत, रा०स०को०प्र० भाग, पृ० 430, सं० सीताराम लाळस ।

ऐतिहासिक टिप्पणियाँ

(क) प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति—

उस्माखां— सुल्तान होशंग की फारूकी बेगम से उत्पन्न उसका द्वितीय पुत्र उसमान खां।[1] सुल्तान होशंग ने इसके उद्दंड आचरण से क्रुद्ध हो मलिक मुगीस को आदेश दिया कि वह शाहजादे उस्मानखां को उसके भाई हैबतखां सहित कैद कर माँडू के किले में डाल दे।[2]

फतेखां—सुल्तान होशंग की फारूकी बेगम से उत्पन्न उसका तृतीय पुत्र फतहखां, उस्मानखां का छोटा भाई।[3]

गजनीखां—सुल्तान होशंग की दूसरी बेगम से उत्पन्न उसका ज्येष्ठ पुत्र गजनीखां, जो होशंग की मृत्यु के बाद मुहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बैठा परन्तु मलिक मुगीस के पुत्र महमूदखां ने उसे विष देकर मरवा डाला और स्वयं माँडू का सुल्तान बन गया। महमूद से खिल्जी वंश का प्रवर्तन हुआ। गजनीखां ने कुल कोई एक साल और कुछ महीने राज्य किया।[4]

उमरखान—सुल्तान होशंग की दूसरी बेगम से उत्पन्न उसका तीसरा शाहजादा, जो गजनी खां और अहमद खां से छोटा था।[5]

हइबतखान—सुल्तान होशंग की फारूकी बेगम से उत्पन्न उसका चौथा शाहजादा।[6]

---

1. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, भाग 2, पृ० 59, अनु० सैयद अ० अ० रिजवी।
2. Mediaeval Malwa, By U. N. Dey, Page 67.
3. वही।
4. वही।
5. वही।
6. वही।

खान मुगीस—यह सुल्तान होशंग की फूफी का पुत्र (अतः सुल्तान का फुफेरा भाई) था एवं परम स्वामिभक्त था। दिलावरखां की मृत्यु पर होशंग को माँडू (मालवा) का सुल्तान बनाने में इसने बहुत मदद की थी। सुल्तान होशंग ने मलिक मुगीस को मलिकुश्शर्क की उपाधि प्रदान कर इसे विजारत का काम सौंप दिया।[1]

मलिक मुगीस इतना स्वामिभक्त था कि उसने अपने बेटे महमूद की स्वयं बादशाह बनने की अनुचित महत्वाकांक्षाएँ जानकर सुल्तान होशंग को उससे सावधान कर दिया था। तबकाते-अकबरी में तो यहाँ तक लिखा है कि उसने उसके सिर को दोनों हाथों से पीट कर उसे कोसा।[2] अपने पुत्र महमूद खिल्जी के सुल्तान बन जाने के बाद भी उसने अपने भूतपूर्व स्वामी होशंग के शाहजादों के प्रति वही आदरभाव रखा।[3] सुल्तान महमूद खिल्जी अपने पिता मलिक मुगीस का अत्यधिक आदर करता था। उसने सिंहासन पर बैठते ही उसके पहले के पदों (खानेजहां, आदि) के साथ उसे सर्वोच्च उपाधि 'आजम हुमायू'' से विभूषित किया तथा उसे वे सब विशेषाधिकार प्रदान किये, जो केवल सुल्तानों के लिए ही उपभोग्य थे।[4] माँडू की प्रसिद्ध मस्जिद मुगीस-उद्-दुनिया इसी की बनवाई हुई है।

राजा नरसिंघदास—खेरला का शासक नरसिंह अपने समय का बहुत प्रतापी और पराक्रमी नरेश हुआ है, जिसकी प्रशंसा करते हुए वचनिकाकार थका नहीं है। नरसिंह ने अपने जीवन में बहुत राजनीतिक दाव-पेच खेले थे। कभी यह दक्षिण के प्रबल बहमनी सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर लेता तो कभी मालवा के सुल्तान की। सन् 1398 में जब फीरोज बहमनी विजयनगर के राजा के साथ युद्ध में उलझा हुआ था, तो नरसिंह ने मालवा और खानदेश के सुल्तानों के संकेत पर बरार पर आक्रमण कर पूर्वी जिलों, यहाँ तक कि दक्षिण में माहुर तक लूटमार मचा दी। इस पर फीरोज बहमनी ने सन् 1399 अपने भाई अहमद के अधीन एक सेना भेज इसे दण्डित

1. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, भाग 2, पृ० 53।
2. तबकाते-अकबरी, उ० तै० भारत, पृ० 145, अनु० सैयद अ० अ० रिजवी।
3. Mandu : The City Of Joy; Page 14; By G. Yazdani.
4. Mediaeval Malwa; Page 176–177, By U. N. Dey.

किया। फलतः नरसिंह ने बहमनी सुल्तान की अधीनता स्वीकार करली।[1] परन्तु मालवा के सुल्तान होशंग को यह सह्य नहीं हुआ और उसने सन् 1422 में जाजपुर से लौटते हुए खेरला पर आक्रमण कर नरसिंह को बन्दी बना लिया। सन् 1423 में जब होशंग ने गागरोण पर आक्रमण किया तब नरसिंह अचलदास के विरुद्ध होशंग की सेना में सम्मिलित था।[2] परन्तु नरसिंह माँडू के सुल्तान की अधीनता से प्रसन्न न था। उसने अवसर देख पुनः बहमनी सुल्तान की अधीनता स्वीकार करली। इस पर होशंग ने सन् 1433-34 में, जब बहमनी सुल्तान गुजरात के विरुद्ध युद्ध में उलझा हुआ था, पुनः खेरला पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में नरसिंह लड़ता हुआ काम आया।[3]

नरसिंह को इतिहास-ग्रन्थों में प्रायः 'गोंड राजा' लिखा गया है[4], जिसका कारण सम्भवतः यह है कि खेरला गोंडवाना प्रदेश में है। परन्तु सेन्ट्रल गजेटियर के सम्पादक चार्ल्स ग्रांट ने अपने फुटनोट में इस धारणा को संदिग्ध मानते हुए खेरला के शासकों के क्षत्रिय होने की सम्भावना व्यक्त की है :

"The Kherla Princes have been generally set down as Gond, but I cannot find on what authority? There seems to be quite as much, if not more, for considering them to have been Kshatriyas. The local legends certainly attribute that dignity to them........"[5]

इस सम्बन्ध में 'वचनिका' का उल्लेख अतीव महत्वपूर्ण है, जिसमें नरसिंह को 'पडिहार' कहा गया है—

वेढ कीध **पड़ियार,** निहसि कट्टारउ दुहुँ करि।
राइ न ग्रहइ नरसिंघ, गळइ गळहथ जउँ गइवरि॥

उपर्युक्त पंक्तियों में 'पड़ियार' शब्द स्पष्ट ही नरसिंह के लिए आया है, अचलदास के लिए नहीं, जो चौहान क्षत्रिय था। इनमें नरसिंह की हो प्रशंसा

1. The Cambridge History Of India; Vol. III, Page 390–391.
2. वचनिका।
3. Mediaeval Malwa, By U. N. Dey: Page 45-46.
4. The Cambridge History Of India, Vol. III, Page 491, 536 & Central India, Vol. I; Page 3.
5. The Gazetteer Of Central Provinces Of India: II Ed. Introduction.

की गई है, अचलदास की नहीं। अतः इस आधार पर हमारा अनुमान है कि नरसिंह कदाचित् गोंड न होकर पड़िहार क्षत्रिय हो। 'वचनिका' के उक्त उल्लेख के सन्दर्भ में नरसिंह के वंश की सही जानकारी अन्वेष्य है।

चाँदजी, खेमजी—

'वचनिका' में नरसिंह खेरला के दो पुत्रों—चाँदजी और खेमजी का उल्लेख हुआ है, जो अचलदास के विरुद्ध होशंग की सेना में अपने पिता के साथ सम्मिलित हुए थे। सम्भवतः नरसिंह के अन्य पुत्रों में उसके यही दो पुत्र इस युद्ध में सम्मिलित हुए थे अन्यथा उनका भी नामोल्लेख होता। नरसिंह के अन्य पुत्रों में हमें गोपालराय का उल्लेख मिलता है, जो सन् 1399 में फिरोज बहमनी द्वारा नरसिंह को दण्डित करने हेतु आक्रमण किये जाने पर बन्दी बना लिया गया था।[1] नरसिंह के एक अन्य पुत्र कोसलराय का भी उल्लेख मिलता है।[2]

डूंगरसी—

वचनिका के छंद सं० 26 (2) में प्रयुक्त डूंगरसी ग्वालियर का तोमरवंशीय राजा डूँगरसिंह या डूँगरेन्द्रसिंह है। इसके विषय में मध्यप्रदेश के पुरातात्त्विक संदर्भ-ग्रन्थ में निम्नांकित जानकारी दीगई है।[3]

"ग्वालियर में तोमर राजवंश का संस्थापक वीरसिंहदेव था। वीरसिंहदेव के उत्तराधिकारी क्रमशः उद्धरणदेव तथा विक्रमदेव हुए। विक्रमदेव का उत्तराधिकारी डूंगरेन्द्रसिंह 1424 ई० में गद्दी पर बैठा।

उसके राज्यकाल के प्रथम वर्ष में मालवा के शासक हुशंगशाह ने ग्वालियर किले की घेराबन्दी की। हुशंगशाह से पीछा छुड़ाने के लिए डूंगरेन्द्रसिंह को जौनपुर के शासक मुबारकशाह की सहायता लेनी पड़ी और उसे कर भी देना पड़ा, परन्तु उसने अपना स्वतंत्र अस्तित्व बराबर बनाए रखा।

डूंगरेन्द्रसिंह के समय में राजनीतिक रूप से तोमर बहुत प्रबल हो गए थे। उत्तर भारत में उनकी बहुत धाक थी।"

---

1. Cambridge History Of India, Vol. III, Page 56-57.
2. Ibid, Page 390.
3. मध्यप्रदेश के पुरातत्त्व का संदर्भ-ग्रन्थ, पृष्ठ 103-104, डॉ० राजकुमार शर्मा।

ग्वालियर का प्रसिद्ध और प्रतापी शासक मानसिंह इस डूंगरसिंह का प्रपौत्र था। अचलदास की 'तुंवरणी' रानी संभवतः इसी डूँगरेन्द्रसिंह की पुत्री थी।

मोकलसीह—

मेवाड़ के महाराणा मोकल, जो अचलदास के श्वसुर थे। इनकी बेटी पुष्पावती (लालाँ मेवाड़ी) अचलदास की पटरानी थी। वीरविनोद के अनुसार इनका राज्यकाल संवत् 1454 से 1490 तक था।[1] इस दृष्टि से ये गागरोण-युद्ध के 10 वर्ष बाद तक जीवित थे। इनकी समकालीनता के प्रश्न पर हम पहले विचार कर आए हैं।

राउल गइपउ—

यह डूँगरपुर का रावल था, जो अपने पिता, पाता (प्रतापसिंह) के बाद गद्दी पर वैठा। इसका नाम गोपीनाथ था, परन्तु शिलालेखों में इसे गईप, गजपाल, गोपाल तथा ख्यात में गेबा लिखा है।[2] इसकी गणना डूँगरपुर के प्रसिद्ध शूरवीर और महत्वाकांक्षी शासकों में की जाती है। इसके शासनकाल की प्रमुख घटना में महाराणा कुंभा तथा गुजरात के सुल्तान अहमदशाह के साथ इसका युद्ध करना है। यह भी सम्भवतः अचलदास का श्वसुर था। 'वचनिका' में प्रयुक्त 'वागुडणी' रानी कदाचित् इसी रावल 'गेपा' (गोपीनाथ) की पुत्री थी।

ओझाजी के अनुसार इसका सबसे पहला शिलालेख संवत् 1483 (ई० सन् 1426) का मिला है, जिसके आधार पर उनका अनुमान है कि वह संवत् 1483 से पहले ही कभी गद्दी पर बैठा होगा।[3] परन्तु इधर इसकी एक प्रशस्ति संवत् 1480 की भी मिली है, जिससे इसके शासनकाल का आरम्भ संवत् 1480 के लगभग होना चाहिए। 'वचनिका' के उल्लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। रावल गेपा विषयक यह प्रशस्ति 'पंच प्रस्थान विषय पद व्याख्या' नामक एक ताड़पत्रीय ग्रन्थ में मिली है एवं श्री अमृतलाल शाह द्वारा संपादित प्रशस्ति-संग्रह नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुई है। उसका सम्बद्ध अंश यह है—

---

1. वीरविनोद, भाग 1, पृ० 270।
2. राजपूताने का इतिहास, जिल्द तीसरी, भाग पहला, पृ० 64-65, ओझा जी।
3. वही।

"स्वस्ति संवत् 1480 वर्षे अद्येह श्री डूंगरपुर नगरे राउल श्री गइपालदेव राज्ये श्री पार्श्वनाथ चैत्यालये लिखितं पचाकेन"[1]........

इसका राज्यकाल संवत् 1480 से 1503 के आसपास स्थिर होता है।[2]

वीरजी—

'वचनिका' के छंद 26 (3) में ही 'वीरजी' का भी उल्लेख हुआ है, जो प्रसंगानुसार संभवतः अचलदास का ही कोई अन्य सगा-सम्बन्धी या श्वसुर रहा होगा। कदाचित् यह पूजा का पुत्र 'वीर' हो, जो ईडर का राजा था ?[3]

सातल-सोम—

सिवाणा (मारवाड़) के साके के साथ सातल और सोम (सोमेश्वर) का नाम अभिन्नतः जुड़ा हुआ है। सातलदेव जालोर के सोनगरा शासक कान्हड़देव का भतीजा था। यह सिवाणा का दुर्गाध्यक्ष था। जब ई० सन् 1305 के लगभग बादशाह अलाउद्दीन खिल्जी की सेना ने सिवाणा पर आक्रमण किया तो वीर सातल ने कान्हड़देव की सहायता से खिल्जी सेना के दाँत खट्टे कर दिए। राजपूतों की इस प्रारम्भिक सफलता से कुपित हो ई० सन् 1310 में स्वयं अलाउद्दीन ने सिवाणा के दुर्ग को जा घेरा। सातल ने वीरता से उसका मुकाबला किया तथा शत्रु-शिविरों पर फुटकर आक्रमणों के साथ ढेकुली यन्त्रों से निरन्तर पत्थरों की वर्षा कर शत्रुसेना के हौसले पस्त कर दिए। अन्त में अलाउद्दीन 'पाशीब' द्वारा दुर्ग तक पहुँचने में सफल होगया तथा उसने दुर्गस्थ तालाब को गोमांस से दूषित करवा दिया। कहा जाता है कि इसमें 'भायला परमार' नामक एक व्यक्ति ने विश्वासघात किया। अब दुर्ग की रक्षा का कोई उपाय न देख दुर्ग की ललनाओं ने 'जौहर' का अनुष्ठान किया तथा वीर सातल सहित उसके सुभट-सामंत केसरिया वस्त्र धारण कर शत्रुसेना पर टूट पड़े एवं तिल-तिल तलवारों से खण्डित हो वीरगति को प्राप्त हुए। उनके इस अप्रतिम शौर्य पर मुग्ध हो अमीर खुसरो ने लिखा है—"वे राजपूत बला के वहादुर और साहसी थे। उनके सिर के टुकड़े-टुकड़े होगये फिर भी वे टस से मस नहीं हुए।"

---

1. महारावल गोपीनाथ से संबंधित कुछ ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ, राजस्थान भारती, वर्ष 10, अंक 4, ले० रामवल्लभ सोमानी।
2. वही।
3. The Cambridge History Of India, Vol. III, Page 300

रबी-उल-अव्वल की 23 मंगलवार को खिल्जी सैनिकों ने सातलदेव का क्षत-विक्षत शव अलाउद्दीन के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसने दुर्ग को खैराबाद का नाम दिया ।[1]

'मारवाड़ रा परगना री विगत' में भी इनका उल्लेख हुआ है—"रावल कान्हड़दे सांवतसी रौ वड़ौ रजपूत हुवौ । इण आ ठौड़ आपरा भतीज सातल-सोम नु दी । पछै सातल-सोम ऊपर पातसाह अलावदी री फौज आई, कोई कहै छै पातसाह आप आयो ।"[2]

अचलदास की रानियाँ—

वचनिका में उल्लिखित अचलदास की रानियों—पुहपावती, कछवाहीं, तँवरानी, साँखली आदि तथा उसके पुत्रों की ऐतिहासिकता पर हम 'अचलदास खीची : जीवनवृत्त; व्यक्तित्व' शीर्षक प्रकरण (सं० 9) के अन्तर्गत विचार कर आए हैं । अतः यहाँ उन पर पृथक् टिप्पणियाँ नहीं दी जा रहीं ।

(ख) प्रमुख ऐतिहासिक स्थान—

गागरोण—खीची शासकों का प्रसिद्ध संस्थान गागरोण कोटा से लगभग 45 मील दक्षिण-पूर्व में, झालावाड़ के पास, अरावली पर्वतमाला की एक सुदृढ़ चट्टान पर आहू तथा कालीसिंध नदी के संगम पर स्थित है । दोनों नदियों का यह संगम-स्थल लोक में 'समेळजी' के नाम से विख्यात है तथा पवित्र माना जाता है । इसके समीप ही सन्त पीपाजी की समाधि है ।

नैणसी री ख्यात में इसकी भौगोलिक स्थिति का परिचय यों दिया गया है—

"गागुरण, बूंदी थी कोस 30, मऊ सूं कोस 4, कोटा सूं कोस 10 खींची अचलदास वाळी । भाखर ऊपर गढ़ वडो छै । निपट चौड़ौ, जिण मांहे मांणस हजार 10,000 रहै । गढ़ वासै नदी सिंध बहती सदा रहै छै । तिणरो पांणी गढ़ मांहै वाळियो छै । आगै तो गढ़ सूनो-ढमढेर सो थो । हमार हाडै मुकंदसिंह री

---

1. Rajasthan Through The Ages, Page 642-643, By Dr. Dashrath Sharma.
2. मारवाड़ रा परगनां री विगत, भाग 2, पृ० 216, सं० डॉ० नारायणसिंह भाटी ।

जागीर में मुकंदसिंह गढ़ जोर संवरायो। वडा मोहल कराया। गागुरण सहर घर 700 तथा 800 वसै छै। नदी सिंध-आ मऊ रा परगना मांहै वहै छै।"[1]

हमारे नीतिशास्त्र के आचार्यों ने दुर्ग के जो विविध भेद बताए हैं, उनमें 'जलदुर्ग' भी एक है। शुक्रनीति में जलदुर्ग का लक्षणोल्लेख करते हुए कहा गया है—

जलदुर्गं स्मृतं तज्ज्ञैरासमन्तन्महाजलम्।[2]

अर्थात् जो चारों ओर से जलावेष्ठित हो, उसे जलदुर्ग कहते हैं। इस दृष्टि से गागरोण दुर्ग 'जलदुर्ग' की कोटि में आता है क्योंकि यह तीनों ओर से आहू और कालीसिंघ नदियों से परिवेष्ठित है। दुर्ग के दक्षिण में आहू और कालीसिंध का संगम होता है, जहाँ से ये दोनों नदियाँ एकरूप हो, दुर्ग के पूर्वी भाग की परिक्रमा कर, उसकी उत्तरवर्ती प्राचीर के समानांतर बहती हुई 'गणेशघाट' नामक स्थान से सीधे उत्तर की ओर प्रवाहित होजाती हैं।[3] आहू और कालीसिंध के इस संगम-स्थल के आगे ही दुर्ग में जाने का पुल है, जिसकी समीपस्थ बुर्ज के पास एक चबूतरा-सा बना हुआ है। यहीं से नदी का पानी एक सुरंग द्वारा दुर्ग में पहुँचाया जाता था। यह सुरंग अब बंद पड़ी है।

गागरोण बहुत पुराना कस्बा है। इंपीरियल गजेटियर राजस्थान के अनुसार—

The village (Gagron) is believed to be very ancient and it is said to have been called 'Gargasashtar' after Gargachari, the purohit of Shri Krishna, who lived here. Others identify it as the Gargaratpur of ancient writings, from which, the Hindu astronomer Garga calculated longitude."[4]

---

1. नैणसी री ख्यात : भाग 1, पृष्ठ 115, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
2. शुक्रनीति (4. 6. 4) पृष्ठ 324, सं० ब्रह्मशंकर मिश्र।
3. श्री प्रो० कांतिचंद्र गौतम, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, राजकीय महाविद्यालय झालावाड़ के अनुसार इसका नाम 'गणेशघाट' इसलिए पड़ा क्योंकि यहाँ स्थित चट्टान में गणेशजी के मस्तक और सूंड की नैसर्गिक आकृति बनी हुई है। इस सूचना के लिए हम उनके आभारी हैं—संपादक।
4. Imperial Gazetteer Rajasthan, 1906, Page 21.

ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार गागरोण दुर्ग डोड राजपूतों ने बनवाया था। तदनंतर देवनसिंह ने धूलरगढ़ के राजा बीजलदेव को परास्त कर इसका नाम गागरोण रख दिया। यह दुर्ग राजस्थान के सबसे सुदृढ़ और प्राचीन दुर्गों में से एक है। इसके सामरिक महत्व का द्योतन करते हुए कर्नल टॉड लिखता है—

"Until you approach close to Gagrówn, its town and castle appear united, and present a bold and striking object, and it is only on mounting the ridge that one perceives the strength of this position, the rock being scarped by the action of the waters to an immense height.........On whichever side an enemy might approach it, he would have to take the bull by the horns"[1]

कर्नल टॉड गागरोण-दुर्ग की सुदृढ़ता और इसकी सामरिक महत्ता से ही प्रभावित नहीं हुआ, वह दुर्ग के चतुर्दिक व्याप्त प्राकृतिक सुषमा पर भी मुग्ध हुए बिना नहीं रहा, जिसका उसने अत्यन्त मनोहारी चित्रण किया है तथा अन्त में लिखा है—

"Independent of ancient associations, there is a wild grandeur about Gagrown, which makes it well worthy of a visit"[2]

गागरोण पर सन् 1330 में राजा जैतसिंह के शासनकाल में सुल्तान अलाउद्दीन ने आक्रमण किया था परन्तु जैतसिंह ने उसका सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया।[3] तत्पश्चात् सन् 1423 में गागरोण का वह इतिहास-प्रसिद्ध साका हुआ, जिसमें माँडू (मालवा) के सुल्तान होशंगशाह से युद्ध करते हुए अचलदास ने वीरगति प्राप्त की। यही युद्ध हमारी विवेच्य वचनिका का प्रतिपाद्य है।

गागरोण अपने सुदृढ़ दुर्ग तथा उपर्युक्त साके के लिए तो विश्रुत है ही, यह संत पीपाजी की समाधि तथा मुस्लिम पीर मिट्ठे साहब की दरगाह के कारण

---

1. Annals And Antiquities Of Raj., Vol. II, P. 589-590, M. N. Pub., Delhi.
2. वही : पृष्ठ 590.
3. Imperial Gazetteer, Raj. Page 19-20.

भी लोक में प्रसिद्ध है। संत पीपाजी अचलदास के प्रपितामह थे, जिन्होंने अपनी वैराग्य-वृत्ति के कारण राज्यसुख त्याग दिया था। पीर मिट्ठे साहब हिन्दू-मुस्लिम, दोनों के लिए ही समानरूपेण पूज्य हैं। कहते हैं कि उनके मुरीद श्रद्धा से उनके दूध और गुड़ का मलीदा (चूरमा) चढ़ाया करते थे। इसलिए लोक में उनका नाम 'मिट्ठे साहब' मशहूर होगया। इसके अतिरिक्त गागरोण अपने "रायतोतों" के लिए भी प्रसिद्ध है।

गागरोण के पतन के बाद इसकी जनसंख्या में उत्तरोत्तर ह्रास ही होता चला गया। अचलदास के जमाने की बात छोड़ दें, जो निश्चय ही गागरोण का स्वर्णयुग था, तो भी, नैणसी के युग में भी गागरोण की आबादी 700-800 घरों के लगभग थी, जिससे पता चलता है कि यह एक आबाद कस्बा था। परन्तु उत्तरोत्तर यह उजड़ता चला गया, जैसाकि परवर्ती जनगणना से विदित है। सन् 1901 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल आबादी 601 थी, जो 1941 में घटती-घटती 363[1] तथा 1961 में केवल 282 रह गई।[2]

खेरला—

खेरला का दुर्ग देवगढ़ (जि० बैतूल) से पश्चिम में कोई 60 मील से अधिक दूरी पर स्थित है। कहा जाता है कि किसी राजपूत शासक ने इसकी नींव लगाई थी और यह दीर्घ काल तक उसकी राजधानी रहा। इस वंश का अन्तिम शासक जैतपाल था।[3]

गोंडवाना प्रदेश में, उत्तर व दक्षिण भारत में, मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो जाने तक, चार गोंड राज्य थे—एक उत्तर में, जिसकी राजधानी गढ़ा थी, दो मध्य में, जिनकी राजधानियाँ देवगढ़ और खेरला थी तथा एक दक्षिण में, जिसकी राजधानी चाँदा थी।[4]

खेरला के दुर्ग में वि० सं० 1420 (ई० सन् 1363) का एक शिलालेख मिला है, जिसमें 'खेटकपुरा' नाम उत्कीर्ण है। इसे प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता

---

1. Archaelogical Survey Of Northern India Vol. II.
2. Gagron : A village Survey, Census Deptt. Raj; Page 2.
3. The Cambridge History Of India, Vol. III; Page 535.
4. Ibid.

डॉ० हीरालाल बैतूल जिला स्थित 'खेरला' का ही वाचक मानते हैं। खेरला दुर्ग के विषय में यह शिलालेख सबसे प्राचीन है।[1]

'वचनिका' में खेरला के शासक नरसिंह की वीरता, पराक्रम तथा वैभव की वचनिकाकार ने महती प्रशंसा की है, जिसकी पुष्टि फरिश्ता ने भी की है।[2] श्री पी० के० भट्टाचार्य लिखते हैं—

"The earliest known Gond Kingdom to emerge into prominence was that of Kherla, near Betul. According to Firishta, Narsimha Rai, The Raja of Kherla, enjoyed great wealth and power in 1398 and his kingdoms included all the hills of Gondwana and other adjoining regions. He took part in the wars between the Bahamani kings and the rulers of Malwa and Khandesh and was finally defeated by Hoshang Shah of Malwa."[3]

मान्धाता—

प्रसिद्ध ओंकाश्वेर तीर्थ, जो सनवड (मालवा, म० प्र०) स्टेशन से सात मील पर स्थित है। यहाँ से थोड़ी दूर पर ही अमरेश्वर महादेव का लिंग है जहाँ कपिलधारा और नर्मदा का संगम होता है।"[4]

सेंट्रल प्रोविन्सेज के गजेटियर में इसका हाल यों दर्ज है--

"An Island in the Narbada belonging to the Nimar District, remarkable as containing numerous temples, ancient and modern, including the great shrine of Onkar, a from of Siva."[5]

---

1. Historical Geography Of Madhya Pradesh, Page 38, P. K. Bhattacharyya.
2. Brigg's Firishta (Ed. 1829) Vol. II, PP 371-378.
3. Historical Geography Of Madhya Pradesh, Page 36, by P. K. Bhattacharya.
4. तीर्थमाला : पृ० 15, वेंकटेश्वर प्रेस।
5. The Gazetteer Of Central Provinces Of India, By Charles Grant II Ed. 1870.

इसी गजेटियर में, यहाँ के राजा तथा उसके राजवंश के बारे में लिखा गया है—

"The Raja of Mandhata, who is hereditary custodian of all the modern temples is a Bhilal (भिलाल), claiming descent from a Chauhan Rajput named Bharat Singh, who is stated in the family genealogy to have taken Mandhata from a Bhil Chief in the year A.D. 1165. The genealogy gives twenty eight generations to the family since then or twenty five years to each generation. The Bhilals of this part of India are all descended from alliances of Rajputs with Bhils and take the name of the Rajput clan, to which they trace back their origin."[1]

इस पर कर्नल टॉड की टिप्पणी भी द्रष्टव्य है—

"Mandhata Raja, a name immortalised in the topography of these regions, was of the Parmar tribes, and sovereign of Central India, whose capitals were Dhar and Ojjein; and although his period is uncertain, tradition uniformly assigns him priority to Vicrammaditya, whose era (fifty six years anterior to the Christian) prevails throughout India. There are various spots on the Nerbudda, which perpetuate his name, especially where that grand stream forms one of its most considerable rapids."[2]

राय बहादुर डॉ० हीरालाल के अनुसार "महिष्मती (महिष्मंडल की राजधानी) नर्मदा के किनारे पर थी, इसलिए कुछ लोग इसे मंडला और कुछ महेश्वर समझते रहे परन्तु अब निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया गया है कि वह निमाड़ जिले के मांधाता के सिवा अन्य नहीं है।"[3]

---

1. The Gazetteer Of The Central Provinces Of India, II Ed. 1870.
2. Annals And Antiquities Of Rajasthan, Vol. II, Page 483.
3. मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० 7, ले० रायबहादुर डॉ० हीरालाल।

सतियासी—

सम्भवत: साँचोर का वाचक हो ? साँचोर का प्राचीन नाम 'सत्यपुर' मिलता है ।[1]

डाहल—

यमुना व नर्मदा का मध्यस्थ देश, जिसमें नौ लाख ग्राम थे ।[2] हैहयों का मूल स्थान महिष्मण्डल और डाहल में था। महिष्मण्डल की राजधानी माहिष्मती निमाड़ जिले के वर्तमान मांधाता में थी और डाहल की जबलपुर जिले के अन्तर्गत त्रिपुरी (तेवर) में ।[3] यह चेदि देश का दूसरा नाम है (वंशभास्कर, भूमिका, पृ० 5, बारहठ कृष्णसिंह ओदा) ।

सींध—['सींध जाइ तजि सीम'; वचनिका : छंद 14(2)]

'सींध' शब्द यहाँ कालीसिंध का वाचक है, जिसका प्राचीन नाम 'सिंधु' है । इस सम्बन्ध में पी० के० भट्टाचार्य की टिप्पणी द्रष्टव्य है—

Sindhu—

"The river 'Sindhu' is generally believed to be identical with the river Kalisindh, a tributary of the Chambal. The Mahabharat possibily refers to it as the Daksin-Sindhu[4] and the Meghduta[5] simply as Sindhu as the river is called in the Purans.

Evidently, at a later period the Sindhu came to be known as the Kali-Sindh, which does not appear in literature. Sircar[6] thinks that Gargara, mentioned in Gangdhar inscription of Viswavarman, is the ancient name of the modern Kali-Sindh."[7]

---

1. Rajasthan Through The Ages; Page 644; Dr. Dashrath Sharma
2. मध्यप्रदेश का इतिहास, पृ० 34, रायबहादुर डॉ० हीरालाल ।
3. वही, पृ० 4.
4. Mahabharat III, Ch. 82.
5. Meghdoot, 1, 30.
6. Selected Inscriptions Bearing On Indian History And Civilisation Ed. By. D. C. Sirkar.
7. Historical Geography Of Madhya Pradesh, P. K; Bhattacharyya, P. 85.

जैसाकि हम पूर्वोद्धृत उद्धरण में देख आए हैं, नैणसी ने भी गागरोण दुर्ग के वर्णन-प्रसंग में इसके समीप बहने वाली कालीसिंध नदी को केवल 'सिंध' कहकर ही ज्ञापित किया है—"गढ वासै नदी सिंध वहती सदा रहै छै........।"[1]

अतः 'वचनिका' की इस पंक्ति में प्रयुक्त 'सींध' शब्द को 'कालीसिंध' नदी के ही अर्थ में ग्रहण करना चाहिए।

मातापुर—

(माहुर) यहाँ रेणुकादेवी और दत्तात्रेय के देवल हैं।[2]

जायल—

खीचियों का प्राचीन संस्थान जायल, नागौर जिले का एक प्रमुख कस्बा है। यहाँ संप्रति तहसील मुख्यालय है। यह नागौर-डीडवाना सड़क पर, नागौर से 53 कि० मी० तथा डीडवाना से 48 कि० मी० की दूरी पर स्थित है। नैणसी की ख्यात के अनुसार खीची शाखा के प्रवर्तक माणकराव ने यहाँ तथा भदांणे—दोनों जगह कोट करवा कर अपनी राजधानी स्थापित की।[3] यहाँ प्राचीन राजप्रासादों के अवशेष संप्रति 'खीचियों के महल' के नाम से अब केवल खंडहर रूप में शेष रह गए हैं।[4] जायल खीचियों का मूल स्थान होने के कारण ही उन्हें 'जायलराव' उपाधि से सम्बोधित किया जाता है, वैसे ही जैसे चौहानों को 'संभरीनाथ' या 'संभरीराय' आदि से। इस आशय की एक उक्ति भी प्रसिद्ध है—

'गींदा हुता भदाणिया, तूंगै जायलवाल।"[5]



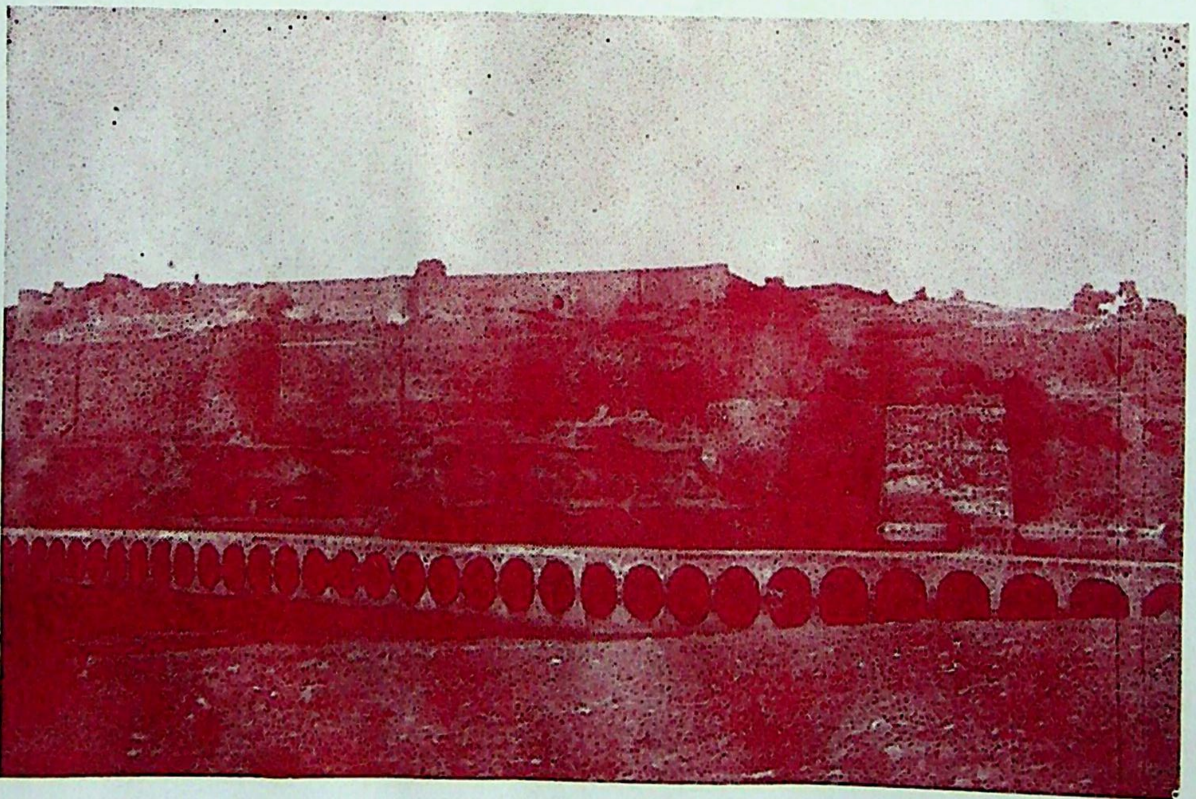
1. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 115, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
2. तीर्थमाला, पृ० 60, श्री लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस।
3. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 251, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।
4. श्री जंगमालसिंहजी राघव, R. A. S. सहायक कलेक्टर एवं मैजिस्ट्रेट जायल से प्राप्त सूचना के आधार पर साभार—संपादक।
5. नैणसी री ख्यात, भाग 1, पृ० 253, सं० बदरीप्रसाद साकरिया।

शुद्धि-पत्र

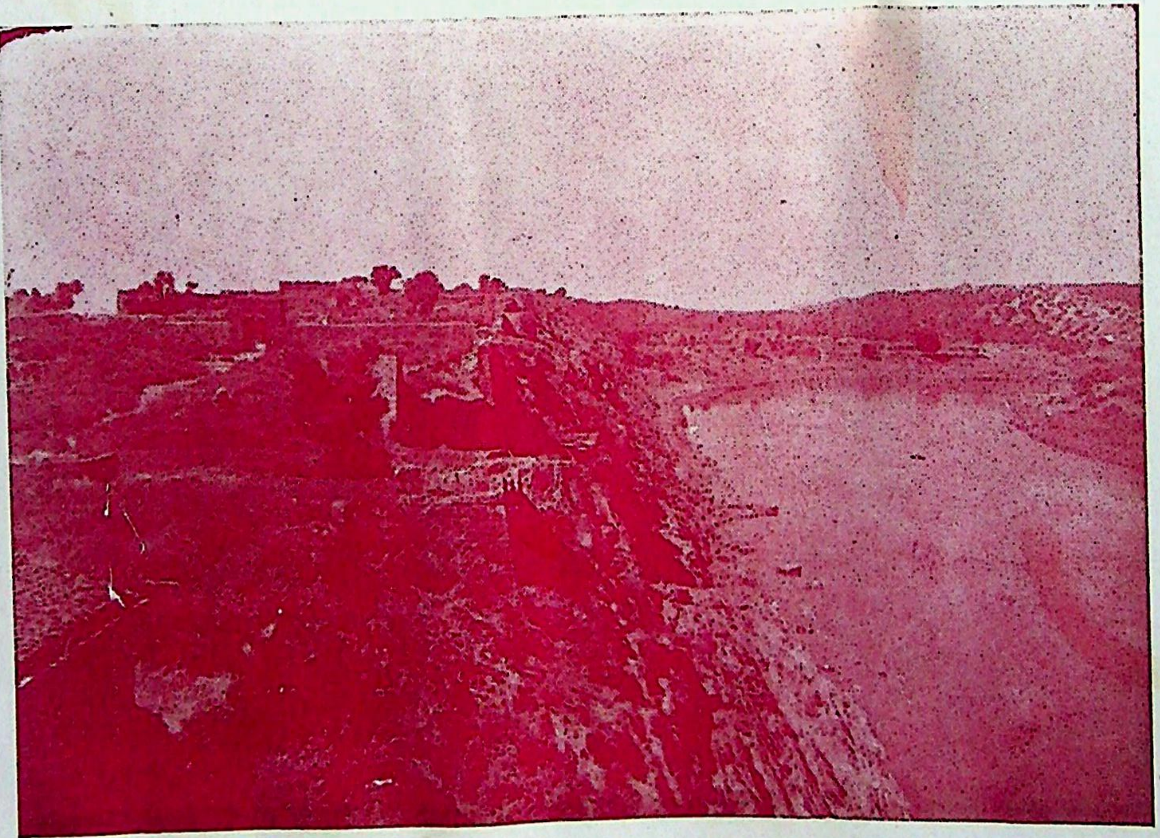
पृष्ठ संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
	भूमिका	
17 (फुटनोट)	श्री रघुनाथ खीची	श्री रघुनाथसिंह खीची
29	लाल हीरालाल	लाला हीरालाल
31	जिनका चरित्रनायक	जिसका चरित्रनायक
48	चौहानों की इन 35 शाखाओं	चौहानों की इन 24 शाखाओं
107	'पुत्रधर्म के साथ ही'....के आगे यह वाक्यांश छूट गया है—	'राजधर्म के भी विरुद्ध है। कारण........
	मूल पाठ	
162	छंद 8; प्रथम पंक्ति 'इइवर'	'गइवर'

नोट—वर्तनी तथा अनुस्वारादि की भी कुछ अशुद्धियाँ यत्र-तंत्र रह गई हैं, जिन्हें पाठक कृपया ठीक करलें।

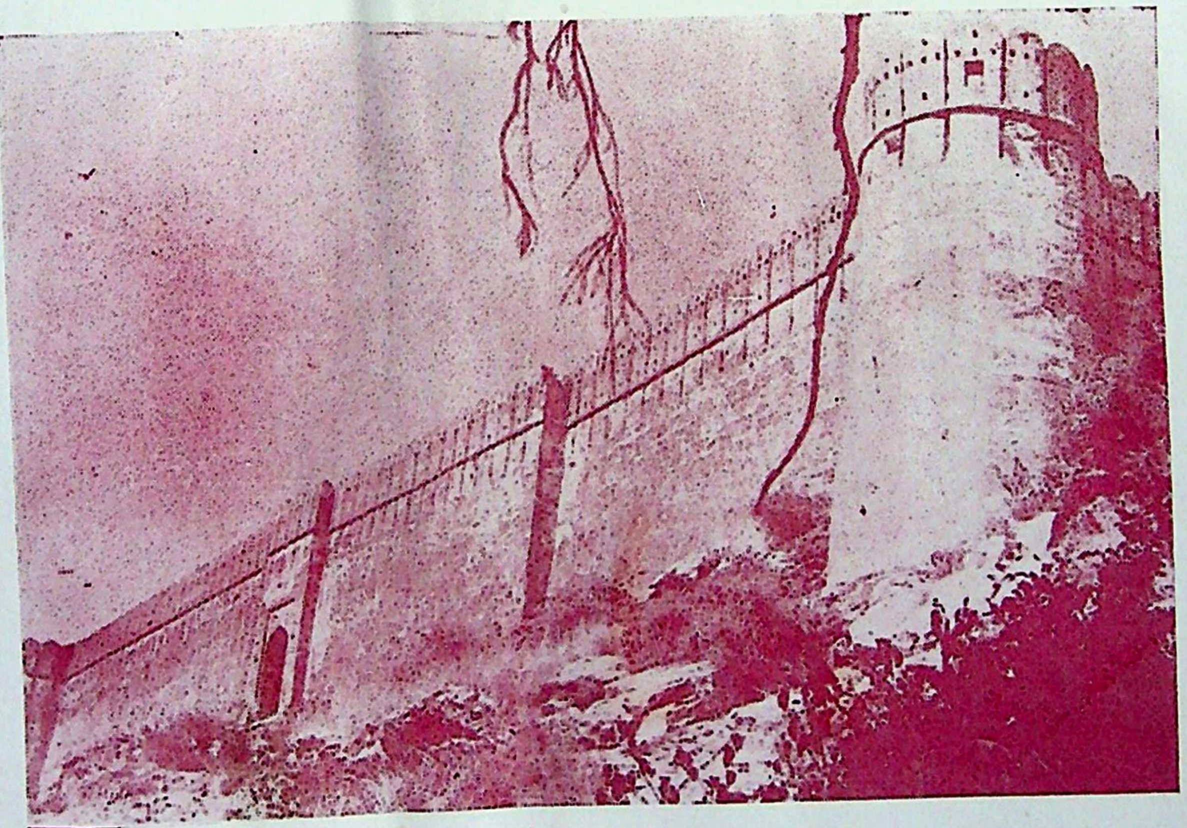
सम्पादक



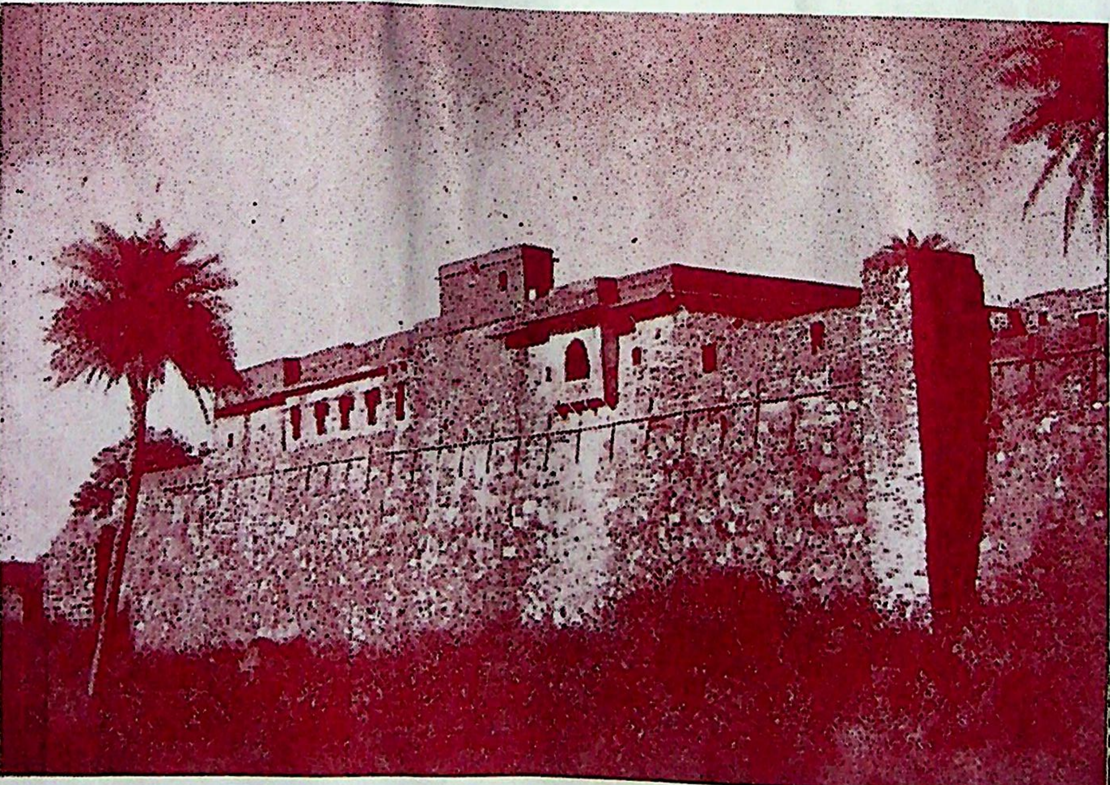
पुल की ओर से गागरोण दुर्ग का दृश्य



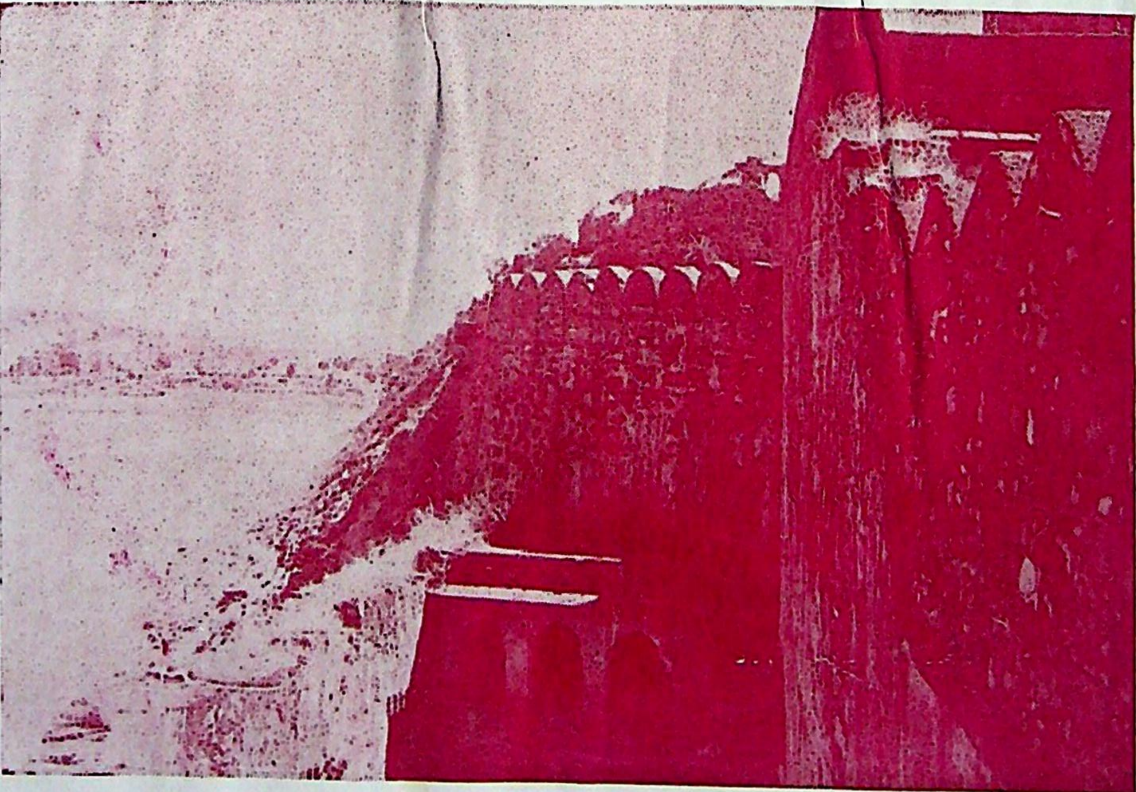
गागरोण दुर्ग सामने से



गागरोण दुर्ग का भीतरी दृश्य



अचलदास खीची का महल



गागरोण दुर्ग पार्श्व में बहती काली सिंध